बुन्देलखण्ड क्षेत्र (उ० प्र०) में सहकारी संगठन द्वारा कृषि वित्त

—एक आर्थिक अध्ययन

अर्थशास्त्र विषय में पी-एच०डी० उपाधि हेतु
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी, को

प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्ता
परमात्माशरण गुप्ता
२२५, गोपालगंज, उरई

निर्देशक
डा० के० पी० गुप्ता
एम.ए., एम.कॉम., पी.एच. डी.
अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय
उरई (जालौन) उ० प्र०
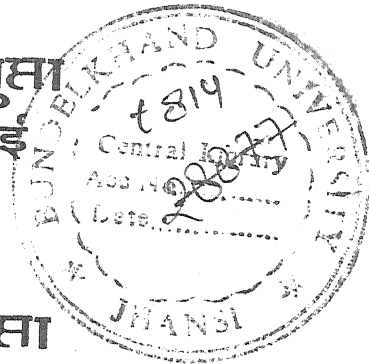
१९९०

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री परमात्मा शरण गुप्त ने "बुन्देलखण्ड क्षेत्र (उ०प्र०) में सहकारी संगठन द्वारा कृषि वित्त - आर्थिक अध्ययन" विषय पर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पी०एच०डी० उपाधि हेतु निर्धारित नियमानुसार मेरा निर्देशन प्राप्त करके लिखा है। यह शोध प्रबन्ध श्री परमात्मा शरण गुप्त के स्वयं के शोध कार्य पर आधारित है और उनकी मौलिक कृति है।

श्री परमात्मा शरण गुप्त ने निर्धारित नियमों के अनुसार वांछित अवधि 24 माह से अधिक समय उपस्थित रहकर मेरा निर्देशन प्राप्त किया है और मेरे अभिमत में यह शोध प्रबन्ध "बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय" झाँसी की पी०एच०डी० उपाधि हेतु निर्धारित अध्यादेश की अनिवार्यताओं की सम्पूर्ति करता है।

दिनाँक :

(डा० के०पी० गुप्ता)
एम०ए०, एम०काम०
पी०एच०डी०
अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, उरई

घोषणा पत्र

मैं घोषणा करता हूँ कि प्रस्तुत शोध कार्य मैंने डा० के०पी० गुप्ता के निर्देशन में किया है। शोध प्रबन्ध की सामग्री मौलिक है तथा सम्पूर्ण लेखन स्वतन्त्र रूप से स्वयं के द्वारा किया गया है। इसमें प्रयुक्त तथ्यों एवं समंकों का संकलन मैंने स्वयं किया है तथा तथ्यों पर आधारित आरेखों की रचना भी मैंने स्वयं की है।

P.S.Gupta
(परमात्मा शरण गुप्त)
225, गोपालगंज,
उरई

आमुख

विगत वर्षों में कृषि एवं ग्रामीण विकास की समस्या ने नियोजकों, अर्थवित्ताओं, राजनीतिज्ञों एवं बुद्धजीवियों का ध्यान आकृष्ट किया है। अतीत के अनुभवों ने यह सिद्ध कर दिया है कि अब तक कार्यान्वित आर्थिक विकास के लाभ अधिकांशतः समाज के धनी लोगों एवं बड़े कृषकों को मिले हैं, जबकि आर्थिक दृष्टि से कमजोर एवं निर्धन लोग विकास के लाभों से वंचित रहे हैं। निःसन्देह किसी भी प्रजातान्त्रिक देश के लिए यह एक बहुत बड़ी चुनौती है क्योंकि राजनैतिक स्वतन्त्रता अपने आप में तब तक अर्थहीन है जब तक कि नागरिकों को आर्थिक अभावों से छुटकारा नहीं दिलाया जाता। यह एक आमधारणा है कि कृषि एवं कृषकों की आर्थिक दशा को समुन्नत करके हम ग्रामीण समुदाय के एक बड़े भाग को खुशहाल बना सकते हैं।

आधुनिक कृषि नवीन तकनीकों पर आधारित है, जोकि मूलतः निवेश परक है। अधिकांश कृषक अपनी न्यून आय के कारण निजी साधनों से कृषि वित्त की व्यवस्था करने में असमर्थ रहते हैं। फलतः उन्हें साख का सहारा लेना पड़ता है। यह सन्तोष की बात है कि हाल ही के दशकों में सरकार द्वारा बैंकों का राष्ट्रीयकरण, नाबार्ड की स्थापना तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना करके कृषकों को साख सुलभ कराने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किया गया है। केन्द्र में नवगठित वर्तमान सरकार ने भी कृषि एवं ग्रामीण विकास को वरीयता देते हुए इन मदों पर कुल बजट का लगभग आधा भाग व्यय करने का संकल्प लिया है और तदनुसार आठवीं पंचवर्षीय योजना को संशोधित किया गया है। निःसन्देह सरकार का यह एक साहसिक कदम है।

बुन्देलखण्ड सम्भाग के सभी जनपदों में कृषि ही लोगों के जीविको-पार्जन का प्रमुख साधन है। यद्यपि सम्भाग में कृषि भूमि की उर्वरा शक्ति काफी

अच्छी है, किन्तु कृषि की प्रगति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा वित्त की कमी रही है। यदि कृषकों को पर्याप्त मात्रा में साख सुलभ कराने हेतु संस्थागत संस्थाओं की समुचित व्यवस्था की जावे तो कृषि की उत्पादकता में पर्याप्त मात्रा में वृद्धि की जा सकती है।

कृषि एवं ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों में सहकारी संस्थाओं एवं सहकारी साख की महती भूमिका है। सरकार भी इनके विकास के लिए संकल्पित है किन्तु आम लोग इन्हें सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और इन्हें भ्रष्टाचार का केन्द्र मानते हैं। वस्तुस्थिति क्या है? किस प्रकार इन्हें आर्थिक विकास का उपयोगी उपकरण बनाया जा सकता है? वास्तव में यह सभी बात एक गहन शोध का जीवन्त विषय है।

प्रारम्भ से ही ग्रामीण वातावरण से जुड़े रहने के कारण मुझे कृषि एवं ग्रामीण विकास के विविध पहलुओं से परिचित होने का सुखद अवसर मिला। ग्रामीण समस्याओं में मेरी गहरी रूचि ने तथा कृषि साख संस्थाओं को ग्रामीण विकास का प्रभावी तंत्र बनाने की जिज्ञासा ने मुझे इस विषय को शोध प्रबन्ध हेतु अपनाने के लिए प्रेरित किया।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अन्तर्गत सम्पूर्ण विषय सामग्री को आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में कृषि वित्त की आवश्यकता एवं महत्व, साख के स्रोत, क्षेत्रीय अध्ययन का औचित्य, अनुसन्धान का क्षेत्र एवं शोध रीति का वर्णन किया गया है। द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत कृषि वित्त में सहकारी साख का महत्व एवं सहकारिता के आधारभूत सिद्धान्त तथा सहकारी आन्दोलन के इतिहास का ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। बुन्देलखण्ड सम्भाग में सहकारी वित्त व्यवस्था का स्वरूप - अल्पकालीन एवं मध्यकालीन साख के अन्तर्गत प्राथमिक सहकारी समितियां, जिला सहकारी बैंकें एवं राज्य सहकारी बैंक तृतीय अध्याय की विषय सामग्री है। अध्याय चतुर्थ में दीर्घकालीन साख के

ढाँचे के अन्तर्गत राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक एवं प्राथमिक कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंकों का अध्ययन किया गया है। पंचम अध्याय के अन्तर्गत कृषि साख के साधन के रूप में सहकारी साख का कृषि वित्त की अन्य संस्थाओं से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है एवं कृषि साख में नाबार्ड के योगदान को दर्शाया गया है। सहकारिता के सम्बन्ध में सरकार की नीति एवं सहकारी साख का सहकारिता के अन्य पहलुओं से सम्बन्ध को छठें अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। सप्तम अध्याय में सहकारी साख की सफलताओं, समस्याओं एवं कठिनाईयों का वर्णन किया गया है। अध्याय अष्ठम् में शोध का निष्कर्ष दिया गया है साथ ही सहकारी साख को प्रभावी बनाने हेतु सुझावों एवं सम्भावनाओं को भी प्रदर्शित किया गया है।

मूलरूप से इस शोध कार्य के प्रेरणास्रोत मेरे निर्देशक डा0 के0पी0 गुप्ता हैं। इस क्षेत्र में उनके विस्तृत अनुभव एवं विद्वता रूपी रश्मियों से मेरा पथ आलोकित हुआ जिसके लिए मैं उनका सदैव ऋणी रहूँगा। साथ ही महाविद्यालय के अर्थशास्त्र के प्रवक्ता श्री शरद जी श्रीवास्तव एवं कु0 रजनी त्रिपाठी तथा महाविद्यालय के अन्य सहयोगियों एवं गाँधी महाविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग के प्रवक्ता श्री श्रीराम कौशिक एवं समाजशास्त्र के विभागाध्यक्ष श्री ओ0पी0 वर्मा का मुझे समय-समय पर सहयोग प्राप्त हुआ है। इन सभी लोगों के प्रति मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। इसके अतिरिक्त सहकारी संस्थाओं के अधिकारियों, कर्मियों एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं से सम्बन्धित लोगों से मुझे समंक संकलन करने में मदद मिली है, इन सभी लोगों के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। मैं अपने मित्रों एवं शुभचिन्तकों का भी आभारी हूँ जिन्होंने मेरा समय-समय पर इस कार्य के लिए उत्साहवर्धन किया। इस कार्य को पूर्ण करने में मुझे सबसे अधिक प्रोत्साहन ए0के0 गुप्ता का मिला जिनका मैं सदैव ऋणी रहूँगा। इसके साथ ही प्रिय अनुज राजेश कुमार गुप्ता का भी मैं आभारी हूँ,

जिन्होंने अल्प अवधि में इस शोध प्रबन्ध को टंकित कर मुझे सहयोग दिया है।

अन्त में, मैं आशा करता हूँ कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अन्तर्गत जो विषय सामग्री समाहित की गई है एवं जो तथ्य प्रदर्शित किये गये हैं तथा उनके आधार पर जो निष्कर्ष निकाले गये हैं, वे भविष्य में प्रशासकों, अर्थवित्ताओं, बैंकिंग संस्थाओं के कर्मियों तथा अन्य उन सभी जिज्ञासुओं के लिए जो ग्रामीण समस्याओं एवं कृषि साख में गहरी रूचि रखते हैं, उपयोगी सिद्ध होंगे।

शोधकर्ता,

P.S. Gupta
(परमात्मा शरण गुप्त)
225, गोपालगंज,
उरई-285 001

अनुक्रमणिका

:: अध्याय प्रथम ::

प्रस्तावना

1. कृषि वित्त की आवश्यकता
   - अ. उद्देश्यानुसार एवं समयानुसार
   - ब. उत्पादक एवं अनुत्पादक कार्य हेतु
2. साख के स्रोत- संस्थागत एवं निजी
3. क्षेत्रीय अध्ययन का महत्व
4. अनुसन्धान का क्षेत्र एवं अध्ययन विधि

देश की आर्थिक गतिविधियों में कृषि सबसे बड़ा क्षेत्र है जो न केवल खाद्य एवं कच्चामाल प्रदान करता है बल्कि देश की जनसंख्या के बहुत बड़े भाग को रोजगार भी प्रदान करता है। देश की कुल राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान 40 प्रतिशत है और यह ग्रामीण जनसंख्या के 70 प्रतिशत भाग को रोजगार प्रदान करता है एवं विदेशी मुद्रा अर्जन में इसका योगदान लगभग 45 प्रतिशत है। कृषि क्षेत्र न केवल देश के कृषि विकास हेतु पूँजी प्रदान करता है बल्कि अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों और राष्ट्रीय आर्थिक विकास हेतु भी पूँजी प्रदान करता है। यही नहीं वरन् राष्ट्रीय उत्पाद में परिवर्तन एवं वृद्धि इस क्षेत्र के कुल उत्पाद पर निर्भर करता है। इस स्थिति में "यदि हम कृषि उद्योग के मौलिक योगदान को नजरन्दाज कर दें तो हमारी सभ्यता अतिशीघ्र नष्ट हो जायेगी।"[1]

यह निर्विवाद सत्य है कि देश की अर्थव्यवस्था का विकास बहुत हद तक कृषि क्षेत्र के विकास से जुड़ा हुआ है। अतः कृषि एवं गैर कृषि क्षेत्र के अन्तःसम्बन्ध पर दोनों क्षेत्रों का विकास एवं वृद्धि निर्भर करता है। औद्योगिक क्षेत्र के लिये गैर कृषि साधनों की माँग औद्योगिक गतिविधियों में स्फूर्ति लाती है और उसके परिणामस्वरूप औद्योगिक वृद्धि के कारण कच्चे माल एवं मजदूरी की माँग बढ़ती है, जो कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसरों एवं आय में वृद्धि करती है। यह बढ़ी हुई कृषि आय बाजार में औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिये स्फूर्ति को जन्म देती है। निःसन्देह भारत जैसे विकासशील देश के लिए कृषि का विकास राष्ट्रीय आय में वृद्धि एवं तीव्र औद्योगीकरण एवं आर्थिक विकास को गति प्रदान करने की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। विलियम निकोलस के शब्दों में - "औद्योगिक विकास के लिए महत्वपूर्ण कृषि आधिक्य का होना एक पूर्व एवं अनिवार्य शर्त है।"[2] ठीक उसी प्रकार कौमित सेम्युलसन एवं शैली[3] तथा

ग्रामीण साख एवं पुनर्मूल्यांकन समिति[4] ने भी अपने अध्ययनों में व्यक्त किया है। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि देश के आर्थिक विकास की गति प्रदान करने के लिए कृषि के विकास एवं महत्त्व को समझा जाए। इस सम्बन्ध में गुरनार मिरडाल ने उचित ही कहा है कि "दक्षिणी एशिया में दीर्घकालीन आर्थिक विकास कृषि के विकास के द्वारा ही सम्भव हो सकेगा।"[5] भारत के सम्बन्ध में यही विचार अर्थशास्त्री कोल एवं हूबर[6] के हैं।

कृषि साख की आवश्यकता :-

आधुनिक युग में समस्त आर्थिक क्रियायें साख तथा पूँजी द्वारा संचालित होती हैं। आधुनिक तकनीक पर आधारित गहन विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र के लिए भी पर्याप्त निवेश की आवश्यकता होती है। आधुनिक कृषि तकनीक उन्नतशील बीज, रासायनिक खाद, कीटनाशक औषधियाँ, सिंचाई साधनों, भूमि नियोजन तथा विकास पर आधारित है। इन साधनों की व्यवस्था के लिये पर्याप्त मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है जिसे कृषक निजी साधनों से पूरा नहीं कर पाते हैं और इन्हें कृषि साख की आवश्यकता महसूस होती है। बड़े किसानों की तुलना में छोटे किसानों के लिए साख और भी अधिक महत्वपूर्ण होती है क्योंकि साख के अभाव में इस वर्ग के कृषक नये कार्यक्रमों को अपनाने से वंचित रह जायेंगे। आर०एस० मिश्रा के अनुसार - "कृषि विकास के लिये पूँजी रूपी इन्जेक्शन देना आवश्यक है।"[7] कृषि उद्योग की अनिश्चितता और इसमें निहित विविध जोखिमों के कारण कृषि साख की आवश्यकता और भी अधिक है। इसकी पुष्टि एच० वेल्शा[8] एवं नेल्शन और मरे[9] द्वारा किये गये अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्षों से भी होती है।

कृषि साख की महती आवश्यकता होते हुए भी कृषकों को साख सुलभ कराने हेतु समुचित ध्यान नहीं दिया गया है। पूँजी बाजार तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं ने वित्त प्रदान करने में कृषि की उपेक्षा की है। सम्भवतः इसका प्रमुख कारण यह है कि एक उत्पादक अथवा व्यापारी की अपेक्षा एक कृषक के कार्य अधिक जटिल है। कृषि कार्यों का चक्र अधिक लम्बा होने एवं प्रकृति पर आश्रित होने के कारण असामान्य जोखिम की सम्भावनायें अधिक हैं, ऐसी स्थिति में जबकि एक सामान्य किसान की व्यक्तिगत शिक्षा तथा जीवन पद्धति उक्त प्राकृतिक दोषों को दूर करने में असमर्थ है तथा उस समय जबकि उसकी समस्त पूँजी भूमि, खाद में फँसी होती है। कृषक अपनी कृषि वित्त सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति बिना साख के नहीं कर सकते हैं। इस तथ्य का उल्लेख सर एफ०ए० निकल्सन ने अपनी रिपोर्ट में निम्नवत् किया है- "यूरोप, अमरीका तथा भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के इतिहास से एक ही प्रकार की शिक्षा मिलती है कि कृषकों को ऋण लेना चाहिए तथा उन्हें ऋण लेना होगा।" अल्पकालीन ऋण की व्यवस्था करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि किसान की पूँजी उसकी भूमि तथा स्टाक में फँसी रहती है। अतः न तो साख सर्वथा अनुपयुक्त है और न ही वह किसानों की दुर्बलता का चिन्ह है।[10] अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण रिपोर्ट में कृषि साख के महत्त्व के सम्बन्ध में यहाँ तक कहा गया है- "वहीं गाँव बसने योग्य है जहाँ पर आवश्यकता पड़ने पर कर्ज के साधन हों, दवा के लिए वैद्य, पूजा के लिये पंडित तथा एक ऐसे जल श्रोत का प्रबन्ध हो, जो कभी सूखता न हो।"[11] संयुक्त राष्ट्र संघ के एक प्रकाशन के अनुसार- "विश्व के अधिकतम किसानों को एक न एक समय ऋण लेना पड़ता है और प्रायः बहुत अधिक ऋण लिया जाता है। कृषि से उपज प्राप्त करने केलिये उन्हें और भी ऋण की आवश्यकता होगी और जब भूमि में अधिकारों का पुनर्वितरण होने लगता है तब लगभग सदा ही अधिक ऋण की

आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार यह कृषि के हित में है और कृषि एवं सामान्य प्रगति के लिए आवश्यक है कि कृषकों को साख पर्याप्त मात्रा में उचित लागतों पर उपलब्ध हो।[12]

वास्तव में कृषि कार्यों हेतु कृषि साख की आवश्यकता का होना न केवल भारत में वरन् सभी देशों की एक सार्वभौमिक घटना है। यह तथ्य कि कृषि कार्यों को ठीक प्रकार से सम्पन्न करने में कृषि साख की महती आवश्यकता होती है, न केवल भारत के संदर्भ में खरा उतरता है वरन् सभी देशों की अर्थव्यवस्थाओं में व्यवहृत होता है। इसकी पुष्टि निकल्सन ने की है "रोम से स्कॉटलैण्ड तक की सार्वभौमिक कृषि इतिहास की यही शिक्षा है कि कृषि का मूलाधार साख है, न तो देश की स्थिति और न भूमि स्वामित्व की प्रकृति और न कृषि की स्थिति कृषकों को उतना अधिक प्रभावित करती जितना यह तथ्य कि कृषकों को ऋण लेना चाहिए।"[13]

इस प्रकार व्यावहारिक दृष्टिकोण से कृषि साख कृषि क्रियाओं में चेतना एवं स्फूर्ति का संचार करती है और कृषकों की उन जोखिमों से रक्षा करती है जो साख के अभाव में उनको उठानी पड़ती है। कृषि वित्त की व्यवस्था करने का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि कृषि की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होने पर न केवल उसमें संलग्न एवं प्रयुक्त साधनों की कार्य क्षमता बढ़ती है बल्कि कृषि उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होने पर राष्ट्रीय सुरक्षा तथा सामाजिक एवं राजनीतिक स्थायित्व के उद्देश्यों की पूर्ति करने में भी सफलता मिलती है। यही कारण है कि किसानों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे भूमि की उत्पादन क्षमता बढ़ायें परन्तु उनके इस कार्य में सबसे बड़ी कठिनाई वित्तीय साधनों की न्यूनता है। भारतीय कृषक भी इसके अपवाद नहीं हैं। कृषि विकास में साख की भूमिका का अध्ययन वेल्शा,[14] मरे,[15] हीडी,[16] व्यास,[17] देशाई,[18] उमा लेले,[19] सी०एच०एच० राव,[20] बल्देव

सिंह[21] और करम सिंह तथा रामान्ना[22] आदि ने भलीभाँति किया है। नव परम्परावादी अर्थशास्त्री शुम्पीटर[23] साख को विकास की घटना कहते हैं।

यदि सही समय पर और पर्याप्त मात्रा में कृषि साख उपलब्ध हो तो कृषि की अन्य समस्याओं को हल किया जा सकता है। आर0के0 तलवार इसी बात पर जोर देते हैं- "साख की उपलब्धता से कृषि की सभी समस्यायें अपने आप हल हो सकती है।"[24] कृषकों को विभिन्न उद्देश्यों एवं काला-विधियों के लिए साख की आवश्यकता होती है। चूँकि विस्तृत सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए व्यक्तिगत संस्थायें एक सीमित भूमिका निभाती हैं, अतएव कृषि साख की समस्या को समाप्त करने हेतु संस्थागत वित्त ही एक उचित मार्ग है।

उद्देश्यानुसार साख की आवश्यकता :-

प्रायः कृषकों को दो प्रकार के उद्देश्यों के लिए ऋण की आवश्यकता पड़ती है:-

1. उत्पादक कार्यों के लिए :- कृषकों को मुख्यतः कृषि उत्पादन, उपज की बिक्री, भूमि में सुधार व कृषि विकास आदि के लिए ऋण की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये खाद, बीज, कृषि यंत्र खरीदना, लगान व मजदूरी का भुगतान करना, कुँओं की खुदाई एवं मरम्मत के लिए तथा नई भूमि को कृषि योग्य बनाना आदि। आर्थिक दृष्टि से ऐसे ऋणों को न्यायसंगत भी समझा जाता है। इन उपयोगों में इनके भुगतान का प्रबन्ध भी निहित रहता है।

2. उपभोग सम्बन्धी आवश्यकताओं के लिए :- उपभोग सम्बन्धी आवश्यकताओं के अन्तर्गत कृषकों द्वारा वे ऋण लिए जाते हैं जिन्हें कृषक फसल की बुवाई और बिक्री के समय अन्तराल में अपने परिवार की उपभोग सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये लेते हैं और जिसे फसल की बिक्री के बाद चुकता किया जा सकता है। कभी-कभी कोई ऋण उपभोग के लिये लिया जाता है परन्तु इसका सम्बन्ध उत्पादन से होता है, विशेष रूप से जब खेती में किसान पारिवारिक श्रम का प्रयोग करता है, ऐसी दशा में उपभोग पर खर्च करने के लिए लिया गया ऋण भी आर्थिक दृष्टि से न्यायसंगत ठहरता है। इसके अतिरिक्त कृषक अन्य उपभोग सम्बन्धी कार्यों की पूर्ति हेतु जैसे- विवाह, जन्म-मरण, धार्मिक उत्सवों, रीति-रिवाजों को निभाने, गहने बनवाने तथा मुकदमेबाजी आदि के लिए ऋण लेता है। इस प्रकार के ऋणों को न्यायसंगत नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि ये ऋण ऐसे मदों पर प्रयोग किये जाते हैं जिसमें उधार लौटाने का प्रबन्ध स्वतः नहीं होता है। तालिका नं0 1 में कृषकों द्वारा लिए गये ऋणों को उद्देश्यानुसार दर्शाया गया है। जहाँ कृषकों ने उपभोग सम्बन्धी कार्यों के लिए 1961-62 में 49.2 प्रतिशत ऋण लिया था, वहीं पर 1971-72 में घटकर 37.8 प्रतिशत रह गया। तालिका में दिये गये तथ्य यह प्रदर्शित करते हैं कि उपभोग सम्बन्धी ऋण धीरे-धीरे उत्पादन सम्बन्धी ऋण से कम हो रहा है।

TABLE NO.1

Proportion of Borrowing by Cultivators & According to main purpose during 1951-52, 1961-62, 1971-72

Main Purpose	1951-52 (A)	1961-62 (B)	1971-72 (C)
1. Productive purpose	37.3	40.1	54.0
a) Farm Business	34.4	36.6	49.7
b) Non Farm Business	2.9	3.5	4.3
2. Cousumption(House Hold Expenditure)	43.2	49.2	37.8
3. Repayments of Debts	4.0	5.0	1.5
	15.5	5.7	6.7
	100.0	100.0	100.0

Source: A. All India Rural Credit Survey 1951-52.

B. All India Rural Debt & Investment Survey 1960-61.

C. All India Rural Debt & Investment Survey 1971-72.

समयानुसार ऋण की आवश्यकता :-

विभिन्न उद्देश्यों के लिए ऋण की आवश्यकता विभिन्न कालाविधियों के लिये होती है। कालाविधियों का आशय इस अवधि से जिसमें ऋण चुकाया जाता है। समय के अनुसार ऋण की आवश्यकता को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता हैं:-

(क) अल्पकालिक ऋण :- अल्पकालिक ऋणों की अवधि अधिक से अधिक 15 माह की होती है। ये ऋण खाद, बीज, मजदूरी व लगान चुकाने, फसल की बिक्री करने अथवा कुछ विशेष प्रकार के आवश्यक पारिवारिक व्ययों को पूरा करने के उद्देश्य से लिये जाते हैं।

(ख) मध्यकालीन ऋण :- मध्यकालिक ऋणों की अवधि 15 माह से 5 वर्ष तक की होती है। साधारणतया ऐसे ऋण पशु खरीदने, भूमि का सुधार करने, कुँओं और कृषि उपकरणों आदि की मरम्मत के उद्देश्यों से लिए जाते हैं। इन ऋणों की वापिसी में अपेक्षाकृत अधिक समय लग जाता है।

(ग) दीर्घकालिक ऋण :- दीर्घकालिक ऋणों की अवधि 5 वर्ष से 15 या 20 वर्ष तक की होती है। साधारणतया ऐसे ऋणों की आवश्यकता नई भूमि को कृषि योग्य बनाने, कुँए खुदवाने, भूमि व मशीनें खरीदने तथा अन्य पूँजीगत व्यय के लिए होती है। इन कार्यों पर लगी ऋण की रकम को मध्यावधि में लौटाना सम्भव नहीं होता है। अवधि को लम्बे समय में फैलाकर ऐसे ऋण चुकाये जा सकते हैं। सन् 1985 में कृषकों की विभिन्न कालावधियों के लिये ऋण की माँग को तालिका नं0 2 में प्रदर्शित किया गया है।

TABLE NO.2

Agricultural Credit Requirements by 1985

Type of Loans	Marginal & Small Farmers	Medium & Large Farmers	Total
Short Term Loan	2193	5691	7884
Medium Term Loan & Long Term Loan	2497	5768	8265
	4690	11459	16149
Provision for Machinery & Implements			400
TOTAL:			16549

Source: National Commission on Agricultural,1976.

भारत में साख {ऋण} आवश्यकता के अनुमान :-

भारत में पहिले कृषि ऋण आवश्यकता के आँकलन हेतु कोई विश्वसनीय सर्वेक्षण नहीं किये गये। सर्वप्रथम अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण जाँच समिति ने 1954 में कृषि साख की आवश्यकता 2000 करोड़ रूपये आँकी, जिसमें 800 करोड़ रूपये कृषि ऋण से ही तथा शेष 1200 करोड़ रूपये ऋण संस्थाओं द्वारा प्रदत्त किया जाना था। भारत सरकार के कृषि उत्पादन बोर्ड द्वारा बनाये गये कार्यकारी दल {1965} के अनुमान के अनुसार 1970-71 में कृषि साख की आवश्यकता 1106 करोड़ रूपये थी। खाद्य एवं कृषि मन्त्रालय द्वारा अल्पकालिक, मध्यकालिक एवं दीर्घकालिक साख की आवश्यकता वर्ष 1973-74 के अन्त में 3200 करोड़ आँकी, जिसमें

1550 करोड़ रूपये का ऋण अल्पकालिक तथा 1650 करोड़ रूपये का ऋण मध्यकालिक तथा दीर्घकालिक आवश्यकता के लिए था। अखिल भारतीय ग्रामीण साख पुनर्अवलोकन समिति 1969 के अनुमान के अनुसार 1973-74 में अल्पकालिक ऋण की आवश्यकता 2000 करोड़ रूपये आँकी। इस समिति ने अनुमान लगाया कि चौथी योजनावधि में कुल 1500 करोड़ रूपये अल्पकालिक एवं मध्यकालिक ऋण की एवं 500 करोड़ रूपये दीर्घकालिक ऋण की आवश्यकता होगी। राष्ट्रीय कृषि आयोग 1976 ने मार्च 1985 तक 165 मिलियन टन खाद्य पदार्थों के उत्पादन के लिये 9400 करोड़ रूपये की आवश्यकता का अनुमान लगाया था। योजना आयोग ने सांतवीं पंचवर्षीय योजना के लिये साख की आवश्यकता का अनुमान 1990 तक के लिए 28650 करोड़ रूपये लगाया।[25]

कृषि ऋण के उक्त अनुमानों एवं जो ऋण वास्तव में प्रदान किये गये हैं, उसमें बहुत अन्तर रहा है। कृषि के आधुनिकीकरण एवं खाद, बीज इत्यादि की कीमतों में वृद्धि के कारण साख की और आवश्यकता होगी। इसलिए यह आवश्यक है कि कृषकों को साख समयानुसार उचित एवं सस्ते दर पर उपलब्ध करायी जावे।

साख के स्रोत :-

ग्रामीण साख का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण व्यक्तियों के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर में सुधार लाना तथा सामान्य रूप से देश की स्थिति में सुधार करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति की आवश्यकता भारत सरकार ने महसूस की और विभिन्न समितियों एवं आयोगों की सिफारिशों के आधार पर संस्थागत साख की व्यवस्था के लिये कदम उठाये। सरकारी प्रयासों के परिणामस्वरूप ग्रामीण साख के क्षेत्र में इन संस्थाओं की भूमिका महत्वपूर्ण

हो गई जिससे ग्रामीणों के उत्थान की सम्भावनायें बढ़ गई।

कृषि के लिये साख दो स्रोतों से प्राप्त होती है, प्रथम संस्थागत स्रोत जिनके अन्तर्गत सहकारी संस्थायें, व्यापारिक बैंकें, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकें, भारत सरकार, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, कृषि एवं ग्रामीण विकास का राष्ट्रीय बैंक (नाँबार्ड) आती हैं। द्वितीय गैर संस्थागत क्षेत्र जिसके अन्तर्गत साहूकार एवं महाजन, नियोजक, देशी बैंकर, धनी भूस्वामी, कमीशन एजेन्ट आदि आते हैं। बैंक सरकारी नीतियों के तहत राष्ट्र की उन्नति में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

संस्थागत वित्त के अभाव में महाजन तथा साहूकार ग्रामीणों का शोषण करते रहे हैं जैसाकि कृषि उप समिति 1945 ने अपनी रिपोर्ट में कहा है- "महाजन अधिकांशतः ग्रामीण ऋणियों का शोषण करते हैं एवं उनकी असहायता, अज्ञानता और आवश्यकता के कारण अनुचित लाभ उठाते हैं।"[26] भारतीय ग्रामीणों की इन परेशानियों को समाप्त करने के लिये तथा उन्हें विभिन्न संस्थागत संस्थाओं के माध्यम से उचित तरीके से साख प्राप्त हो एवं साख पर्याप्त तथा सामयिक हो, इसके लिए प्रथम चरण साख का संस्थाकरण है।

संस्थागत स्रोतों के अन्तर्गत व्यापारिक बैंकों ने कृषि साख के क्षेत्र में मात्र औपचारिकता निभायी है। उन्होंने अधिकांशतः अपना कार्य शहरी क्षेत्रों तक सीमित रखा है। दूसरे शब्दों में इन बैंकों ने केवल शहरी क्षेत्रों में व्यवसायिक कार्यों हेतु साख प्रदान की है। इन बैंकों का साख और जमा का अनुपात इस बात की पुष्टि करता है। सन् 1983 में ग्रामीण क्षेत्रों में यह अनुपात 59.92 प्रतिशत था, जोकि राष्ट्रीय औसत 68 प्रतिशत से कम था, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह अनुपात 76.55 प्रतिशत था।[27] साथ ही

व्यापारिक बैंकों ने आर्थिक महत्त्व के प्रमुख क्षेत्रों जैसे- कृषि, आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गों और ग्रामीण उद्योगों की उपेक्षा की है।

सरकार के द्वारा तकावी एवं पंचायत समिति कृषि ऋण के रूप में इस क्षेत्र को दी जाने वाली सहायता बहुत कम रही है। कार्यकारी दल की सिफारिशों के आधार पर देश के ग्रामीण पुर्नत्थान के लिये क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का जन्म हुआ है परन्तु अत्यन्त अल्पायु होने के कारण इनकी भूमिका अभी सीमित है। सहकारी संस्थायें कृषकों को ऋण देने के विषय में पूर्ण अनुभव एवं दक्षता रखती है। इन संस्थाओं में प्रजातान्त्रिक प्रबन्ध तथा स्थानीय प्रतिनिधित्व होता है। अतः ग्रामीण साख की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सहकारी संस्थायें एक मात्र साधन एवं आशा का केन्द्र है। वे ग्रामीणों की स्थानीय आवश्यकताओं की भी पूर्ति करती हैं। महाजनों की तरह सहकारी संस्थाओं को भी स्थानीय उत्पादन सम्भावनाओं की निकटता से जानकारी होती है। कालवर्ट के अनुसार- "सहकारिता इसका व्यवहारिक विकल्प है।"[28] प्रमुख रूप से सहकारी संस्थायें किसानों से परिचित होती हैं और देश के ग्रामीण साख का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है।[29] लेकिन दुर्भाग्य वश एक लम्बे समय तक इसका विकास अवरूद्ध रहा। देश के विभिन्न भागों में कृषि की उत्पादकता का स्तर अत्यधिक न्यून है, जिसके लिए कृषि साख की समुचित व्यवस्था न होना प्रमुख रूप से उत्तरदायी रही है। अतः कृषक की साख आवश्यकताओं की ठीक-ठीक जानकारी करना एवं आपूर्ति हेतु उपयुक्त प्रबन्ध करना नितांत आवश्यक है। यह प्रसन्नता की बात है कि विगत वर्षो में कृषि साख की व्यवस्था में सहकारी संस्थाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने पर विशेष बल दिया जा रहा है।

साहित्य का पुनर्विलोकन :-

सहकारी साख पर एक संगठित प्रयास सर्वप्रथम 1928 में शाही कृषि आयोग[30] ने किया और यह बताया कि आन्तरिक कमियों के कारण कई राज्यों में सहकारी साख आन्दोलन असफल रहा, जिसे उच्च स्तर की कार्यक्षमता को प्राप्त करके ठीक किया जा सकता है। 1931 में केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति[31] ने सहकारी साख समितियों का पुनरावलोकन किया और यह प्रमुख दोष पाया कि सहकारी साख समितियों के सदस्यों ने उस समय की अदायगी में विलम्ब किया जबकि वे अदायगी करने की स्थिति में थे। साथ ही लोगों को ग्रामीण साख की प्रमुख बातों और सहकारी सिद्धांतों की समुचित जानकारी न थी। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने अपने वैधानिक प्रतिवेदन 1937[32] में देश के सहकारी बैंकों की करूणाजनक स्थिति का विवरण दिया और सुधार हेतु कुछ उपाय बतायें, जैसे उसमें अल्पकालीन और दीर्घ-कालीन साख ढाँचों का पृथक्करण, शक्तिशाली आरक्षित कोषों का निर्माण, उत्पादक उद्देश्यों के लिए ऋणों का दिया जाना, सहकारी दर्शन के आधार पर प्राथमिक समितियों का पुनर्निर्माण आदि। कृषि वित्त उपसमिति (1954) एवं सहकारी योजना समिति 1945 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के द्वारा नियुक्ति की गई। कृषि वित्त उपसमिति[33] ने यह पाया कि बहुत बड़ी मात्रा में साधनों की निष्क्रियता प्राथमिक समितियों की एक सामान्य समस्या थी जबकि सहकारी योजना समिति[34] का यह मत था कि राज्य की अहस्तक्षेप की नीति और लोगों की अज्ञानता सहकारी आन्दोलन के धीमे विकास के प्रमुख कारण थे।

देश के विभाजन से सहकारी आन्दोलन पर विपरीत प्रभाव पड़ा था। बहुत से राज्यों विशेष रूप से उत्तर प्रदेश, बिहार एवं मद्रास में बहुउद्देशीय सहकारी समितियां प्रारम्भ की गई थी। सरकार ने भी इसी

तरह की समितियों की आवश्यकता महसूस की थी, ताकि ग्रामीण क्षेत्रों की बचत को उत्पादन बढ़ाने में लगाया जा सके। सन् 1949 में श्री पुरूषोत्तम दास ठाकुरदास[35] की अध्यक्षता में भारत सरकार ने ग्रामीण बैंकिंग जाँच समिति की नियुक्ति की। सहकारी आन्दोलन के कार्यकरण का अध्ययन करने के पश्चात यह महसूस किया गया कि सहकारी बैंकिंग ढाँचा (मद्रास और बम्बई छोड़कर) शक्तिशाली नहीं था, अतः इसके पुनर्गठन की आवश्यकता थी।

सहकारी आन्दोलन को शक्तिशाली बनाने के लिए एवं ग्रामीणों की स्थिति में सुधार लाने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक ने 1951 में श्री ए०डी० गोरवाला[36] की अध्यक्षता में अखिल भारतीय ग्रामीण सर्वेक्षण समिति की नियुक्ति की। अपने सर्वेक्षण में समिति ने 75 जिलों के 600 गाँवों के 9000 व्यक्तियों को सम्मिलित किया और यह सारांश निकाला कि यद्यपि भारत में सहकारिता आन्दोलन असफल हो गया, परन्तु इसे सफल बनाने की अत्यन्त आवश्यकता है। बम्बई राज्य सहकारी बैंक लिमिटेड[37] ने 1956 में सफल बीमा योजनाओं से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं की समीक्षा करने के लिए एक आंकलन समिति नियुक्ति की। समिति ने यह पाया कि बहुत सी सहकारी समितियों ने ऋण देने में छोटे किसानों और फसल के साझेदारों की उपेक्षा की। बहुत सी स्थितियों में वैयक्तिक कारणों की वजह से इन्हें सदस्यता प्रदान नहीं की गई। 1961 में एम०एस० विश्वविद्यालय, बड़ौदा के बैंकिंग विभाग के वी०जी० शाह[38] ने एक अध्ययन किया जिसका शीर्षक था- "सितार महल में सहकारी साख आन्दोलन।" उसने समितियों के कार्यक्षेत्र की समस्या पर प्रकाश डाला। भारतीय रिजर्व बैंक[39] के द्वारा चुने हुए जिलों की अल्पकालीन सहकारी साख समितियों पर एक निश्चित आधारों पर ग्रामीण साख से सम्बन्धित पुर्ननिरीक्षण करवाये गये। सन् 1964

में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया[40] द्वारा कृषि साख से सम्बन्धित संस्थागत प्रबन्धों पर अध्ययन के लिये अनौपचारिक दल नियुक्त किया गया। इस दल का प्रमुख कार्य सहकारी साख समितियों की वित्तीय स्थिति का पुर्नआंकलन और विश्लेषण करना था। इस दल ने तब तक के लिए संक्रमण एवं पूरक व्यवस्था सुझायी जब तक कि सहकारी आन्दोलन शक्तिशाली न हो जाये।

सन् 1964 में कृष्णा राव[41] ने अपने अध्ययन में "छैः कृषि साख समितियां मदुरई एवं सलीम जिलों पर एक अध्ययन के अन्तर्गत" सहकारी साख समितियों की कार्य प्रणाली की एवं इनके सदस्यों की आर्थिक स्थितियों के संदर्भ में समीक्षा की। अध्ययन ने इस सत्य का उद्घाटन किया कि सहकारी साख समितियों के सदस्य अधिकांशतः निजी साख अभिकरणों के ऋणों में डूबे हुए हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के एग्रो एकोनोमिक रिसर्च सेन्टर के शर्मा[42] (1966) ने पैकिज क्षेत्रों में सहकारी साख व्यवस्था का आयोजन किया। पैकिज कार्यक्रम के अन्तर्गत साख समितियों को सुधरे हुए साधनों और सेवाओं के अतिरिक्त समय से साख उपलब्ध कराने की महत्वपूर्ण भूमिका का दायित्व सौंपा गया। अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि साख समितियों द्वारा दी जाने वाली साख की मात्रा घट गई, मौसमी ऋणों में कोई सुधार नहीं हुआ, प्रदान की जाने वाली साख उत्पादन केन्द्रित नहीं थी, अदायगी शेष बढ़ गये थे और बहुत से सदस्य ऋण अदा करने के स्थान पर सहकारी समितियों को छोड़ देना चाहते थे। 1968 में चौधरी और ओझा[43] ने सहकारी समितियों की "अधिक अन्न उपजाओ" वाले क्षेत्रों में कार्य और उपयुक्तता का विश्लेषण किया और निष्कर्ष निकाला कि 45 प्रतिशत साख आवश्यकताओं की पूर्ति सहकारी संस्थाओं द्वारा की जाती है। भारत सरकार ने सन् 1969 में आर०जी० सरैया की अध्यक्षता में बैंकिंग आयोग की नियुक्ति की। आयोग[44] ने सहकारी बैंकिंग की गहनता से जांच

की और सहकारी एवं व्यापारिक बैंकों के समन्वित विकास की सिफारिश की। सन् 1974 में एक स्टडी टीम[45] और सन् 1978 में विशेषज्ञ समिति[46] (एक्सपर्ट कमेटी) ने सहकारी बैंकों में शेष अदायगी की समस्या का अध्ययन किया और पाया कि शेष अदायगी की समस्या मुख्य रूप से आन्तरिक कारणों के अतिरिक्त स्वेच्छा से ऋण अदा न करने की है।

वी0टी0 नायडू[47] ने सन् 1969 में "फार्म क्रेडिट इन कोआपरेशन इन इण्डिया" नामक शीर्षक के अन्तर्गत अध्ययन किया। इसी प्रकार एल0आर0 राव[48] ने सन् 1974 में "रूरल कोआपरेटिब्स" नामक शीर्षक के अन्तर्गत अध्ययन किया। आधुनिक समय में इनका कार्य करने का तरीका कुछ पुराना प्रतीत होता है। क्योंकि उन्होंने अपने अध्ययन में अमुक तथ्य तक ही सीमित रखा। डी0वी0 कदम[49] ने सन् 1960 में "यूटीलाइजेशन ऑफ लोन्स टर्म फाइनेंस फ्राम न्यूवैल्स" और सन् 1979 में एलाविया[50] द्वारा "दि कोआपरेटिव लैण्ड डवलपमेंट बैंक इन गुजरात" नामक शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया। डी0वी0 कदम का अध्ययन हरित क्रान्ति से पूर्व के समय से सम्बन्धित था और इलाविया का अध्ययन हरित क्रान्ति के तुरन्त बाद का था। उन्होंने दीर्घकालीन साख की व्यवस्थाओं के अन्तर्गत कृषि के विकास को प्रकाश में लाने का प्रयास किया। कृषि साख की बढ़ती हुई आवश्यकताओं के संदर्भ में इनके सुझाव उपयुक्त प्रतीत नहीं होते। आर0डी0 प्रसाद[51] ने सन् 1978 में "कोआपरेटिब्स एण्ड रूरल डवलपमेंट" नामक शीर्षक के अन्तर्गत अध्ययन किया। इनका अध्ययन साख समस्याओं पर न होकर केवल प्रशासनिक पहलुओं तक सीमित था। एन0 मोहनम्[52] ने सन् 1981 में "एग्रीकल्चरल डवलपमेंट फाइनेंस" का गहराई से अध्ययन किया। यह भी केवल छोटे किसानों तक सीमित है। कृषि विकास के लिए सभी किसानों के प्रभावशाली प्रतिनिधित्व की आवश्यकता है।

इसी प्रकार के अध्ययन सन् 1976 में[53] वी०एन० कुलकर्णी, सन् 1970 में[54] जे०पी०एस० चौधरी एवं जे०एन० शर्मा, सन् 1985 में[55] देवरूखाकर एवं बोरडे, 1985 में[56] ही एम० कुतुम्बाराव, सन् 1953 में[57] बी०एन० चौबे, सन् 1964 में[58] वी०आर० दुभाषी, सन् 1983 में सी०बी० मामोरिया[59], सन् 1983 में ही सामुद्दीन और मेहफूजुर[60] ने कृषि साख पर अध्ययन किये।

उक्त अध्ययनों से सहकारी साख के सम्बन्ध में हमें पर्याप्त जानकारी तो मिलती है किन्तु विभिन्न क्षेत्रों की भौगोलिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में भिन्नता के कारण उक्त अध्ययनों के अन्तर्गत प्राप्त निष्कर्षों बुन्देलखण्ड जैसे पिछड़े क्षेत्र के संदर्भ में ठीक होंगे अथवा नहीं, ये अभी भी अध्ययन किया जाना है।

क्षेत्रीय अध्ययन का महत्व :-

भारत विश्व के बड़े राष्ट्रों में से एक है। जनसंख्या की दृष्टि से यह विश्व का दूसरा बड़ा राष्ट्र है और भौगोलिक क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व का सातवां बड़ा राष्ट्र है। उत्तर से दक्षिण तक इसका विस्तार 3219 किमी० तथा पूरब से पश्चिम में 2977 किमी० है। जलवायु, मिट्टी कृषि की पधतियां, आर्थिक एवं सामाजिक दशायें विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न हैं। केवल राज्यों में ही नहीं वरन् एक राज्य के विभिन्न क्षेत्रों (सम्भागों) एवं जनपदों की भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशायें भिन्न-भिन्न हैं। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश जैसे एक बड़े राज्य को पाँच भागों में विभक्त किया गया है- पश्चिमी क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, बुन्देलखण्ड, पवर्तीय क्षेत्र एवं पूर्वी क्षेत्र। भौतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विभिन्नताओं के कारण एक क्षेत्र की अर्थव्यवस्था दूसरे क्षेत्र की अर्थव्यवस्था

से पूर्णतया भिन्न है।

उक्त विभिन्नताओं के कारण एक क्षेत्र विशेष की दशायें एवं अध्ययन दूसरे क्षेत्र की दशाओं एवं निष्कर्षों से भिन्न-भिन्न प्रस्तुत करती है। अतः किसी क्षेत्र विशेष की समस्याओं से अवगत होने एवं उनके समाधान हेतु क्षेत्रीय स्तर पर समंकों का संकलन किया जाना और उनके द्वारा निष्कर्ष निकालना अधिक उपयोगी होता है क्योंकि राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्ध आंकड़ों एवं निष्कर्षों की उपादेयता क्षेत्रीय स्तर पर व्यवहारिक नहीं होती। यह बात कृषि क्षेत्र में साख की प्रकृति, उपलब्धता एवं समस्याओं के संदर्भ में विशेष रूप से देखने को मिलती है। क्योंकि देश के कुछ राज्यों में सहकारी साख का महत्वपूर्ण योगदान है जबकि कुछ राज्यों में इनका योगदान नगण्य है।

इसके अतिरिक्त वर्तमान युग में सरकार का दृष्टिकोण आर्थिक विकास की योजनाओं का प्रारूप अखिल भारतीय स्तर पर तैयार न करके जनपद स्तर पर तैयार करने का है, अर्थात् ऊपर से नीचे की ओर की प्रक्रिया के स्थान पर नीचे से ऊपर की ओर विकास की योजनाओं के गठन की प्रक्रिया पर बल दिया जा रहा है। आर्थिक नियोजन के विगत वर्षों के अनुभव से यह तथ्य सामने आया है कि हमारे विकास योजनाओं की एक सबसे बड़ी कमी आधार स्तर (ग्राम्य विकास) पर सूक्ष्म अध्ययन करने की अवहेलना रही है।[6]

यह निर्विवाद सत्य है कि क्षेत्रीय स्तर पर किये गये अध्ययनों से प्राप्त सूचनायें एवं तथ्य आधार स्तर पर योजनाओं को तैयार करने एवं उनके कार्यान्वयन में सहायक होगी। साथ ही क्षेत्र विशेष में उपलब्ध अशोषित साधनों के समुचित विदोहन एवं शोषण में उपयोगी सिद्ध होगी। इसी तथ्य को त्रिलोक सिंह ने अपने शब्दों में व्यक्त किया है- "सुव्यवस्थित क्षेत्रीय

नियोजन एवं विकास तथा क्षेत्रीय असन्तुलन को दूर करने एवं समतावादी समाज की संरचना के लिए केवल राज्य स्तर पर विश्वसनीय सूचनायें एवं तथ्यों के संकलन की आवश्यकता नहीं है, वरन् क्षेत्रीय स्तर एवं जनपदीय स्तर पर इस प्रकार की सूचनायें प्राप्त करना आवश्यक है।[62]

अतः प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में अध्ययन के क्षेत्र को उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड सम्भाग तक ही सीमित रखा गया है, जिसमें पाँच जिले- झाँसी, ललितपुर, जालौन, हमीरपुर, बाँदा आते हैं। यह सम्भाग $24^0 20$ एन अक्षांस से $26^0 30$ एन तक तथा $78^0 10$ बी से $81^0 3$। देशान्तर तक फैला हुआ है। इसके उत्तर पूर्व में यमुना नदी बहती है और इटावा, कानपुर देहात, फतेहपुर, इलाहाबाद जनपदों के द्वारा इसकी उत्तरी सीमा निर्धारित होती है। पश्चिम में मध्य प्रदेश के भिण्ड, ग्वालियर, दतिया, शिवपुरी और गुना जिले हैं। दक्षिण में मध्य प्रदेश के ही सागर, टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना और सतना एवं रीवा जिलों के द्वारा इसकी सीमा निर्धारित होती है।

अध्ययन विधि :-

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड क्षेत्र में कृषकों की दशा एवं ऋण की आवश्यकता तथा पूर्ति के साधनों में केवल सहकारी संगठन द्वारा कृषि साख में योगदान का अध्ययन किया गया है। यह द्वितीयक समंकों पर आधारित अनुभवजन्य अध्ययन है। अध्ययन के लिए त्रिस्तरीय ढाँचा- प्राथमिक स्तर पर सहकारी कृषि ऋण समितियाँ, जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक एवं राज्य स्तर पर राज्य सहकारी बैंक, जोकि अल्पकालीन तथा मध्यकालीन साख की आपूर्ति करते हैं एवं दीर्घकालीन साख प्रदान करने के लिए भूमि विकास बैंक का अध्ययन किया गया है। कृषि साख की आवश्यकता, कृषि वित्त में

सहकारी साख का महत्व, सहकारिता का विकास, अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा कृषि साख में योगदान एवं उपादेयता, कृषि से सम्बन्धित अन्य कार्यों में साख का योगदान, आदि का आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। समयाभाव एवं सीमित साधनों के कारण प्राथमिक संमकों का संकलन प्रश्नावलियों के माध्यम से सम्भव नहीं हो पाया है।

आंकड़ों के स्रोत :-

इस अध्ययन में प्राप्त निष्कर्ष द्वितीयक समंकों पर आधारित हैं। द्वितीयक आंकड़ों के लिए प्राथमिक समितियों, केन्द्रीय सहकारी बैंकों, राज्य सहकारी बैंक एवं राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक के विगत वर्षों के वार्षिक प्रतिवेदनों, रिपोर्टों तथा अन्य नीति विषयक प्रपत्रों से संकलित किये गये हैं। इस सम्बन्ध में प्रयास यह किया गया है कि जहाँ तक सम्भव हो सके नवीनतम तथ्य संकलित किये जायें।

REFERENCES

1. Wilson Gee; The Social Economics of Agriculture, New Delhi, Macgraw Hill Book Company Limited,1942,P.156

2. William Nicholls,H; The Piace of Agriculture in Economic Development, Agriculture Economic Development:(Eds) Eicher and Will, New York, Macgraw Hill Book Company Limited, 1964, P.215

3. Samuelson,P.A. and Selow,R.M.; Balanced Growth under constant Returns to scale, Econometrica, Vol.XXI PP 421-424

4. Reserve Bank of India, Report of the All India Rural Credit Review Committee, Bombay, 1972, P.55

5. Gurnar Myrdal; "Asian Drama- An Enquiry in to the Poverty of Nations", Volume-II, London, The Twentieth Century Fund INC, 1968, P.1241

6. Ansley, J.Cole and Edgar, M.Hoover, Population Growth and Economic Development in lew Income Countries, New Delhi, Princeton Development Press, 1958, P.120

7. Mishra,R.S.;"Agricultural Finance and Prospects" Book Ground Papers,(Workshop on Simplication and Rationalisation of loaning policy and procedures in Land Development Bank held at Jabalpur on 5-7 Feb,1979)

Bombay, National Co-operative Land Development Banks Federation Limited,1979, P.185

8. Belshaw,H.; The Provision of Credit with Special Reference to Agriculture, Rome, Food and Agriculture Organisation, 1931, P.58

9. Aavon,G. Nelson and William G. Murray, Agriculture Finance, U.S.A., I.O.W.A. State University Press,1975, P.17

10. Nicholson, F.D., Report Regarding the Possibility of Introducting Land and Agricultural Banks in the Madras Presideney, Madras: Vol.I, P.3 (1960) Reprint.

11. All India Rural Credit Survey Report, Year 1955-56, Vol.II, P.151

12. Rural Progress Through Co-operation United Nations, 1954, P.6

13. Nicholson,F.D.; Report Regarding The Possibility of Introducing Land and Agricultural Bank in the Madras Presidency, Madras, 1895, P.46

14. Belshaw,H. OP.Cit., P.215.

15. Murray W.G., Agricultural Finance, Principles and Practice of Credit USA,IOWA,State University Press,1949,P.185

16. Heady, Earlo; Economics of Agricultural Production and Resource Use, New Delhi, Prentice- Hill of India Pvt. Ltd. 1986, PP.543-44.

17. Vyas, V.S.; "Rapporteur's Report on Institutional Finance for Agricultural Development", Indian Journal of Agricultural Economics Vol.XXIII, No.4, October-December 1968, P.1-7

18. Desai, B.M. and Desai D.K.; Production Credit Management in Changing Agriculture, Ahmedabad, Indian Institute of Management, 1971, P.104

19. Uma Lele, J. "The Role of Credit and Marketing in Agricultural Development" Agricultural Policy in Developing Countries, (Ed) Nurual Islam, London, Maemillan, 1974, PP.414-417

20. Rao, C.H.H.; Technological Change and Distribution of Gaius in Indian Agriculture, New Delhi, Macgraw Hill Book Co.Ltd., 1975, PP.136-150

21. Baldev Singh, Regional Planning- Explorations in Agriculture and Industry, New Delhi, Oxford and IBH Publishing Company, 1981, PP.87-101

22. Karam Singh and Ramanna, R.; The Role of Credit and Technology in increasing income and Employment on

small and large farm in Western Region of Hyderabad District Andhra Pradesh, "Indian Journal of Agricultural Economics", Vol.XXXVI, No.3, July-September 1979,PP.41-51

23. Schumpeter,J.A.; The Theory of Economic Development, Cambridge, Mass, 1983, P.18.

24. Talwa,R.K.;"Key note Address" Seminar on Agricultural Banking, Hyderabad, September-October,1973, P.6

25. "Higher farm Credit Flow to farm Sector", The Hindu Bangalore, Saturday, March 8,1986, P.6

26. Government of India; Report of the Agricultural Finance Sub Committee, New Delhi,1945, P.59

27. Reserve Bank of India; Report on the Currency and Finance 1983-84, Volume, Economic Review, P.185

28. Calvert,H.; Co-operation in the Colonics, London, 1945, P.45

29. Reddy,C.R.; Co-operative Agricultural Finance,1988, P.9

30. Government of India, Report of the Royal Commission on Agriculture, Calcutta, Central Publication Division Bureau, 1928

31. Government of India, Report of the Central Banking Enquiry Committee, 1931.

32. Reserve Bank of India, Statutory Report, Bombay, 1937

33. Government of India, Report of the Agricultural Finance Sub Committee, Bombay, 1945 (Reprint 1965)

34. Government of India, Report of the Co-operative Planning Committee, New Delhi, 1946.

35. Government of India, Report of the Rural Banking Enquiry Committee, New Delhi, 1949.

36. Government of India, Report of the All India Rural Credit Survey Committee, Bombay, 1954.

37. The Bombay State Cooperative Bank Ltd., Crop Loan Evaluation Committee, Bombay, 1956.

38. Saha,B.G., Report of the Co-operative Credit Movement in Sinar Mahal, Baroda, M.S. University of Baroda, 1961.

39. Reserve Bank of India, Rural Credit Follow-up Survey, 1956-57, 1957-58, 1958-59 and 1959-60.

40. Reserve Bank of India, Report of the Informal Group on Institution at Arrangements for Agricultural Credit, Bombay, 1964.

41. Krishna Rao,B.; Six Agricultural Credit Societies - A case study in Madurai and Salem Districts, Madras, University of Madras, 1964.

42. Sharma, Package Programme in Aligarh, July 1964 to June 1965, New Delhi, Agro Economic Research Centre, University of Delhi.

43. Chowdhary,B.K. and Ojha,G.; A study of High yielding variety Programme in the District of Saran, Bihar with reference to Hybrid Maiz (Kharif), Agro Economic Research Centre, Viswa Bharati, 1969.

44. Government of India, Report of the Banking Commission, New Delhi, 1972.

45. Reserve Bank of India, Report of the study team on overdues in Co-operative Credit Institution, Bombay,1974.

46. Reserve Bank of India, Report of the Expert Committee on Co-operation, Bombay, 1979.

47. Naidu,V.T., Farm Credit and Co-operative in India, Bombay, Vora and Co., 1969

48. Rao,L.R.; Rural Co-operatives, Delhi, Sultan Chand and Sons, 1974.

49. Kadam,D.B., Utilisation of Long Term Finance for New Wells (unpublished thesis) Poona, Gokhale Institute of Politics and Economics, 1960.

50. Elavia, The study of Cooperative Land Development Banking

in Gujarat, Baroda, M.S. University of Baroda, 1979.

51. Prasad,R.D., Co-operative and Rural Development, Hyderabad, Osmania University, 1978.

52. Mohanam, N.; Agricultural Development Finance, Coimbatore, Rainbow Publication, 1981.

53. Kulkarni,B.N.; Crop Loan operations of organised, Credit Institutions with particular reference to Potato cultivation (unpublished Thesis) Poona, Poona University, 1976.

54. Chowdhari,J.P.S. and Sharma J.N.; Crop Loan System - A case study in Andhra Pradesh and Punjab, Hyderabad, National Institute of Community Development, 1970

55. Deorukhakar and Borude; "The Central Co-operative Bank performance with Special reference to Crop Loan", Indian Co-operative Review, Vol.XVI, No.2, October 1985.

56. Kutumba Rao,M.; Management of Central Co-operative Banks, New Delhi, Ashish Publishing House,1985.

57. Choubey,B.N.; Agricultural Banking in India, New Delhi, National Publishing House, 1953.

58. Dubhashi,B.R.; Principals and Philosophy of Co-operation, Delhi, Sultan Chand & Sons, 1964.

59. Memoria,C.B.; Rural Credit and Agricultural Co-operation in India, Allahabad, Kitab Mahal, 1983.

60. Samuddin & Mahfoozur Rehman; Co-operative Sector in India, New Delhi, S.Chand and Sons,Ltd., 1983.

61. M.N. Shrinivas; Reflexaition of Rural Development, Kurukshtera, Vol.XXVII, No.18, June 16, 1979; P.12

62. Trilok Singh; India's Development Experience, New Delhi, 1974, P.56

:: अध्याय द्वितीय ::

सहकारिता के आधारभूत सिद्धान्त एवं सहकारी आन्दोलन का इतिहास

1. सहकारिता के आधारभूत सिद्धान्त एवं उनका सहकारी साख में स्थान

2. कृषक की प्रत्याभूति एवं भुगतान करने की सामर्थ्य

3. सहकारी आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास

सहकारिता के सिद्धान्त

सहकारिता में अन्तर्निहित विचार एवं धारणायें ही सहकारिता के सिद्धान्त हैं, जो यह निश्चित करते हैं कि कार्यविधि के रूप में इसका स्वरूप क्या है। इन विचारों को प्राप्त करना ही सहकारी क्रियायों का उद्देश्य है।[1]

सहकारिता आन्दोलन के प्रणेताओं एवं संस्थापकों ने कुछ निश्चित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था और यह आशा की गयी थी कि सहकारिता आन्दोलन के भावी विकास में ये सिद्धान्त मार्ग-दर्शक होंगे। वास्तविकता भी यही है कि ये सिद्धान्त सहकारी आन्दोलन के विकास के लिये अधिक महत्वपूर्ण हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सहकारिता संघ द्वारा नियुक्त आयोग के शब्दों में "ये सिद्धान्त वे व्यवहार है जो सहकारी आन्दोलन के उद्देश्य की प्राप्ति के लिये आवश्यक अर्थात् सर्वथा अनिवार्य हैं।"[2]

सहकारिता पर कनाडा के एक प्रमुख विचारक जार्ज डेविडोविड ने सहकारिता के सिद्धान्तों की परिभाषा इस प्रकार दी है- "ये सिद्धान्त एक ऐसी नियमावली है जो सहकारी संगठनों की क्रियायों को शामिल करती है।"[3]

स्वर्गीय प्रो० डी०जी० कार्वे के मतानुसार- "सहकारी सिद्धान्त ऐसी सहकारी क्रियायों को संगठित एवं संचालित करने की एक विधि है जो सहकारी आन्दोलन के आदर्श अथवा उद्देश्य में अन्तर्निहित तथा अनिवार्य उप सिद्धान्त एवं उप परिणाम है।"[4]

वास्तव में सहकारिता के सिद्धान्त ऐसी मूलभूत विशेषतायें है जो एक संघ के रूप में सहकारिता की प्रकृति तथा उसके आचरण को निर्धारित

करती है। वे सहकारी संस्थाओं के मार्ग-दर्शन तथा कार्य संचालन सम्बन्धी नियम हैं, जिनके अभाव में सहकारी पद्धति का जीवित रहना सम्भव नहीं है। ये सिद्धान्त जैसा कि सामान्यतया लोगों का विश्वास है, काल्पनिक नहीं है बल्कि ठोस तथ्य है, जिनके प्रयोग पर ही किसी संगठन की सफलता निर्भर करती है।

अक्टूबर 1964 में अन्तर्राष्ट्रीय सहकारी संघ द्वारा एक आयोग की नियुक्ति की गई, जिसने निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था:-

1. <u>ऐच्छिक संगठन एवं मुक्त सदस्यता</u> :-

एक सहकारी संस्था की प्रमुख विशेषता उसके संगठन के स्वरूप का ऐच्छिक होना है। सहकारी समिति में किसी व्यक्ति को दबाव डालकर सदस्य नहीं बनाया जाता। यह व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है कि वह उसकी सदस्यता ग्रहण करें या न करें। वास्तव में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का पूर्ण दर्शन एक सहकारी संगठन में ही होता है। सदस्यता प्राप्त करना सदस्य की स्वेच्छा पर निर्भर करता है। पाल लेम्बर्ट के अनुसार- "ऐच्छिक सदस्यता का अभिप्राय यह है कि सहकारी संस्था में ऐसे ही व्यक्ति होना चाहिए जोकि स्वेच्छा से बिना किसी प्रकार का जोर या दबाव डाले, सम्मिलित हुए हैं। अतः ऐच्छिता का सिद्धान्त एक सहकारी समिति के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण समझा गया है। वह लोगों को अच्छे कार्य की प्रेरणा प्रदान करता है और उसमें पहल शक्ति को विकसित करता है।"

इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि खुली सदस्यता के सिद्धान्त का यह अर्थ नहीं है कि नये सदस्यों के प्रवेश पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होगा। सहकारी समिति ऐसे व्यक्तियों को सदस्य बनाने से मना कर

सकती है, जिनका प्रवेश समाज के हितों के लिये घातक होगा अथवा जो समितियों के कार्यों में रूकावटें डालने या उसको क्षति पहुँचाने के लिए ही उसके सदस्य बनना चाहते हैं। ऐसा प्रतिबन्ध खुली सदस्यता के सिद्धान्त के विरूद्ध नहीं है, बशर्ते कि सहकारिक कारणों पर आधारित हों, राष्ट्रीयता, धर्म, जाति, राजनीतिक विश्वास जैसे कारणों पर नहीं। श्री पी0आर0 दुभाशी ने ठीक ही कहा है कि "खुली सदस्यता के सिद्धान्त का अर्थ यह नहीं है कि समिति अपने दरवाजे ऐसे व्यक्तियों के प्रवेश के लिये खोल दे, जो दुराचारी हों, जो समान विचारों के न हों, जो स्वहित से प्रेरित हों और जो समिति में उसे नष्ट करने के लिए प्रवेश करना चाहते हों।

अतः सहकारी संस्था की सदस्यता केवल उन्हीं व्यक्तियों के लिए हैं जो इस बात का सन्तोषप्रद आश्वासन दे सकते हैं कि वे भविष्य में ईमानदारी का जीवन बितायेंगे।

2. प्रजातान्त्रिक या लोकतान्त्रिक नियन्त्रण :-

लोकतान्त्रिक नियन्त्रण का अर्थ यह है कि सहकारी समिति के प्रत्येक सदस्य को एक ही मत देने का अधिकार होना चाहिए, चाहे उसके पास कितने ही अंश क्यों न हो।

जैसाकि सिडनी और बीट्राइस वेव ने कहा है, "एक सहकारी समिति में एक अतिनिर्धन, अल्पायु और दीनहीन व्यक्ति भी, जिसने कि कल ही पहली बार में समिति से अंश खरीदा था, यदि उसने अपने अंशों के सम्बन्ध में न्यूनतम आवंटन राशि अदा कर दी हो तो समिति के विशाल कारोबार के संचालन में, उस व्यक्ति के साथ, जोकि समिति के स्थापना काल से ही उसका सदस्य चला आ रहा है और जिसने समिति में बहुत से

अंश खरीदे हुए हैं तथा उसे ऋण भी दिया हुआ है, समान रूप से भाग ले सकता है, समानरूप से मत दे सकता है तथा गम्भीर निर्णय लेने में समानता के आधार पर योग दे सकता है।"[5] इस प्रकार एक सहकारी संस्था में लोकतन्त्र के समान, सभी सदस्य एक बराबर माने जाते हैं, चाहे उनके पास कितने ही अंश क्यों न हो, उनका सामाजिक स्तर और उनकी आर्थिक स्थिति चाहे जो भी हो और संस्था से उनका व्यवसाय कितनी भी मात्राओं से होता है।

सहकारी संगठन में लोकतन्त्र के आदर्श का निर्वाह निम्नप्रकार से किया जाता है:-

1. प्रति सदस्य केवल एक वोट की सीमा रखी गई है, चाहे सदस्य ने कितने ही अंश क्यों न लिये हों।
2. किसी सदस्य की अनुपस्थिति में प्राक्सी द्वारा मताधिकार की अनुमति नहीं दी जाती।
3. प्रबन्धकारिणी के कार्य संचालन सम्बन्धी रिपोर्ट नियमित रूप से प्राप्त की जाती है।
4. सदस्यों को सुविज्ञ रखने के उद्देश्य से उनकी निरन्तर शिक्षा की व्यवस्था की जाती है।
5. सहकारी सामान की सभी पुस्तकें सदस्यों के निरीक्षण के लिये उपलब्ध रखी जाती है।

उक्त सिद्धान्त को अपनाने के कारण ही सहकारी संस्थायें अन्य आर्थिक संस्थाओं से भिन्न प्रतीत होती हैं। इस सिद्धान्त के प्रयोग से यह संकेत मिलता है कि "सहकारी संगठन मुख्य रूप से अपने सदस्यों और मानवीय मूल्यों पर निर्भर करते हैं, भौतिक मूल्यों पर नहीं। उनकी शक्ति उन

व्यक्तियों में निहित है, जोकि संस्था की सेवाओं का किसी भी रूप में उपभोक्ता, उत्पादक, क्रेता या विक्रेता के रूप में प्रयोग करते हैं, वह विनियोग के मूल्य में निहित नहीं है।"[6]

वर्तमान व्यवहार में यह देखा जाता है कि प्रत्येक सदस्य को सामान्य सभा में मत देने का अधिकार होता है, चाहे उसने समिति से खरीदें की हों या नहीं।

किन्तु प्रो० पास लेम्बर्ट ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि कहीं कोई ऐसा नियम नहीं है जो किसी सहकारी समिति को अपने किसी सदस्य के सभा में मत देने या उसके प्रबन्ध समिति में चुने जाने के अधिकार पर कोई रोक या प्रतिबन्ध लगाने से रोक सके।[7]

3. आधिक्य या लाभ का वितरण :-

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत जिसके द्वारा सहकारी समितियाँ अपने सदस्यों एवं सहयोगकर्ताओं को लागत पर सेवायें एवं वस्तुएं उपलब्ध करने के उद्देश्य की पूर्ति करती हैं। यह सिद्धान्त सहकारी अर्थव्यवस्था के अ-लाभ स्वभाव की व्यवहारिक अभिव्यक्ति है। इसकी पूर्ति आधिक्य को सदस्यों में सहकारी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत सामाजिक उत्पाद अर्थात् लाभ का वितरण अंश धारकों के अनुपात में ही नहीं वरन् सदस्यों द्वारा किये गये क्रयों के अनुपात में किया जाता है। यह सिद्धान्त इस महत्वपूर्ण तथ्य पर बल देता है कि एक सहकारी समिति अपने सदस्यों का एक स्वैच्छिक संगठन है और उसका अस्तितत्व अपने सदस्यों की सेवा करने के लिए है। समिति की निष्ठा अपने सदस्यों के प्रति होनी चाहिए, जबकि सदस्यों की निष्ठा भी सदैव समिति के प्रति होना आवश्यक है।[8]

उल्लेखनीय है कि आधिक्य का वितरण सदा से ही श्रम और पूँजी के बीच संघर्ष का कारण रहा है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत यह आधिक्य पूँजीपतियों द्वारा हड़प लिया जाता है। समाजवाद के अन्तर्गत राज्य इस आधिक्य को पूरे का पूरा हथिया लेने की इच्छा करता है। इस प्रकार स्वर्गीय प्रो० एच०एल० काजी के शब्दों में, "दोनों पूँजीवाद एवं समाजवाद वितरण सम्बन्धी अन्याय का पोषण करते हुए लगते हैं।"[9] किन्तु सहकारी व्यवस्थाउके अन्तर्गत यदि समिति के कार्यकलापों से कोई आधिक्य उदय होता है तो उस पर समिति के सदस्यों का अधिकार माना जाता है।

4. पूँजी पर सीमित ब्याज :-

सहकारी उपक्रम का एक अन्य महत्वपूर्ण सिद्धान्त पूँजी पर सीमित ब्याज का भुगतान करना है। सहकारी उपक्रमों में पूँजी को गौण स्थान दिया गया है, क्योंकि इसे बहुत ही मनहूस अन्यायों को जन्म देने वाली माना गया है। आन्दोलन के अग्रणियों ने यह श्रेष्ठ समझा कि अंशों पर कोई ब्याज न दिया जाये। परन्तु शीघ्र ही वे ये समझ गये कि बिना ब्याज दिये वे आवश्यक पूँजी प्राप्त नहीं कर सकते हैं। अब सहकारियों में यह धारणा प्रबल हो रही है कि एक उत्पत्ति साधन और एक आदाय के रूप में पूँजी को भी अन्य उत्पत्ति साधनों एवं आदायों की भाँति उचित पुरूस्कार पाने का अधिकार है। समस्या के इस पहलू पर विचार प्रकट करते हुए स्वर्गीय प्रो० डी०जी० कर्वे ने कहा- "जब भी एक सहकारी समिति सदस्यों अथवा गैर सदस्यों से पूँजी किसी भी रूप में उधार लेती है, तब वह पूँजी के उचित पुरूस्कार के बतौर ब्याज देकर एक तर्क सम्मत कदम ही उठाती है और ऐसा करने में सहकारिता के किसी सिद्धान्त का हनन नहीं होता। पूँजी की माँग बढ़ते जाने के कारण सहकारी संस्थाओं को अपने कार्यों के लिये वित्त की व्यवस्था करने हेतु पूँजी की प्राप्ति के इस सामान्य

उपाय का अधिकाधिक प्रयोग करना होगा।"[10]

सीमित ब्याज का उद्देश्य सहकारी समितियों में निःस्वार्थ भावना जाग्रत करना है अर्थात् उनको ऐसी संस्थाओं के रूप में विकसित करना है जिनका उद्देश्य लाभ कमाना न हो। इस सिद्धान्त का दूसरा पहलू यह भी है कि सहकारी व्यवस्था के अन्तर्गत पूँजी सेवक के रूप में कार्य करें, स्वयं में वह अधिक प्रभुत्वशाली न बन जाये। इसे सीमान्त ब्याज के रूप में एक निर्धारित "मजदूरी" से संतुष्ट होना पड़ेगा, जिससे कि व्यवसायिक कार्यकलापों से वह अनुचित प्रतिफल न पा सके।"[11]

मिर्धा सहकारिता समिति के अनुसार पूँजी पर ब्याज का सिद्धान्त सहकारी आदर्श के एक बुनियादी तत्व को दर्शाता है, इसके अन्तर्गत पूँजी के प्रतिफल को एक निर्दिष्ट स्तर पर बनाये रखा जाता है। समिति के शब्दों में- "पूँजी पर सीमित ब्याज का सिद्धान्त आर्थिक समानता को बढ़ाने में सहायक है तथा क्रय के अनुपात में लाभांश के वितरण की क्रिया को सम्भव बनाता है।"[12]

5. <u>सहकारी शिक्षा :-</u>

सहकारिता का एक सिद्धान्त जिस पर रोकडेल अग्रगामियों ने विशेष रूप से बल दिया, शिक्षा का प्रसार करता था। सन् 1853 में उन्होंने नियमों में यह प्राविधान शामिल किया था कि आधिक्य का 2-2.5 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय किया जायेगा। प्रायः सभी लोग यह स्वीकार करते हैं कि सहकारिता आन्दोलन की शक्ति और सफलता एक विस्तृत और सुविज्ञ सदस्यता पर निर्भर करती है तथा सहकारी शिक्षा के बिना सुविज्ञ सदस्यता की प्राप्ति नहीं हो सकती। मेडिसन ने एक बार ठीक ही

कहा था- "लोगों को पहले शिक्षित किये बिना उनके हाथ में कार्य संचालन की जिम्मेदारी सौंप देना एक खेदजनक अन्त की शुरूआत होगी। मुख्यतः इसी कारण भारत में सहकारिता समिति 1915 ने इस बात पर बल दिया था कि एक सहकारी समिति के प्रत्येक सदस्य को सहकारिता के सिद्धान्तों का ज्ञान होना चाहिए, ताकि सहकारिता वास्तविक बन सके, दिखावटी नहीं। स्वर्गीय प्रो० डी०जी० कार्वे ने जोकि आई०सी०ए० आयोग के अध्यक्ष पद पर आसीन थे, आई०सी०ए० की केन्द्रीय समिति को सहकारिता के सिद्धान्तों पर आयोग की रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए कहा कि- "यदि अपना अस्तित्व बनाये रखना है, तो कोई भी सहकारी समिति सहकारी शिक्षा के किसी भी पहलू की उपेक्षा नहीं कर सकता। निःसन्देह प्रत्येक सहकारी समिति सहकारी शिक्षा के सभी पहलुओं पर प्रत्यक्ष रूप से ध्यान नहीं दे सकती है परन्तु सभी सहकारी समितियों को इस दिशा में रूचि लेनी होगी तथा आवश्यक वित्तीय एवं अन्य प्रावधान करने होंगे।"[13] मिर्धा सहकारी समिति ने भी शिक्षा के प्रसार को सहकारी आन्दोलन का एक मूलभूत सिद्धान्त माना है।

6. पारस्परिक सहायता द्वारा आत्म सहायता :-

सहकारी आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त पारस्परिक सहायता द्वारा आत्म सहायता है। प्रो० डी०जी० कर्वे के अनुसार-"आत्म सहायता और पारस्परिक सहायता सहकारिता की सार वस्तु है। इनके अभाव में वास्तविक सहकारिता उदय नहीं होती।" भारतीय सहकारिता संघ के शब्दों में - पारस्परिक सहायता सदस्यों के आपस के सम्बन्ध की आत्मा है। इसका उद्देश्य है "प्रत्येक सबके लिए और सब प्रत्येक के लिये।"

एक सहकारी संस्था सामान्यतया वित्तीय रूप से दुर्बल व्यक्तियों

का संगठन है। एकाकी रूप में उनके साधन इतने कम होते हैं कि वे इनसे कोई लाभ नहीं उठा पाते और न अपनी दशा को सुधार सकते हैं। अतः अपनी दुर्बलता को सबलता में बदलने के लिए वे अपने प्रसाधनों को एक स्थान पर इकट्ठे कर लेते हैं और पारस्परिक हित के लिये मिलकर कार्य करते हैं।

7. राजनीतिक एवं धार्मिक निष्पक्षता :-

इस सिद्धान्त का तात्पर्य यह है कि एक सहकारी संस्था एक आर्थिक उपक्रम है न कि राजनीतिक तथा धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति करने का माध्यम अथवा साधन। एक सहकारी संस्था की स्थापना राजनीतिक अथवा धार्मिक संगठन के रूप में नहीं की जाती, बल्कि सदस्यों की आर्थिक दशा सुधारने तथा उनकी सेवा करने के उद्देश्य से की जाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार सदस्यता का आवेदन करने वालों के मध्य या वास्तविक सदस्यों के मध्य धार्मिक अथवा राजनीतिक आधारों पर कोई भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए। किसी को कोई सैद्धान्तिक घोषणा करने के लिये बाध्य नहीं किया जाना चाहिए। इस प्रकार सहकारी संस्था अपने सदस्यों को अपनी इच्छानुसार कोई विश्वास या धारणा रखने का किसी भी धर्म या राजनीतिक दल का सदस्य होने से नहीं रोकती। किन्तु समिति स्वयं भी किसी राजनीतिक दल या धार्मिक विश्वास के अधीन रहना पसन्द नहीं करेगी क्योंकि ऐसा करने पर उसे अपने सहकारी कार्यों के सम्पादन में स्वतन्त्रता की मात्रा कम करना पड़ सकती है।

8. मितव्ययता या बचत का सिद्धान्त :-

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत सहकारी संगठन को अपने सदस्यों में बचत

की आदत डालना है। बचत होने पर ही सदस्य अपनी सहायता स्वयं कर सकता है। जब तक सभी सदस्य इस सिद्धान्त के महत्व को नहीं समझेंगे, वे अपने सहकारी संगठन के साधनों में न तो वृद्धि कर सकेंगे और न भविष्य में जाने वाली आर्थिक कठिनाइयों से अपनी शक्ति के अनुसार अपनी रक्षा कर सकेंगे। मितव्ययता का आशय विवेकपूर्ण व्ययों और बचतों से ही नहीं है वरन् मितव्ययता पूर्वक प्रबन्धक करने से भी है, ताकि व्यर्थ के व्ययों से बचा जा सके।

9. <u>सेवा का सिद्धान्त :-</u>

सहकारी संस्थाओं का मुख्य लक्षण "सेवा" है जबकि पूँजीवादी उपक्रम का मुख्य प्रेरणास्रोत "लाभ" है। इनका समस्त व्यवसाय इस उद्देश्य से संचालित किया जाता है कि कम से कम खर्च पर सदस्यों के लिए सुविधाओं की व्यवस्था की जा सके। इस सेवा की भावना के आधार पर सहकारी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत दो उद्देश्यों को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है। मूल्यों में कमी लाना तथा उत्पादन व्यय को कम करना। इनके अतिरिक्त सहकारिता वितरण व्यवस्था में पाये जाने वाले अनेक दोषों को दूर करने में भी सहायक होती है तथा मध्यस्थों द्वारा लिये जाने वाले अनावश्यक लाभों से समाज को बचाती है। बेक्स ने ठीक ही कहा है "सहकारी प्रशासन से कभी निजी लाभ नहीं प्राप्त किया गया है।" यह ठीक है कि सहकारी संस्थायें लाभ कमाती है, परन्तु उनका संगठन लाभ कमाने के उद्देश्य से नहीं किया जाता। लाभ तो सेवा भावना का उपोत्पाद है, एक परिणाम मात्र है। वास्तव में यह सेवा की भावना ही है, जो सहकारी अर्थव्यवस्था का संचालन करती है।

10. न्याय का सिद्धान्त :-

सहकारिता का जन्म ही आर्थिक पद्धति में अन्याय के विरूद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। यही कारण है कि सहकारी संस्थाओं में न्याय के सिद्धान्त को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है। इस सिद्धान्त को व्यवहारिक स्वरूप देने के लिए सहकारी संस्था का आधिक्य या लाभ सदस्यों में उनके क्रय के अनुपात में बाँट दिया जाता है तथा सबके साथ समानता का व्यवहार किया जाता है, श्रमिक के साथ न्याय किया जाता है तथा उसे उचित वेतन मिलता है।

11. प्रचार का सिद्धान्त :-

एक सहकारी उपक्रम के क्रियाकलापों को शासित करने वाला एक अन्य सिद्धान्त "प्रचार" अर्थात् प्रत्येक काम सार्वजनिक रूप से करना है। इसके लिए यह आवश्यक है कि संस्था के व्यवसाय तथा कार्यों का अधिक प्रचार किया जाये। इस सम्बन्ध में सर एफ0 निकल्सन ने कहा है- "प्रत्येक यूरोपीय देश में प्रचार पहली आवश्यकता है, प्रत्येक तथ्य जन साधारण की जानकारी के लिए प्रस्तुत करना चाहिए।" अन्तर्राष्ट्रीय सहकारी संघ के अध्यक्ष डा0 मोरिज बोनाऊ का विचार है कि सहकारिता जनतन्त्र बिना बुद्धिमता पूर्ण प्रचार के कार्य नहीं कर सकता है। यदि सहकारी जनतन्त्र को एक निरर्थक शब्द में परिवर्तित होने से बचाना है, तो अधिकतर सदस्यों को कम से कम इतनी सूचना अवश्य प्रदान की जाये, जिससे कि वे अपने प्रतिनिधियों द्वारा लिये गये निर्णयों की सूझबूझ को परख सकें।

सहकारी सिद्धान्तों का प्रयोग :

यद्यपि भारत में किसी भी सहकारी विधान में सहकारी सिद्धान्तों

की परिभाषा नहीं दी गई है, परन्तु जनतान्त्रिक नियन्त्रण और पूँजी पर सीमित ब्याज के सिद्धान्तों को सहकारी अधिनियमों में पाये जाने वाले विभिन्न प्रावधानों में सामान्यतया मान्यता दी गई है। मुक्त सदस्यता के सिद्धान्त को भी पिछले कुछ वर्षों में पारित विधानों में मान्यता दी गई है। अनेक राज्य अधिनियमों में सदस्यों को प्रवेश न देने के विरूद्ध अपीलें का भी प्रावधान किया गया है। मिर्धा समिति ने यह सुझाव दिया है कि इस आशय का प्रावधान प्रत्येक राज्य में रखा जायें और अपील पर निर्णय करने का अधिकार राज्य और जिला स्तर पर एक प्रतिनिधि सभा को दिया जायें।

आश्रय प्रत्यर्पण या लाभ के वितरण का जहाँ तक सम्बन्ध है इसे भी अनेक सहकारी अधिनियमों में विविध प्रकार से मान्यता दी गई है।

हमारे देश में सहकारी आन्दोलन की सफलता तभी सार्थक होगी जब उपर्युक्त सभी सिद्धान्तों का कठोरता से पालन किया जाये, तभी हमारे देश की सहकारिता एवं सहकारी संस्थायें अधिक तेजी से विकास कर सकती हैं।

कृषकों की प्रत्याभूति एवं साख प्राप्ति की सामर्थ्य :

निर्धनता उस सामाजिक प्रक्रिया का सूचक है जिसमें समाज का एक भाग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर सकता। जब समाज का एक बहुत बड़ा अंग न्यूनतम जीवन स्तर से वंचित रहता है और केवल निर्वाह स्तर पर जीवन यापन करता है, तो यह कहा जाता है कि समाज में व्यापक निर्धनता व्याप्त है। भारत के संदर्भ में विशेषकर ग्रामीण जीवन में यह स्थिति अधिक विद्यमान है। जैसाकि विभिन्न अर्थवित्ताओं ने अपने सर्वेक्षणों से निर्धनता के तालिका नं0 1 में अनुमान लगाये हैं:-

तालिका नं0 1

भारत में निर्धनता के विभिन्न अनुमान

§व्यक्ति करोड़ों में§

अनुज्ञाता	वर्ष	ग्रामीण	नगरीय	कुल
1	2	3	4	5
पी0डी0 ओझा	1960-61	18.4 §51.6§	0.6 §7.6§	19.0 §44.0§
	1967-68	28.9 §70.0§		
डा0 कैप्टा	1963-64			16.1 §34.5§
पी0के0 वर्धन	1960-61	13.1 §38.0§		
	1967-68	22.0 §53.0§		
वी0एस0 मिन्हास	1956-57	21.5 §65.0§		
	1963-64	22.1 §57.8§		
	1969-70	21.0 §50.6§		
डाडेकर एवं रथ	1960-61	13.5 §40.0§	4.2 §50.0§	17.7 §41.0§
	1969-70	16.6 §40.4§	4.9 §50.0§	21.5 §41.0§

1	2	3	4	5
सातवां वित्त आयोग	1970-71	22.5 (53.0)	5.2 (51.0)	27.7 (52.0)
छठीं योजना (1978-83)	1977-78	23.9 (47.9)	5.5 (40.7)	29.4 (46.3)
छठीं योजना (1980-85)	1979-80	26.0 (50.7)	5.7 (40.0)	31.7 (48.2)

नोट:- कोष्ठक में दिये गये आंकड़ें कुल जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में है।
स्रोत:- रूद्र दत्त, के0पी0एम0 सुन्दरम - इण्डियन इकोनोमी, 1986, पृष्ठ-311, एस0 चन्द एण्ड कं0, नई दिल्ली

इसी प्रकार छठीं योजना (1978-83) में उल्लेख किया गया है कि सन् 1977-78 में ग्रामीण क्षेत्रों में कुल जनसंख्या का 40 प्रतिशत और नगरीय क्षेत्रों में 41 प्रतिशत निर्धनता रेखा के नीचे था। कुल रूप में निर्धनों की संख्या 29 करोड़ थी। इनमें से लगभग 16 करोड़ निर्धन रेखा के 75 प्रतिशत के भी नीचे रह रहे थे। सन् 1976-77 की कीमतों के आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों में 61.8 रूपये प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग व्यय के स्तर और शहरी क्षेत्रों में 71.3 रूपये के स्तर के नीचे वाली जनसंख्या निर्धनता रेखा के नीचे है। निम्न तालिका में निर्धनता स्तर के नीचे जनसंख्या दर्शायी गयी है, जो इस प्रकार है:-

निर्धनता स्तर के नीचे जनसंख्या

(लाखों में)

क्षेत्र	1979-80	1984-85
ग्रामीण	2596 (50.7)	1690 (30.0)
शहरी	572 (40.3)	492 (30.0)
कुल	3168 (48.4)	2152 (30.0)

नोटः- कोष्ठक में दिये गये आंकड़ें तद्नुरूप क्षेत्र में कुल जनसंख्या का प्रतिशत है।
स्रोतः- छठीं पंचवर्षीय योजना (1980-85)

भारत की ग्रामीण निर्धनता का एक प्रमुख कारण यह है कि यहां कृषि जोतों का वितरण असमान है। कुछ चन्द बड़े भू-स्वामियों के पास कुल कृषि योग्य भूमि का एक बड़ा भाग केन्द्रित है। जबकि अधिकांश कृषकों की जोते बहुत छोटी व अनार्थिक आकार की है। कृषि गणना पर अखिल भारतीय रिपोर्ट (1970-71) से पता चला है कि भारतीय कृषि में 710 संकाय जोते हैं, जिनके आधीन 1621 लाख हेक्टेयर भूमि का काश्त होती है। इन जोतों में से 362 लाख (अर्थात् 51%) एक हेक्टेयर से कम आकार वाली थी। इन सीमान्त जोतों के आधीन 145.6 लाख हेक्टेयर की काश्त होती थी। अतः सीमान्त एवं उपसीमान्त किसान जो निर्धनता स्तर के नीचे है और जिनके पास अपनी अजीविका कमाने के लिए बहुत थोड़ी भूमि का अनुपात है। इससे भारतीय कृषि वर्ग में बढ़ते हुए दरिद्रीकरण का संकेत मिलता है। जिसका प्रमाण सीमान्त या लगभग भूमिहीन श्रमिकों की संख्या में लगातार वृद्धि से मिलता है। इस आकार वर्ग में जोत का औसत आकार 0.40 हेक्टेयर

था, जिससे गुजारा करना अत्यन्त कठिन है। इसी प्रकार की एक हेक्टेयर से चार हेक्टेयर की अभिसीमा में आने वाली जोतें 241 थी, जोकि कुल जोतों की संख्या की 34 प्रतिशत थी। निम्नतालिका में जोतों की संख्या, उनका आकार, वितरण को दर्शाया गया है, जो इस प्रकार है:-

भारत में संकाय जोतों की संख्या और आकार वितरण

आकार वर्ग	वर्ष	संख्या (लाखों में)	प्रतिशत	क्षेत्रफल (लाख हेक्टे)	प्रतिशत
1. सीमान्त	1970-71	362.0	50.9	145.6	9.0
(एक हेक्टेयर से कम)	1976-77	445.3	54.6	175.0	10.7
2. छोटी	1970-71	134.3	18.9	192.8	11.9
(1 से 2 हेक्टेयर)	1976-77	147.0	18.0	208.6	12.8
3. अर्द्धमध्यम	1970-71	106.8	15.0	300.0	18.5
(2 से 4 हेक्टेयर)	1976-77	116.4	14.3	323.6	19.9
4. मध्यम	1970-71	79.3	11.2	482.3	29.7
(4 से 10 हेक्टेयर)	1976-77	82.1	10.1	496.0	30.4
5. बड़ी	1970-71	2.77	4.0	500.6	30.9
(10 हेक्टेयर से अधिक)	1976-77	2.44	3.0	428.2	26.2
कुल:-	1970-71	710.1	100.0	1621.3	100.0
	1976-77	815.2	100.0	1631.4	100.0

स्रोत:- एग्रीकल्चरल सिचुएसन इन इण्डिया, अक्टूबर 1981 से संकलित।

अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय ग्रामीण जनसंख्या अपेक्षाकृत अधिक निर्धन है और उनकी जीविका का साधन एकमात्र कृषि है।

कृषि उत्पादन की वृद्धि के लिए उन्हें ऋण की आवश्यकता पड़ती है। ऋण लेने के लिए प्रत्याभूति (जमानत) हेतु कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य कोई मूल्यवान चल एवं अचल सम्पत्ति नहीं है, अतएव वे केवल कृषि से ही वे ऋण (जमानत के रूप में) ले सकते हैं जबकि 51 प्रतिशत कृषक ऐसे हैं जिनके पास केवल एक हेक्टेयर या इससे भी कम भूमि पायी जाती है, जिससे उन्हें निजी या व्यक्तिगत संस्थाओं से ऋण प्राप्त करने में असुविधा होती है क्योंकि ये संस्थायें बिना किसी मूल्यवान धरोहर (जमानत) के अभाव में ऋण देने में संकोच करती है। यहाँ तक कि कुछ संस्थागत संस्थायें भी कृषि भूमि को बन्धक किये या अन्य सहायक प्रतिभूति के बगैर ऋण देने के लिए एक लम्बे अरसे तक उदासीन रहे हैं। इसी कारण कृषकों (विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों) को ऋण प्रदान करने में संस्थागत संस्थाओं का योगदान नगण्य रहा है। यद्यपि सन् 1969 में व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था, फिर भी इन बैंकों ने इस क्षेत्र को पर्याप्त मात्रा में ऋण सुलभ नहीं कराया और अपने को मुख्यत: शहरी क्षेत्रों तक सीमित रखा। इसका एक बड़ा कारण यह भी रहा कि ये बैंक अपनी स्थापना से लेकर जिस व्यवस्था या प्रक्रिया का अनुपालन करते रहे हैं, उसमें बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार अपेक्षित परिवर्तन नहीं कर सके।

सन् 1974-75 में पुन: ग्रामीण बैंकों की स्थापना द्वारा कृषि साख व्यवस्था की पूर्ति करने का कदम उठाया गया एवं जो संस्थायें कृषि वित्त व्यवस्था में योगदान कर रही थी उनके पुनर्वित्त की व्यवस्था हेतु 1982-83 में राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) की स्थापना की गई। सहकारी संस्थाओं विशेषकर भूमि विकास बैंक के द्वारा उदार ऋण देने की नीति को अपनाया गया और ऋण देने की प्रक्रिया भी सरल की गई। यह प्रसन्नता की बात है कि अभी हाल में उ0प्र0 सरकार ने उ0प्र0 राज्य सहकारी

भूमि विकास बैंक का नाम संशोधित कर "उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी ग्राम्य विकास बैंक" रख दिया है।

REFERENCES

1. "Co-operative Principles are the ideas, inherent in Co-operation, which determine what it is as a mode of action" - W.P. Walkins, A Former Director of I.C.A. Commission.

2. Co-operative Principles are "Those Practices which are essential, that is absolutely essential to the achievement of the Co-operative movements purpose".- I.C.A. Commission.

3. Co-operative Principles imply "a set of rules which govern the life and activity of Co-operative Organisations" - George Davidovic.

4. A Co-operative Principle "is a way of organising and conducting Co-operative activity which is an inherent and indispensable corollary of the co-operative movement" - D.G. Carve.

5. Webb Sidney and Beatrice: The Consumer's Co-operative Movement Year, P.7

6. George Davidovic, Reformulation of Co-operative Principles: The Co-operative Union of Canada, P.10

7. Paul Lambert, A Fresh Analysis of the Rechdale Principles: International Labour Review, July 1958, P.5

8. Report of the Committee on Co-operation, 1963, P.7

9. Report of the Co-operative Independent Commission, 1958, P.19

10. D.G. Karve, Co-operation: Principles and Substance, P.70

11. George Dividovic, Reformulation of the Co-operative Principles, OP.Cit, P.15

12. Report of the Committee of Co-operation, 1965, P.8

13. D.G. Karve, Co-operative Principles and Substance, P.10

भारत में सहकारिता आन्दोलन का विकास

भारतीय सहकारिता आन्दोलन के उद्भव एवं विकास का इतिहास अत्यन्त रोचक है। इसका प्रारम्भ उन कारणों पर प्रकाश डालता है जिनके परिणाम स्वरूप देश आर्थिक निष्क्रियता की स्थिति से गुजर रहा था। इसके विकास क्रम से उन सुधारों की श्रृंखला का ज्ञान प्राप्त होता है जिनके द्वारा राज्य तथा केन्द्रीय सरकारों ने निर्धन व्यक्तियों में सहकारिता की भावना उदय करके अपनी सहायता आप करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान किया था। यह कहना भी असंगत नहीं होगा कि सहकारिता आन्दोलन स्वयं में निर्धनता, शोषण और अन्याय के विरूद्ध सामाजिक प्रतिक्रिया का प्रतीक रहा है। निर्धनता एवं शोषण पूँजीपतियों की देन है, उसका उपचार सहकारिता से ही सम्भव है। विदेशों में औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप पूँजीवाद का प्रसार होने पर शोषित समाज की सुरक्षा के लिए सहकारिता आन्दोलन का उद्भव एवं विकास हुआ था।

उन्नीसवीं शताब्दी के भारत में भी अंग्रेजी राज्य स्थापित होने के बाद परम्परावादी अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई थी। यहाँ के लघु तथा कुटीर उद्योग इंग्लैण्ड की बड़ी-बड़ी मिलों तथा फैक्टरियों की प्रतिस्पर्धा में अधिक समय तक न चल सके। विदेशी वस्तुओं का आयात देश के प्राचीन उद्योगों के लिए घातक सिद्ध हुआ। फलस्वरूप कारीगर तथा शिल्पकार अपने जीवन-यापन के लिए कृषि कार्य करने लगे। ब्रिटिश राज्य ने भी इस देश को अपना कृषि प्रमुख उपनिवेश बनाने के उद्देश्य से ही आधुनिक उद्योगों के विकास पर ध्यान दिया। उसने देश की कृषि अर्थ-व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने तथा भूमिकर सुगमता से प्राप्त करने के जमीदारी प्रथा प्रारम्भ की। जमीदारों के इस नये सामाजिक वर्ग ने लगान वसूल करने में किसानों का मनमाना शोषण किया।

जबकि एक तरफ जमींदार वर्ग दरिद्र एवं निर्धन किसानों का शोषण करते थे उसी समय देश में आधुनिक मिलों तथा फैक्टरियों की स्थापना होने से मध्यस्थों एवं पूँजीपतियों के एक नये वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ। घरेलू उद्योगों के समाप्त होने तथा कृषि पर अत्यधिक भार होने के कारण वह अपनी कृषि आय से दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में भी असमर्थ था। ऐसी स्थिति में निर्धन तथा दरिद्र किसानों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने तथा निश्चित समय पर लगान देने के लिए प्रायः मध्यस्थ वर्ग (साहूकारों तथा महाजनों आदि) से ऋण लेना पड़ता था। धीरे-धीरे साहूकार तथा महाजन ग्रामीण जनजीवन पर हावी हो गये और कृषक वर्ग उनके द्वारा दिये जाने वाले ऋण की श्रृंखला से पूर्णतया जकड़ गया।

ग्रामीण जनसमुदाय की इस शोचनीय स्थिति के सम्बन्ध में यह कथन प्रसिद्ध है कि "भारतीय किसान ऋण में जन्म लेता है, ऋण से दबा हुआ जीवन व्यतीत करता है और ऋण के बोझ से दबा हुआ मर जाता है और यह भार उसके बाद उसके उत्तराधिकारियों को वहन करना पड़ता है।" सर डेनियल हैमिल्टन ने भी इस सम्बन्ध में कहा है कि उस समय "देश का कृषक वर्ग महाजनों के चंगुल में फँसा हुआ था" जिससे वह कृषि की बिगड़ती हुई स्थिति में सुधार लाने तथा अपनी गरीबी दूर करने में सर्वथा असमर्थ था। ऋणग्रस्त होने के कारण एक निर्धन किसान की स्थिति मजदूर या दास से अच्छी नहीं थी। उसका जीवन निराशामय था, उसकी आशायें एवं आकांक्षायें मर चुकी थी और वह भाग्यवादी बन गया था।

भारत में आर्थिक और सामाजिक जीवन की उपर्युक्त दशा उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में और भी अधिक भयंकर हो गयी, इसमें सुधार लाने के लिये भारत सरकार ने भूमि सुधार अधिनियम 1883 तथा कृषक ऋण अधिनियम 1884 में पास किया।[1] फिर भी इस दिशा में किये गये ये प्रयास

अपर्याप्त एवं निष्फल ही सिद्ध हुए। इस दिशा में उचित एवं महत्वपूर्ण कदम उठाने का श्रेय मद्रास की प्रान्तीय सरकार को है। उसने सन् 1892 में सर फ्रेडरिक निकोल्सन[2] को सहकारी साख के विकास की सम्भावनाओं पर अनुमान लगाने के लिए नियुक्त किया। उसने 1895 की अपनी रिपोर्ट में कहा कि भारत को अपने यहाँ "रैफेसन" जैसे लोग खोजने होंगे, जोकि देश में सहकारिता आन्दोलन को संगठन कर सकें और प्रभावी ढंग से उसका पोषण कर सकें, तभी दशायें सुधर सकती है। उनकी रिपोर्ट का सारांश निम्न दो शब्दों में थे - रैफेसन को खोजिये।[3] इसी प्रकार अकाल आयोग 1901 ने अपनी रिपोर्ट में कहा था, "हम यह समझते हैं कि छुट-पुट उपचारों का समय निकल चुका है। पद दलित किसानों की शोचनीय और दयनीय दशायें अधिक क्रान्तिकारी उपचार माँगती है।" सन् 1900 में भारत सरकार ने सर एडवर्ड लॉ[4] की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की। यह समिति इस नतीजे पर पहुँची कि सहकारी समितियां प्रत्येक प्रोत्साहन पाने और दीर्घकालीन परीक्षा का अवसर दिये जाने के योग्य है। इनकी सिफारिशों के आधार पर ही एक विधेयक लाया गया जोकि सन् 1904 में सहकारी साख समितियों का अधिनियम शीर्षक से पारित हुआ।

आन्दोलन का प्रथम चरण 1904-1911 :-

सन् 1904 का "सहकारी साख अधिनियम" भारत में सहकारी आन्दोलन का प्रारम्भ बिन्दु कहा जा सकता है। वास्तविकता भी यही है कि इस अधिनियम के पास होने के बाद ही सहकारी आन्दोलन की नियमित रूप से शुरूआत हुई थी। इसके प्रमुख उददेश्य, किसानों को सस्ते ब्याज पर ऋण दिलाने की व्यवस्था करना था। इस अधिनियम की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं:-

(1) किसी गाँव नगर या जाति विशेष के कोई भी 10 व्यक्ति मिलकर एक सहकारी समिति की स्थापना के लिए आवेदन पत्र दे सकते थे।

(2) सहकारी समितियों के गठन तथा कुशल संचालन के लिए प्रत्येक प्रांत में एक रजिस्ट्रार की नियुक्ति की गई।

(3) समितियों का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों को आवश्यकतानुसार ऋण देना था। इसके लिए वे अपने अंशों को बेचकर, सदस्यों से प्रवेश शुल्क लेकर तथा सदस्यों की जमा राशि आकर्षित करके पूँजी इकट्ठी कर सकती थी। पूँजी की कमी होने पर वे उसकी पूर्ति सहकारी समितियों अथवा सरकार से धन उधार लेकर भी कर सकती थी, परन्तु अन्य समितियों से ऋण लेने के लिये उन्हें रजिस्ट्रार की अनुमति लेनी पड़ती थी।

(4) कोई भी सदस्य समितियों के कुल अंशों की मात्रा का 20 प्रतिशत से अधिक भाग नहीं खरीद सकता था। प्रत्येक सदस्य को एक वोट देने का अधिकार था।

(5) साख समितियाँ अपने सदस्यों को व्यक्तिगत अथवा वास्तविक सम्पत्तियों की जमानत व बन्धक पर ही ऋण दे सकती थी।

(6) ग्रामीण समितियों के लिए अपने समस्त लाभ को तथा शहरी समितियों को एक चौथाई भाग को सुरक्षित कोष में जमा करना अनिवार्य था।

(7) ग्रामीण समितियों द्वारा लाभ से निर्मित सुरक्षित कोष की रकम जब एक निर्धारित सीमा से अधिक हो जायेगी, तब वे अपने लाभ को सदस्यों में बाँट सकेंगी।

§8§ समितियों का निरीक्षण तथा उसके हिसाब-किताब का अंकेक्षण रजिस्ट्रार अथवा उसके द्वारा नियुक्त अधिकारियों द्वारा किया जायेगा।

§9§ मान्यता प्राप्त सहकारी समितियों को आयकर, स्टाम्पकर तथा रजिस्ट्री शुल्क नहीं देना होगा।

इस अधिनियम के लागू होने के बाद ही सभी प्रान्तों में सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार की नियुक्ति की गई। सरकार ने पंजीकृत समितियों को प्रारम्भिक वर्षों में बिना ब्याज के रूपया उधार भी दिया, इस सुविधा के उपलब्ध होने पर देश में सहकारी आन्दोलन के विकास को प्रोत्साहन मिला।

प्रथमचरण में सहकारी साख समितियों का विकास 1906-07, 1911-12

वर्ष	संख्या	सदस्यों की संख्या §000 में§	कार्यशील पूँजी §लाख रू0में§
1906-07	843	90. 84	23. 72
07-08	1357	149. 16	44. 14
08-09	1963	180. 34	82. 32
09-10	3428	224. 40	124. 68
10-11	8177	407. 32	334. 74

दूसरा चरण : 1912-1918 :-

सहकारी आन्दोलन के प्रारम्भ में ही 1904 के अधिनियम के दोषों को दूर करने के लिए 1912 में एक अधिनियम पास किया, जिसकी विशेषताएं प्रमुख हैं:-

§1§ इस नये अधिनियम के अन्तर्गत ग्रामीण तथा शहरी साख समितियों के अन्तर को समाप्त कर दिया गया। इसके स्थान पर सीमित तथा असीमित दायित्व के आधार पर उनका विभाजन कर दिया गया। यह वर्गीकरण उचित एवं वैज्ञानिक था।

§2§ साख समितियों के अतिरिक्त सहकारिता सिद्धान्तों के आधार पर अपने सदस्यों के आर्थिक हितों के लिए स्थापित अन्य प्रकार की सहकारी समितियों को रजिस्ट्री की सुविधा दी गयी।

§3§ केन्द्रीय समितियों में सदस्यों का दायित्व सीमित तथा ग्रामीण समितियों में उनका दायित्व असीमित रखा गया।

§4§ प्रत्येक मान्यता प्राप्त समिति को यह अधिकार दिया गया कि वे अपने वार्षिक लाभ का 1/4 भार सुरक्षित कोष में रखने के बाद शेष लाभ का 10 प्रतिशत समाज कल्याण के कार्यों में प्रयोग कर सकती है।

§5§ सहकारी समितियों को अपने सदस्यों से ऋण की वसूली के लिये अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा प्राथमिकता दी गई है।

सहकारी आन्दोलन की प्रगति

वर्ष	संख्या	सदस्यता§लाखों में§	कार्यशील पूँजी§लाख रू0§
1911-12	8177	4.7	335.7
1917-18	25192	10.9	760.1

सहकारी आन्दोलन के विकास के दूसरे चरण में ही सहकारी आन्दोलन के मूल्यांकन तथा इसके विकास के सम्बन्ध में आवश्यक सुझाव

देने के लिए 1914 में सर एडवर्ड मैक्लेगन[5] की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति की गयी। इस समिति ने सन् 1915 में सुझाव दिया कि किसी समिति की स्थापना करते समय पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए। समिति का विचार था कि अधिकारियों को किसी समिति की रजिस्ट्री उसी समय करनी चाहिए जबकि उन्हें यह विश्वास हो जाए कि समिति की स्थापना करने के इच्छुक व्यक्ति सहकारिता के सिद्धान्त तथा अपने कर्तव्यों से पूरी तरह से परिचित हैं। समिति ने इस आन्दोलन की कमियों की ओर भी सरकार का ध्यान आकर्षित किया।

तीसरा चरण 1919-1929 :-

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात सन् 1919 में माँटेग्यू चेम्सफोर्ड[6] के सुधारों को लागू करने वाले अधिनियम के फलस्वरूप सहकारिता का विषय प्रान्तीय सरकारों के अधीन आ गया। सहकारिता आन्दोलन के इतिहास में यह दूसरा महत्वपूर्ण मोड़ था, जहाँ से इस आन्दोलन ने नियोजित विकास के तीसरे चरण में प्रवेश किया। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात आर्थिक सम्पन्नता तथा बढ़ते हुए मूल्यों के कारण इस आन्दोलन ने पर्याप्त प्रगति की। सन् 1925 में सहकारी समिति अधिनियम बनाया। साख समितियों के अतिरिक्त उत्तम कृषि समितियाँ तथा बन्धक बैंकों की स्थापना की गई।

आन्दोलन की प्रगति

वर्ष	समितियों की संख्या	सदस्यता (लाख में)	कार्यशील पूँजी (करोड़ रु०)
1918-19	30948	11.3	10.26
1928-29	97752	40.2	45.02

तीसरे चरण में सहकारिता आन्दोलन के प्रसार व प्रगति का मूल्यांकन कई समितियों तथा उद्योगों द्वारा किया गया। इन समितियों तथा आयोगों में कृषि शाही आयोग 1928,[7] केन्द्रीय और प्रान्तीय बैंकिंग समितियाँ 1931, मध्य प्रदेश की किंग समिति, मद्रास की टाउन्सेण्ड समिति 1929, तथा वर्मा की कैलवर्ड समिति के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन समितियों ने सहकारिता के व्यवहारिक प्रयोग के सम्बन्ध में उचित एवं महत्वपूर्ण सुझाव देकर सहकारी आन्दोलन के प्रसार में सहायता की। कृषि शाही आयोग 1928 ने सहकारी समितियों के कार्यों की प्रशंसा करते हुए कहा था कि इन समितियों पर ही ग्रामीण भारत का सुन्दर भविष्य निर्भर है।[8] सहकारी आन्दोलन को अधिक लोकप्रिय बनाने तथा सदस्यों में उत्तरदायित्व की भावना जाग्रत करने के सम्बन्ध में केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति का यह मत था कि वर्तमान प्रशासनिक नियन्त्रण में कुछ ढिलाई की नीति अपनाई जाए। यहाँ तक कि उन विदेशी विशेषज्ञों ने भी, जिन्होंने बैंकिंग जाँच समिति की अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, इस आन्दोलन को सभी श्रोतों से सभी सम्भव सहायता दी जानी चाहिए क्योंकि इस देश के किसानों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए सहकारी प्रयत्न से बढ़कर कोई अन्य उपाय नहीं है।[9]

चौथा चरण 1930-1939 :-

इस अवधि में तीसा की महान मन्दी का प्रभाव रहा। इस मन्दी के कारण वस्तुओं, विशेषकर कृषि वस्तुओं के मूल्य में भारी गिरावट हुई, जिससे कृषकों की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गई। इसका परिणाम यह हुआ कि वे समितियों से प्राप्त ऋण को न चुका सके। समितियों को अपने ऋण वसूल करने में कठिनाई होने लगी।

यह आम धारणा है कि 1929 की विश्वव्यापी मन्दी सहकारी

आन्दोलन की दुर्बलताओं के लिए जिम्मेदार थी। किन्तु जे०पी० नियोगी के अनुसार यह सहकारिता आन्दोलन के इतिहास का सही अध्ययन नहीं था। इनके मतानुसार "पतन के बीज आन्दोलन के प्रारम्भिक जीवनकाल में ही दूरदर्शिता, पूर्ण वित्त व्यवस्था एवं कुशल प्रशासन के नियमों की उपेक्षा द्वारा बो दिये गये थे। यदि बड़े पैमाने पर अति वित्त प्रबन्धन न अपनाया गया होता और ग्रामीण समितियों के कार्यकलापों पर नियंत्रण रखा गया होता तो निश्चय ही 1929 की मन्दी सहकारी आन्दोलन को अपंग न बनाने पाती।[10]

मन्दी ने भारत में सहकारी समितियों के संगठन और ढाँचे के उन दोषों को भी प्रकाश में ला दिया जोकि उत्तरोत्तर बढ़ती हुई कीमतों और सम्पन्नता की अवधि में आंशिक रूप से देखे गये थे। कई प्रान्तों में कमेटियाँ वास्तविक स्थिति का पता लगाने और सुधार व उन्नति के लिए सुझाव देने हेतु नियुक्त की गई जैसे मद्रास मेंविजयाराघवाचार्य समिति 1940 , त्रावनकोर एवं मैसूर में पुर्नवास जाँच समितियाँ 1935, के०ए० अययर समिति मैसूर 1935, मेहता एवं भंसाली समिति बम्बई 1937, मुदालियर समिति उड़ीसा में 1938, वेस समिति पंजाब में 1939, पन्तुल सहकारी जाँच समिति 1939[11], इस काल में कृषि समितियों की संख्या 1930-31 में 93512 से घटकर 1933-34 में 92226 रह गई। इस अवधि की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि समिति के ऋण सम्बन्धी कार्यकलापों की कड़ी जाँच होने लगी। अतिदेयों की वसूली के लिए कड़े प्रयत्न किये गये, क्योंकि इनके कारण ही अनेक प्रान्तों में आन्दोलन लगभग समाप्त हो गया था। इन सब प्रयत्नों के अच्छे परिणाम हुए। कृषि साख समितियों के बकाया ऋणों की राशि 1932-33 में 13.00 करोड़ रूपये से घटकर 1936-37 में 11.36 करोड़ रूपये रह गई, जबकि उसी अवधि में बकाया ऋणों का कुल अवशेष ऋणों में प्रतिशत 47 से घटकर 43 रह गया।[12]

1935-36 से पुनरूद्धार के चिन्ह प्रकट होने लगे। कुछ प्रान्तीय सरकारों ने शीर्ष सहकारी बैंकों को जो सामयिक सहायता दी, उसके बल पर इन बैंकों ने पुनर्वसित समितियों के सदस्यों को नये ऋण दिये तथा केन्द्रीय सहकारी बैंकों को प्रबन्ध व्यय सम्बन्धी सहायता दी।

इसी चरण में एक अन्य निर्णायक घटना सन् 1935 में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना हो गई। कृषि साख समस्याओं का अध्ययन करने एवं कृषि साख की समुचित व्यवस्था के लिये इस बैंक ने "कृषि साख विभाग" की स्थापना की।

पाँचवा चरण 1939-47 :-

द्वितीय महायुद्ध ने इस आन्दोलन पर अच्छा प्रभाव डाला। युद्धकाल में कृषि पदार्थों के मूल्य में वृद्धि होने से किसान वर्ग अधिक सम्पन्न हो गया। उनकी ऋण शोधन क्षमता बढ़ गई और उन्होंने सहकारी समितियों के पुराने ऋणों को चुकाना शुरू कर दिया। समितियों के जमा के रूप में भी पर्याप्त धन मिलने लगा। समस्त भारत के आंकड़ों के अनुसार समितियों के अवधिवार ऋणों की मात्रा जो 1938-39 में 14.05 करोड़ रूपये के बराबर थी, कम होकर 1945-46 में 8.52 करोड़ रूपये मात्र रह गई।

सहकारी आन्दोलन की प्रगति (1939-1946)

वर्ष	समितियों की संख्या (000)	सदस्यता (लाखों में)	कार्यशील पूँजी (करोड़ में)
1	2	3	4
1938-39	122	53.7	106.47
39-40	137	60.8	107.10

1	2	3	4
1940-41	143	64.0	109.32
41-42	145	67.4	112.42
42-43	146	69.1	121.14
43-44	156	76.9	132.21
44-45	160	83.6	146.63
45-46	172	91.6	164.00

युद्धकाल में सहकारी साख समितियों की संख्या में वृद्धि होने के साथ-साथ गैर साख समितियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। इसके अतिरिक्त प्राथमिक समितियों का कार्यक्षेत्र अधिक व्यापक हो गया। वे किसानों के जीवन के सभी पहलुओं को स्पर्श करने लगीं। इन विभिन्न पहलुओं को सहकारिता के अन्तर्गत लाने के लिये ही विभिन्न प्रान्तों में बहुउद्देशीय सहकारी समितियाँ स्थापित की जाने लगी। सन् 1944 में भारत सरकार द्वारा प्रो० डी०आर० गाडगिल की अध्यक्षता में एक उप समिति किसानों की ऋण ग्रस्तता को घटाने और कृषि एवं पशुपालन के लिए अल्प एवं दीर्घकालीन ऋण की प्रभावी व्यवस्था करने के सम्बन्ध में आवश्यक सुझाव देने हेतु नियुक्त की गयी। सहकारी आन्दोलन की भूमिका का विवेचन करते हुए समिति ने कहा, "हम इस दृष्टिकोण से सहमत है कि विशेष रूप में कृषि साख का और सामान्य रूप में ग्रामीण अर्थव्यवस्था की समस्याओं का सर्वोत्तम एवं स्थायी समाधान सहकारिता का विकास है।"[13]

युद्ध के अन्तिम वर्षों में नियोजन की एक नयी भावना उमड़ने लगी थी। भारत के भावी विकास के लिए अनेक योजनायें प्रस्तुत की गईं और इन

सबमें सहकारी आन्दोलन को एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गई। सहकारिता के विकास के लिये एक योजना बनाने हेतु भारत सरकार ने आर0जी0 सरैया की अध्यक्षता में सहकारी नियोजन समिति 1945 नियुक्ति की। समिति ने बताया कि सहकारी आन्दोलन के धीमे विकास के लिए प्रमुख कारण राज्य की निर्बाधवादी नीति, लोगों की निरक्षरता, आन्दोलन द्वारा केवल एक पहलू पर ही जोर दिया जाना, प्राथमिक इकाइयों का लघु आकार, अवैतनिक सेवाओं पर अनुचित निर्भरता से उत्पन्न प्रबन्धकीय शिथिलता आदि हैं। समिति ने रिपोर्ट में बहुउद्देशीय समितियों की आवश्यकता पर जोर दिया।

स्वतन्त्रता के पश्चात सहकारी आन्दोलन :-

सन् 1947 में भारत को स्वतन्त्रता मिली परन्तु इसके साथ ही देश का विभाजन भी हो गया। देश का विभाजन होने से स्वतन्त्र भारत में अनेक सामाजिक एवं आर्थिक समस्यायें उत्पन्न हो गई। इन समस्याओं का प्रभाव सहकारी आन्दोलन पर पड़ा। सहकारी समितियों की संख्या 9-4 प्रतिशत से घट गई और बंगाल तथा असम में तो इस आन्दोलन की स्थिति और भी खराब हो गई।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद ही लाखों की संख्या में विस्थापितों के आने पर सरकार को उन्हें बसाने, आर्थिक सहायता देने तथा अन्य कई प्रकार की सुविधायें प्रदान करने की समस्याओं का सामना करना पड़ा। इन समस्याओं को दूर करने में सहकारी आन्दोलन ने सरकार का हाथ बंटाया। सहकारी समिति बनाकर शरणार्थियों के लिए भूमि, मकान, ऋण आदि की व्यवस्था की। औद्योगिक समितियाँ, कृषि समितियाँ तथा गृह निर्माण सहकारी समितियाँ बनाने के लिए उनको विशेष प्रोत्साहन दिया गया। द्वितीय विश्व

युद्ध के बाद लौटे हुए अवकाश प्राप्त सैनिकों को बसाने तथा कार्य दिलाने में भी सहकारी समितियों ने प्रशंसनीय कार्य किया। कई प्रकार की समितियों की स्थापना होने से सहकारी समितियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई और सहकारिता आन्दोलन का क्षेत्र बढ़ने लगा। आर्थिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सहकारी समितियाँ स्थापित की जाने लगी। जैसे- उत्पादन के क्षेत्र में बुनकर सहकारी समितियाँ, औद्योगिक समितियाँ, कृषि उपकरणों, खाद, रासायनिक उर्वरकों के वितरण के लिये बहुउद्देश्यीय सहकारी समितियाँ, दूध के वितरण के लिये दुग्ध वितरण संघ, मोटर ट्रान्सपोर्ट समितियाँ, गृह निर्माण समितियाँ, फल उत्पादक सहकारी समितियाँ, गन्ना उत्पादक सहकारी समितियाँ, विपणन सहकारी समितियाँ आदि।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सहकारी नियोजन समिति का यह सुझाव "कि प्राथमिक सहकारी समितियों का बहुउद्देश्यीय सहकारी समितियों के रूप में पुनर्गठन किया जाए", स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही कार्यान्वित किया जा सका। बाद में कृषि क्षेत्र के विकास तथा कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए सहकारी खेती अपनाने पर जोर दिया गया।

स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रीय सरकार ने जब अपने संविधान का निर्माण कर लिया तथा देश ने कल्याणकारी राज्य स्थापित करने का आदेश स्वीकार कर लिया, तब देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिये आर्थिक नियोजन आवश्यक हो गया। लोकतन्त्र पर आधारित आर्थिक नियोजन की सफलता सहकारी आन्दोलन के विकास द्वारा ही सम्भव हो सकती थी। समाजवादी समाज के निर्माण में सहकारी संस्थायें ही सहायक हो सकती थी। अतः सहकारिता आन्दोलन का क्रमबद्धता के साथ विकास करना हमारे जनतन्त्रात्मक नियोजन का एक अभिन्न अंग बन गया। सहकारी नियोजन समिति ने कहा था

"सहकारी समिति को जनतन्त्रात्मक आर्थिक नियोजन के लिए सबसे उपयुक्त माध्यम के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। यह एक ऐसी स्थानीय इकाई है जोकि योजना के पक्ष में जनमत को शिक्षित करने और योजना को कार्यान्वित करने की दोहरी जिम्मेदारी उठा सकती है।"[14] अतः सन् 1951 में नियोजित अर्थव्यवस्था का काल प्रथम पंचवर्षीय योजना के कार्यान्वयन के साथ आरम्भ हुआ, तब सहकारी आन्दोलन ने एक नये युग में प्रवेश किया। नियोजन का काल प्रारम्भ होने से पूर्व 1950 के जून के अन्त में सहकारी समितियों की संख्या 173090 थी तथा सदस्यता 255 लाख 61 हजार एवं कार्यशील पूँजी 233.10 करोड़ रूपये थी।

प्रथम योजना काल में सहकारिता :-

प्रथम पंचवर्षीय योजना 1950-51 में चालू की गयी। इस योजना में सहकारिता आन्दोलन को जनतन्त्र के अन्तर्गत नियोजित कार्यकलाप का एक अत्याज्य या अनिवार्य उपकरण बनाया। पहली योजना में कहा गया था कि "पारस्परिक सदस्यता का सिद्धान्त जोकि सहकारी संगठन का आधार है, और मितव्ययता एवं आत्मनिर्भरता का व्यवहार जोकि इसका पोषण करता है, आत्मनिर्भरता की वह उत्कट भावना उत्पन्न कर देता है, जो जनतांत्रिक ढंग से जीवन-यापन के लिए अतिमहत्वपूर्ण है। अपने अनुभव और ज्ञान को एक स्थान में एकत्र करके तथा एक दूसरे की सहायता करके सहकारी समितियों के सदस्य अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को तो सुलझा ही लेते हैं, साथ ही वे श्रेष्ठ नागरिक भी बन जाते हैं।"[15]

सहकारिता के संदर्भ में पहली योजना की विशेषतायें :-

§1§ लोकतान्त्रिक नियोजन के उपकरण के रूप में पहल शक्ति, पारस्परिक

लाभ और सामाजिक उद्देश्य इन तीनों को संयुक्त करते हुए, सहकारिता को पहली योजना के कार्यान्वयन के लिये कार्यक्रम का एक आवश्यक अंग बनाया गया था।

§2§ गाँवों में सहकारी संस्थाओं और पंचायतों के बीच घनिष्टतम् सम्बन्ध बनाये रखने पर जोर दिया गया।

§3§ प्रत्येक गाँव में सहकारी समिति बनाने की आवश्यकता पर बल दिया गया, क्योंकि वह सदस्यों की बहुमुखी आवश्यकताओं को पूरा कर सकेगी।

§4§ 1955-56 तक भारत के 50 प्रतिशत गाँवों और जनसंख्या के 30 प्रतिशत भाग को सहकारी आन्दोलन की परिधि में लाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

§5§ अनुमान है कि कृषि उत्पादन के लिये सहकारिता आन्दोलन द्वारा प्रदत्त साख 130 करोड़ रूपये वार्षिक स्तर तक पहुँच जायेगी। 100 करोड़ रूपये अल्पकालीन, 25 करोड़ रूपये मध्यकालीन और 5 करोड़ रूपये दीर्घकालीन ऋण।

§6§ आन्दोलन के विकास हेतु पर्याप्त प्रशिक्षित स्टाफ रखना आवश्यक बताया गया।

§7§ कृषकों को बेहतर कीमत दिलाने के उद्देश्य से सहकारी विपणन के विकास पर बल दिया गया।

आन्दोलन की प्रगति

पहली योजना में सहकारी आन्दोलन की प्रगति

विवरण	1950-51	1955-56
1. प्राथमिक कृषि साख समितियों की सं0	115462	159939
2. सदस्यता (लाखों में)	51.54	77.91
3. प्रति समिति औसत सदस्यता	45	49
4. सेवित ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत	10.3	15.6
5. दिये गये ऋण (करोड़ रू0 में)	22.90	50.16
6. प्रति सदस्य औसत ऋण (रूपये)	45	64
7. प्रति समिति औसत अंश पूँजी (रूपये)	727	1051
8. औसत कार्यशील पूँजी (रूपये)	3547	4946
9. प्रति समिति औसत जमायें (रूपये)	391	441
10. शेष ऋणों से अतिदेयों का प्रतिशत	21.0	25.0

उपर्युक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि 1956 के जून के अन्त तक ग्रामीण समाज का लगभग 15.6 प्रतिशत भाग सहकारिता के अन्तर्गत आ गया था। 1951 की अपेक्षा 1956 में दिये गये ऋणों की मात्रा दुगुनी हो गयी थी तथा समितियों एवं सदस्यों की संख्या में क्रमशः 32 तथा 51 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। परिणात्मक रूप से सन्तोषप्रद होते हुए भी यह प्रगति गुणात्मक रूप से असन्तोषप्रद थी।

अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति :-

स्वतन्त्रता के बाद भारत में सहकारिता आन्दोलन के इतिहास की

सबसे महत्वपूर्ण घटना अखिल भारतीय सर्वेक्षण समिति की रिपोर्ट का प्रकाशन होना था। सर्वे से पता चला कि पचास वर्ष से अधिक समय से अस्तित्व में रहते हुए भी सहकारी साख समितियाँ कृषकों की साख सम्बन्धी कुल आवश्यकता के 3.1 प्रतिशत भाग की ही पूर्ति कर रही थी। पेशेवर साहूकार, कृषक साहूकार और व्यापारीगण ग्रामीण साख के क्षेत्र में प्रभुता स्थापित किये हुए थे तथा कुल साख आवश्यकता के 70 प्रतिशत भाग की पूर्ति कर रहे थे। सर्वे से यह भी पता चला कि सहकारी साख का एक काफी बड़ा भाग बड़े कृषकों को प्राप्त हुआ जबकि एक अल्प भाग ही अपेक्षाकृत छोटे कृषकों तक पहुँचा।

अधिकतर समितियाँ भूमि की जमानत पर ऋण देती थी और जो लोग ऐसी जमानत नहीं दे सकते थे, उनको वे साख दिये जाने योग्य नहीं मानती थी। सर्वेक्षण समिति ने यह पाया कि साख श्रृंखला में प्राथमिक साख समितियाँ सबसे दुर्बल पड़ी थी। सहकारी साख के विषय में टीका करते हुए रिपोर्ट में कहा गया था "वह न तो अच्छी सहकारिता की शर्तों को पूरा करती है और न स्वस्थ साख की आवश्यकता को।"[16] सर्वे समिति ने आन्दोलन की उपलब्धियों पर स्पष्ट कहा है कि "सहकारिता असफल हुई है, किन्तु उसने यह भी बताया कि सहकारिता को अवश्य ही सफल होना चाहिए।" सर्वे समिति भारत में कृषि साख के पुनर्गठन को कृषकों के किसी न किसी प्रकार के सहकारी संगठन पर आधारित करना चाहती थी। सहकारिता आन्दोलन को नव जीवन देने और उसे अन्दर और बाहर से मजबूत बनाने के लिए उसने ग्रामीण साख की एकीकृत स्कीम प्रस्तुत की थी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सहकारिता :-

द्वितीय योजना ने अपने सामने समाजवादी समाज की स्थापना का व्यापक लक्ष्य रखा था। इस नये विचार के अन्तर्गत सामाजिक आर्थिक संबंधों

के ढाँचे का विकास इस तरह नियोजित किया जाना था कि न केवल राष्ट्रीय आय एवं रोजगार में अपेक्षित वृद्धि हो वरन् आय और सम्पत्ति के वितरण में अपेक्षाकृत अधिक समानता आये। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सहकारिता को एक महत्वपूर्ण एजेन्सी माना गया और इस प्रकार एक सहकारी क्षेत्र का निर्माण करना राष्ट्रीय नीति का एक प्रमुख उद्देश्य बन गया।

राष्ट्रीय नियोजन में सहकारिता के विकास को दिया गया महत्व इस तथ्य से स्पष्ट है कि इस आशय के लिए द्वितीय योजना में 57 करोड़ रूपये के वित्तीय परिव्यय की व्यवस्था थी जबकि यह राशि प्रथम योजना में केवल 7.1 करोड़ रूपया थी।[17] योजना के अन्त तक ग्रामीण साख के वितरण के लक्ष्य निम्न थे - अल्पकालीन 150 करोड़ रूपये, मध्यकालीन 50 करोड़ रूपये और दीर्घकालीन 25 करोड़ रूपये। द्वितीय योजना के लिए सहकारिता के कार्यक्रम मुख्यतः ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति की सिफारिशों के आधार पर बनाये गये थे।

सहकारिता के विकास से सम्बन्धित कार्यक्रम :-

कृषि साख एवं विपणन के विस्तार के लिये कार्यक्रम विभिन्न राज्यों द्वारा बनाये गये। द्वितीय योजना काल में निम्नांकित योजनाओं पर विशेष बल दिया गया:

1. बड़े आकार की साख समितियों का गठन।
2. प्रत्येक जिले में एक मजबूत केन्द्रीय बैंक की स्थापना के उद्देश्य से सहकारी बैंकिंग ढाँचे का विवेकीकरण ।
3. प्राथमिक विपणन समितियों का गठन अथवा पुनर्गठन ।
4. जिन राज्यों में केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक अभी तक नहीं थे, वहाँ इनकी स्थापना ।

5. सहकारी विपणन समितियों के पूरक के रूप में या पृथक से गठित की गई समितियों के द्वारा विधियन क्रियाओं को बढ़ावा देना ।
6. पर्यवेक्षण, निरीक्षण, अंकेक्षण एवं अन्य वैधानिक कर्तव्यों से सम्बन्धित व्यवस्थाओं को सुधारने हेतु विभागीय एवं संस्थागत स्टाफ को मजबूत करना ।
7. राज्यीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के मण्डी केन्द्रों में भण्डारण सुविधायें बढ़ाने के लिए केन्द्रीय एवं राज्य गोदामों की स्थापना ।
8. राज्य स्तर पर एक राहत एवं प्रत्याभूति कोष की स्थापना ।
9. सहकारिता विभागों और संस्थाओं के कर्मचारी वर्ग के प्रशिक्षण एवं समितियों के सदस्यों व पदाधिकारियों के शिक्षण के लिये व्यवस्था करना ।

आन्दोलन की प्रगति

विवरण	1955-56	1960-61
1. समितियों की संख्या (लाखों में)	2.40	3.32
2. प्राथमिक समितियों की सदस्यता (लाखों में)	176	342
3. अंश पूँजी (करोड़ रू0)	77	321
4. कार्यशील पूँजी (करोड़ रू0)	469	1312
5. प्राथमिक समितियों द्वारा दिये गये ऋण (करोड़)	50	203
6. परिधि में आये हुए गाँव (प्रतिशत)	-	75
7. प्राथमिक साख समितियों द्वारा सेवित ग्रामीण जनता (प्रतिशत)	12	24
8. प्रति सदस्य दिया हुआ ऋण (रू0)	64	119
9. प्रति समिति औसत सदस्यता	49	80
10. प्रति समिति औसत प्रदत्त पूँजी (रू0)	1051	2722
11. प्रति समिति औसत जमाएं (रू0)	441	688
12. प्रति समिति औसत कार्यशील पूँजी (रू0)	4946	12913

उपर्युक्त दिशाओं में किये गये आवश्यक प्रयत्नों के फलस्वरूप द्वितीय योजना काल में सहकारी समितियों की संख्या 1955-56 में 2.40 लाख से बढ़कर 1960-61 में 3.32 लाख हो गई, प्राथमिक सहकारी समितियों की संख्या में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। 176 लाख से बढ़कर 342 लाख हो गई।

राष्ट्रीय विकास परिषद - नीति प्रस्ताव 1958 :-

सन् 1958 में राष्ट्रीय विकास परिषद ने कृषि उत्पादन को बढ़ाने और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का निर्माण करने में सहकारी आन्दोलन की भूमिका पर विचार किया। परिषद का विचार था कि जन आन्दोलन के रूप में सहकारिता आन्दोलन के विकास के लिए यह आवश्यक था कि सहकारिताओं का, ग्राम समाज को एक प्राथमिक इकाई के रूप में आधार बनाते हुए, संगठन करना चाहिए और ग्राम स्तर पर आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए जिम्मेदारी एवं पहल पूर्णरूप से ग्राम सहकारिताओं और ग्राम पंचायतों पर डाल देनी चाहिए। परिषद ने कहा था कि सहकारिता का तीव्रगति से विकास होना चाहिए।[18] राष्ट्रीय विकास परिषद की मुख्य सिफारिशें इस प्रकार थी:-

(1) लक्ष्य यह होना चाहिए कि ग्राम सहकारिताओं में प्रत्येक परिवार का प्रतिनिधित्व हो।

(2) सहकारिताओं को गाँव में बीज और आर्गेनिक एवं हरी खादें उत्पन्न करने एवं इन्हें साख पर कृषकों को देने की व्यवस्था करना चाहिए।

(3) सहकारिताओं को उर्वरकों के वितरण की व्यवस्था करनी चाहिए।

(4) सामान्य नियम के रूप में सहकारी समिति और पंचायत को समान क्षेत्रों में कार्य करना चाहिए।

§5§ ग्राम समितियों को अपने संघों के द्वारा महासंघ बनाने चाहिए।

§6§ ग्राम समितियों को विपणन से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित कर देना चाहिए।

§7§ सहकारी विपणन एवं विधियन समितियों के विकास को सर्वाधिक महत्व देना चाहिए।

§8§ विद्यमान सहकारिता कानून के प्रतिबन्धात्मक प्रावधानों को समाप्त कर देना चाहिए।

§9§ विद्यमान कृषि समितियों को पुनः स्फूर्तिवान बनाने के लिए विशेष प्रयत्न करना चाहिए, ताकि उनकी सदस्यता 10 मिलियन से बढ़कर 20 मिलियन हो जाये।

§10§ राष्ट्रीय बचत पत्र आन्दोलन में सहकारी समितियों को ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक एजेन्सियों के रूप में कार्य करना चाहिए।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में सहकारिता :-

तृतीय पंचवर्षीय योजना में भी आर्थिक विकास के कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने में सहकारिता आन्दोलन को एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गयी। इसमें सहकारिता के विकास के लिये 80 करोड़ रूपये की व्यवस्था की गयी, जबकि द्वितीय योजना में यह राशि 57 करोड़ रूपये थी।

इस योजना के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार थेः-

1. कृषि साख का विकास ।
2. सहकारी सहयोग ।
3. प्रबन्ध व्यय के लिये वित्तीय सहयोग ।

4. सहकारी साख की व्यवस्था ।
5. विपणन व्यवस्था का विकास ।
6. उपभोक्ता सहकारी भण्डारों की व्यवस्था ।
7. लघु उद्योगों का विकास ।
8. सहकारी संघों का विकास एवं अन्य क्षेत्रों में विकास ।

योजनावधि में समितियों और अध्ययन समूहों द्वारा मूल्यांकन :-

तृतीय पंचवर्षीय योजनाकाल में कई समितियों तथा अध्ययन समूहों द्वारा योजना के अन्तर्गत निर्धारित कार्यक्रमों को चालू करने के सम्बन्ध में विचार एवं सुझाव प्रस्तुत किये गये। औद्योगिक सहकारी संस्थाओं के विकास पर विचार करने वाले अध्ययन समूह ने 1963 में अपनी रिपोर्ट में यह सुझाव दिया कि घरेलू उद्योगों में लगे कुल श्रमिकों की संख्या का कम से कम 30 प्रतिशत भाग तृतीय योजना के अन्त तक सहकारिता के अन्तर्गत अवश्य आ जाना चाहिए। इसी प्रकार के और भी अनेक सुझाव इस समिति ने प्रस्तुत किये थे।

सहकारी क्षेत्र के समुचित प्रशासन के सम्बन्ध में 1963 में सरकार द्वारा श्री वी०एल० मेहता की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गई। इस समिति ने विभिन्न राज्यों में सहकारी विभाग के संगठन एवं ढाँचे को मजबूत बनाने के लिए सुझाव दिये। इसी प्रकार भारत सरकार के परिवहन मंत्रालय के अन्तर्गत श्री एस०एन० विलग्रामी की अध्यक्षता में परिवहन सहकारिता के लिए एक समिति नियुक्त की थी। 1964 में भारत सरकार ने प्रोफेसर एम० एल० दन्तवाला की अध्यक्षता में सहकारी विपणन के लिए एक समिति विभिन्न स्तरों पर कृषि उपज के विपणन एवं उत्पादन के लिए आवश्यक वस्तुओं के वितरण और उपभोक्ता वस्तुओं की आपूर्ति के लिए विद्यमान

सहकारी व्यवस्थाओं के स्वरूप पर विचार करने हेतु नियुक्त की। 1964 में ही श्री आर0एन0 मिर्धा की अध्यक्षता में एक अन्य समिति का गठन उक्त विषयों पर विचार करने के लिये किया गया।

तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत प्रगति

विवरण	1960-61	1965-66
1. समितियों की संख्या (लाखों में)	3.32	5.03
2. प्राथमिक समितियों की सदस्यता (लाखों में)	34.2	26.1
3. समितियों का संगठन	-	1.91
4. सहकारी साख (लाख रू0 में)	-	529
5. उपभोक्ता सहकारी समितियों की सं0	7058	13077
6. उपभोक्ता सहकारी समितियों की सदस्यता (लाखों में)	13.41	29.3
7. सहकारी प्रोसेसिंग समितियाँ	1004	1500

वार्षिक योजनाओं में सहकारिता :-

चौथी योजना तत्काल ही शुरू नहीं की जा सकी। अनिश्चित दशाओं के कारण वार्षिक योजनाएं बनाई और लागू की गई। वार्षिक योजनाओं की अवधि 1966-69 में सहकारिता पर 64 करोड़ रूपये व्यय हुए जबकि तीसरी योजनावधि में 76 करोड़ रूपये व्यय किये गये थे।

चौथी योजना में सहकारिता :-

चौथी योजना में सहकारी आन्दोलन का लक्ष्य स्थिरता के साथ

रखा गया। कृषि सहकारिताओं और उपभोक्ता समितियों को सहकारिता के विकास की मूलनीति में एक केन्द्रीय स्थान प्रदान किया गया। चौथी योजना का उद्देश्य कृषक के लिये, जो सेवायें आवश्यक हैं, उनका अधिक से अधिक सीमा तक संस्थायीकरण करना था। सहकारी साख प्रणाली की एक बुनियादी दुर्बलता अधिकांश प्राथमिक कृषि साख समितियों का सक्षम न होना सही है। अतः चौथी योजना अवधि के सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यों में प्राथमिक साख संरचना का इस प्रकार से पुनर्गठन करने का कार्य सम्मिलित था जिससे कि वे सक्षम बन जायें। योजना के अन्तिम वर्ष के लिये अल्प एवं मध्यकालीन साख के वितरण का लक्ष्य 750 करोड़ रूपया और दीर्घकालीन साख का लक्ष्य 700 करोड़ रूपये निर्धारित हुआ। इस योजना में इस बात पर बल दिया गया कि साख समितियों और भूमि बन्धक बैंकों की ऋण सम्बन्धी नीतियों एवं क्रियाविधियों को लघु कृषकों के पक्ष में उदार बनाया जाय। इसके अतिरिक्त सहकारी विपणन, सहकारी प्रोसेसिंग, उपभोक्ता सहकारिता पर भी बल दिया गया।

<u>भौतिक कार्यक्रम प्राप्त हुए एवं प्रत्याशित स्तर</u>

कार्यक्रम	इकाई	प्राप्त स्तर			प्रत्याशित स्तर
		1967-6	1965-66	1968-69	1973-74
1	2	3	4	5	6
1. प्राथमिक कृषि साख समितियों की सदस्यता	मिलियन	17	26.1	30	42
2. आन्दोलन की परिधि में आये कृषि परिवार	प्रतिशत	30	42	45	60

1	2	3	4	5	6
3. दिये हुए अल्प-कालीन एवं मध्य-कालीन ऋण	करोड़ रू०	202	342	450	750
4. दिये हुए दीर्घ-कालीन ऋण	करोड़ रू०	11.6	58	100	700
5. सहकारिताओं द्वारा कृषि उपज का विपणन	करोड़ रू०	175	360	475	900
6. सहकारी कृषि विधायन समितियाँ	संख्या	1004	1500	1600	2000
7. सहकारिताओं द्वारा उर्वरकों की बिक्री	करोड़ रू०	28.6	80.1	260	650
8. भण्डारण	मिलि० मी०टन	2.3	2.4	2.6	4.6
9. ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोक्ता वस्तुओं का वितरण	करोड़ रू०	16.7	198.1	275	500
10. शहरी उपभोक्ता समितियों की फुटकर बिक्री	करोड़ रू०	40	200	275	400

अखिल भारतीय ग्रामीण साख समीक्षा समिति 1969 की नियुक्ति रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा सामान्यतया चौथी योजना और विशेषतया सघन कृषि कार्यक्रम के संदर्भ में कृषि साख की आपूर्ति का पुर्निरीक्षण करने हेतु

की गयी थी। समिति के अध्यक्ष योजना आयोग के एक सदस्य श्री वेंकटापैया थे। समिति की प्रमुख सिफारिशें निम्न थी- रिजर्व बैंक में ग्रामीण साख का पुनर्गठन, देशभर में चुने हुए जिलों में से प्रत्येक में एक लघु कृषक विकास अभिकरण की स्थापना, एक विद्युतीकरण निगम का गठन जोकि अन्य बातों के साथ-साथ कृषि विकास की सम्भावना वाले अविकसित क्षेत्रों को लाभ पहुँचायेंगा, कृषि पुनर्वित्त निगम के लिये अधिक सक्रिय और अधिक बड़ी भूमिका निर्धारित करना, सहकारिता एवं व्यापारिक बैंकों द्वारा कृषि के लिये साख का सामयिक एवं पर्याप्त प्रवाह सुनिश्चित करने के लिये विभिन्न कदम उठाना आदि। इसके अतिरिक्त 30 जून एवं 01 जुलाई, 1969 को बंगलोर में राज्य सहकारिता मंत्रियों की एक बैठक में सहकारिता की आवश्यकता पर बल दिया गया। नवम्बर 1971 में नई दिल्ली में दूसरी राज्य सहकारिता मंत्रियों की बैठक में यह कहा गया कि ऋण नीति में परिवर्तन करके सहकारी साख उत्पादन करने वाले छोटे किसानों को अधिक से अधिक प्रदान किया जावे।

पाँचवीं योजना में सहकारिता :-

पाँचवीं योजना में एक सशक्त और स्फूर्तिवान सहकारी सेक्टर का निर्माण करना राष्ट्रीय नीति का एक प्रमुख उद्देश्य था। योजना की रूपरेखा में कहा गया था कि "देश में विद्यमान दशाओं के संदर्भ में वांछित सामाजिक, आर्थिक चुनौतियाँ प्रस्तुत करने के लिये सहकारिता सबसे अधिक उपयुक्त एजेन्सी है। कोई अन्य एजेन्सी इतनी अधिक शक्तिशाली एवं सामाजिक उद्देश्य से ओत-प्रोत नहीं जितनी कि सहकारिता है।"[19]

योजना के सहकारिता सम्बन्धी विशिष्ट उद्देश्य :-

पाँचवीं योजना में सहकारी विकास के चार विशिष्ट उद्देश्य रखे

गये थे, जो निम्न हैं:-

§1§ कृषि सहकारी समितियों §ऋण सप्लाई, विपणन और तैयारी§ को सुदृढ़ करना, जिससे लम्बे समय तक कृषि का विकास होता रहे।

§2§ विकास क्षम्य उपभोक्ता सहकारी प्रवृत्ति का निर्माण, जिससे उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर सामान मिलता रहे।

§3§ सहकारी विकास के स्तर में विशेषकर कृषि ऋण के क्षेत्र में क्षेत्रीय असन्तुलन दूर करना ।

§4§ सहकारी समितियों के पुनर्गठन की दिशा में विशेष प्रयास, जिससे वे छोटे और सीमान्त किसानों तथा गरीब लोगों के लाभ के काम कर सकें।

सहकारिता के विकास की मूल नीति एवं लक्ष्य :-

पाँचवीं योजना में सहकारिता के विकास के लिये जो मूल नीति अपनाई गई, उसमें संरचनात्मक सुधारों पर विशेष ध्यान दिया गया। कुछ ऐसे क्षेत्रों में जहाँ कि लघु एवं सीमान्त कृषक लाभ प्राप्त करने वाले हैं तथा सहकारी व्यवस्था दुर्बल है। कृषकों की सेवा समिति का विचार, जिसको राष्ट्रीय कृषि आयोग ने सुझाया था, अजमाने का निर्णय हुआ। अनेक अक्षमतावान प्राथमिक कृषि साख समितियाँ और कमजोर जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों में भी संरचनात्मक सुधार किये जाने थे, ताकि किसानों तक साख का प्रवाह निर्वाध होता रहे। अनेक उपभोक्ता सहकारी भण्डारों का भी पुनर्गठन करने का प्रस्ताव सामने था।

इन संरचनात्मक परिवर्तनों के अतिरिक्त पाँचवीं योजना के सहकारिता विकास की मूलनीति में सहकारिताओं में पेशेवर प्रबन्ध को बढ़ावा देने के लिये

आवश्यक पग उठाना भी सम्मिलित था। सहकारी प्रबन्धकों का एक संवर्ग बनाने, उपनियमों एवं कार्यविधियों को सुधारने, सार्वजनिक क्षेत्र के व्यापारिक बैंकों और प्राथमिक साख समितियों के बीच सम्पर्क बढ़ाने के लिये उचित कदम उठाये जाने थे। सहकारिता की दृष्टि से कम विकसित राज्यों में सहकारी विकास को बढ़ावा देने हेतु साख, विपणन और विधायन के क्षेत्रों में विशेष केन्द्रीय सेक्टर स्कीमें लागू करने का निश्चय किया गया। निम्नांकित तालिका में पाँचवीं योजना के लिये कुछ महत्वपूर्ण सहकारी कार्यक्रमों के लक्ष्य निर्धारित किये गये थेः-

पाँचवीं योजना के सहकारिता सम्बन्धी लक्ष्य

कार्यक्रम	इकाई	उपलब्ध स्तर 1973-74	निर्धारित लक्ष्य 1978-79
1. अल्पकालीन ऋण साख समितियों द्वारा	करोड़ रु0	700	1300
2. मध्यकालीन ऋण साख समिति द्वारा	करोड़ रु0	200	325
3. दीर्घकालीन ऋण भूमि विकास बैंकों द्वारा	करोड़ रु0	900	1500
4. कृषि उपज की समितियों द्वारा वार्षिक विपणन	करोड़ रु0	1100	1900
5. सहकारी विधायन समितियाँ इकाइयाँ	साख	1500	2150
6. सहकारी समितियों द्वारा वितरक उर्वरक का वार्षिक मूल्य	करोड़ रु0	350	380
7. संग्रह क्षमता योजना के अन्त में	लाख टन	33	68
8. शहरी उपभोक्ता समितियों द्वारा फुटकर बिक्री वार्षिक	करोड़ रु0	300	800

छठवीं योजना में सहकारिता :-

छठवीं योजना में सहकारिता विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत निम्न के लिये व्यवस्था की गयी है:-

(1) प्रत्येक ग्रामीण को एक ही स्थान पर सभी प्रकार की साख दिलाने की व्यवस्था की जायेगी, इसके लिए बहुउद्देश्यीय प्राथमिक सहकारी समितियों को सुदृढ़ किया जायेगा।

(2) प्राथमिक कृषि साख समितियों को वृहद आकारी बहुउद्देश्यीय समितियों अथवा कृषि सेवा समितियों के नमूने पर पुनर्गठित किया जायेगा।

(3) सहकारी समितियों का प्रबन्ध सवैतनिक एवं कुशल प्रबन्धकों को सौंपा जायेगा।

(4) ॠण देने की प्रक्रिया एवं पद्धतियों को सुगम बनाया जायेगा तथा निर्धन वर्ग को उचित कार्यों के लिये उचित दरों पर ॠण उपलब्ध कराये जायेंगे।

(5) प्राथमिक कृषि साख समितियों को व्यापारिक बैंकों से अधिक धन दिलाया जायेगा।

(6) डिपाजिटों को अधिकाधिक आकर्षित करने के प्रयास किये जायेंगे।

(7) प्रत्येक पुनर्गठित समिति को एक गोदाम सुलभ कराया जायेगा।

(8) उर्वरकों का उत्पादन सहकारी क्षेत्र में बढ़ाया जायेगा।

(9) प्रत्येक नगर एवं कस्बे (जनसंख्या 50000 से अधिक) में कम से कम एक सहकारी उपभोक्ता भण्डार संचालित किया जायेगा।

§10§ सहकारी विपणन को बढ़ावा दिया जायेगा।

§11§ राष्ट्रीय सहकारी संघों को मजबूत बनाया जायेगा।

§12§ सहकारी आन्दोलन को स्वतन्त्र बनाने के प्रयास किये जायेंगे।

PROGRESS OF COOPERATIVE PROGRAMME
SIXTH PLAN

Programme	Unit	Sixth Plan Base level 1979-80	Target 1984-85	Achive-ment 1984-85 estimated
1. Short Term Loans	Rs.Crores	1300	2500	2500
2. Medium Term Loans	"	125	240	250
3. Long Term Loans	"	275	555	500
4. Value of Agriculture Produce marketed through Cooperatives	"	1750	2500	2200
5. Retail Sale of fertilizer through cooperatives				
A. Quantity	Million tones	2.35	4.50	3.63
B. Value	Rs.Crores	900	1600	1500
6. Value of Consumer goods distributed in Rural Areas.	"	800	2000	1400
7. Retail SAle of consumer goods in Urban Areas.	"	800	1600	1400
8. Capacity of cooperative ggodowns constructed	Million tones	4.70	8.20	8.00
9. Cooperative Sugar factories installed	Nos.	142	185	185
10. Cooperative Spinning Mills installed	"	62	80	90
11. Cold storages installed	"	125	275	185

Source: Seventh Five Year Plan 1985-90, P.25.

सातवीं योजना में सहकारिता 1985-1990 :-

सहकारी विकास के अन्तर्गत प्रमुख बातें निम्न होंगी:-

1. प्राथमिक कृषि साख समितियों का इस प्रकार गठन किया जाये कि वह एक बहुउददेश्यीय इकाइयों के रूप में कार्य कर सकें।
2. इनसे सम्बन्धित नीतियों एवं कार्यकरण का पुनर्निर्माण, ताकि कमजोर वर्ग को अधिक मात्रा में साख साधन (इनपुट) तथा सेवायें प्राप्त हो सकें।
3. कम विकसित राज्यों विशेष रूप से पूर्वोत्तर क्षेत्र में विशेष सहकारी कार्यक्रमों का क्रियान्वयन ।
4. उपभोक्ता सहकारी आन्दोलन को शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में और अधिक शक्तिशाली बनाना, ताकि लोक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत ये महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकें।
5. कार्यकारी कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए व्यवसायी संगठन को और अधिक शक्तिशाली तथा प्रशिक्षण सुविधाओं को और अधिक प्रभावशाली बनाना।

सातवीं योजना में साख सम्बन्धी लक्ष्य :-

प्राथमिक कृषि सहकारी समितियाँ सम्पूर्ण सहकारी ढाँचे का आधार है, वे न केवल अल्पकालीन, मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन साख प्रदान करती हैं, वरन् कृषि उपज का विपणन, साधनों की पूर्ति और उपभोक्ता पदार्थों का वितरण भी करती हैं। इस कारण से इन्हें शक्तिशाली बनाना आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। यह भी आवश्यक है कि जमाओं के रूप में इनके आन्तरिक साधन बढ़ाये जायें। इस संदर्भ में प्रभावकारी तरीकों की आवश्यकता है ताकि इनकी वसूली स्थिति में सुधार किया जा सके।

सातवीं योजना में अधिकांश जोर इस बात पर दिया जायेगा कि कमजोर वर्गों और कम विकसित क्षेत्रों को समुचित साख सुनिश्चित की जा सके। इसके लिए ऋणों की स्वीकृति तथा वितरण आदि से सम्बन्धित क्रियाओं में परिवर्तन की आवश्यकता होगी। निवेश, उत्पादन और उपभोग के लिये एक ही स्थान से साख प्रदान की जायेगी। अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन साख के एकीकरण के लिए धीरे-धीरे कदम उठाए जायेंगे। द्विस्तरीय वर्तमान सहकारी ढाँचे को समाप्त करना होगा। इस एक इकाई नीति को प्रभावशाली बनाने के लिए अल्पकालीन साख संस्थायें निवेश के लिए साख तथा दीर्घकालीन संस्थायें उत्पादन के लिये साख प्रदान करेंगी।

उन राज्यों में जहाँ सहकारिता का विकास बहुत धीमा है(विशेष रूप से पूर्वोत्तर क्षेत्र) साख का प्रवाह बढ़ाने के लिए विशेष तरीके अपनाने होंगे। इन राज्यों में सहकारी संस्थाओं को मजबूत बनाने के लिए इनके पूँजीगत आधार में अंशों के रूप में योगदान तथा प्रबन्धात्मक अनुदान के द्वारा सहायता देनी होगी। इससे इनकी नाबार्ड से उधार लेने की क्षमता में वृद्धि होगी।

वसूली में सुधार करने तथा बकाया को कम करने के लिए सहकारी संस्थाओं के निरीक्षण पर ताकि साख का उचित उपयोग हो सके, पर अधिक जोर दिया जायेगा। इसके लिए विशेष वसूली अभियान चलाये जायेंगे और अन्य तरीके भी प्रयोग किये जायेंगे। साथ ही साथ यह भी करना आवश्यक होगा कि नये सदस्यों तथा उन सदस्यों को साख प्राप्त होती रहे जो समय पर ऋण अदायगी कर सकें।

किसानों के दरवाजे तक साख पहुँचाने के लिये सचल साख वितरण प्रणाली एक पाइलट योजना के रूप में प्रारम्भ की जायेगी और कृषि अधिकारियों की नियुक्ति की जायेगी, जोकि प्राथमिक समितियों और

व्यापारिक बैंकों की शाखाओं की देख-रेख कर सकें। ये अधिकारी गाँव-गाँव जायेंगे, किसानों की ऋण आवश्यकताओं का आंकलन करेंगे और वहीं पर ऋण स्वीकृत करेंगे। साथ ही ये किसानों का आवश्यक तकनीकी पथ प्रदर्शन भी करेंगे। ये अधिकारी इन ऋणों की वसूली के लिये भी जिम्मेदार होंगे।

इसके अतिरिक्त इस योजना के अन्तर्गत सहकारी विपणन, सहकारी विधायन समितियाँ, सहकारी भण्डार, सहकारी उपभोक्ता, सहकारी शिक्षा पर भी विशेष बल दिया जायेगा।

निम्न तालिका में सांतवीं पंचवर्षीय योजना के कार्यक्रम एवं उनके लक्ष्य दर्शाए गये हैं:-

सांतवीं पंचवर्षीय योजना के कार्यक्रमों के लक्ष्य[20]

कार्यक्रम	इकाई	उपलब्ध स्तर 1984-85	लक्ष्य 1989-90
1	2	3	4
1. अल्पकालीन ऋण	करोड़ रु0	2500	5540
2. मध्यकालीन ऋण	"	250	500
3. दीर्घकालीन ऋण	"	500	1030
4. सहकारी संस्थाओं द्वारा उत्पादन के विक्रय का मूल्य	"	2700	5000
5. सहकारी संस्थाओं द्वारा खाद की फुटकर बिक्री:			
(अ) मात्रा	मिलियन टन	3.63	8.33
(ब) मूल्य	करोड़ रु0	1500	3400
6. ग्रामीण क्षेत्र में उपभोक्ता सामान के वितरण का मूल्य	"	1400	3500

1	2	3	4
7. शहरी क्षेत्र में उपभोक्ता सामान के वितरण का मूल्य	करोड़ रु0	1400	3500
8. सहकारी भण्डारों की क्षमता	मिलियन टन	8.00	10.00
9. सहकारी शकर कारखानों का स्थापित करना	संख्या	185	220
10. सहकारी मिल स्थापित करना	"	90	130
11. कोल्ड स्टोरेज को स्थापित करना	"	185	250

REFERENCES

1. C.R.Reddy; Co-operative Agricultural Finance,1988,P.33.

2. Nicholson,F.D.; Report regarding the Possibility of Introducting Land and Agricultural Bank in Madras Presidency, Madras, 1895,PP.663-664.

3. Kumar Kewal; Institutional Finance of Indian Agricultural, 1987, P.64.

4. Muniraj,R.; Farm Finance for Development, 1982, P.20.

5. Muniraj,R; Farm Finance for Development, 1987, P.21.

6. Jagannath Mishra; Co-operative Banking in Bihar,Patna, Lalit Narain Mishra; Institute of Economics Development and Social Change, 1977, P.30.

7. Muniraj,R.; Farm Finance for Development, 1987, P.21

8. Report of the Royal Commission on Agriculture,1928,P.450

9. Review of the Co-operative Movement of India, 1939,P.40.

10. Niyogi,J.P.; The Co-operative Movement in Bengal,1940, P.4.

11. Reddy,C.R.; Co-operative Agricultural Finance,1988,P.35.

12. Banking and Monetary Statistics of India,R.B.I.,P.449.

13. Report of the Agricultural Finance Sub.Committee,1945, P.47.

14. Report of the Co-operative Planning Committee,1946.

15. Govt.of India, First Five Year Plan, New Delhi,1952, P.163.

16. All India Rural Credit Survey Report, P.228.

17. Hajela,T.N.; Principles,Problems and Practice of Co-operation, 1973, P.210.

18. Hough,D.M.; Co-operative Movement in India,1959, PP XIII and XXIV.

19. Draft Fifth Five Year Plan, P.78.

20. Seventh Five Year Plan,1985-90, Vol.2, P.26.

:: अध्याय तृतीय ::

सहकारी वित्त व्यवस्था का स्वरूप

खण्ड - अ

अल्पकालीन एवं मध्यकालीन साख का स्वरूप

1. प्राथमिक सहकारी समितियाँ

2. जिला सहकारी बैंक

3. राज्य सहकारी बैंक

कृषि साख का सहकारी ढाँचा (तृतीयामी)
अल्पकालीन एवं मध्यकालीन तृतीयामी ढाँचा
दीर्घकालीन साख
1. राज्य सहकारी बैंक शीर्ष या राज्य स्तर पर
1. केन्द्रीय भूमि विकास बैंक (राज्य स्तर पर)
2. जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक (जिला स्तर पर)
3. प्राथमिक कृषि साख समितियाँ (ग्राम स्तर पर)
2. प्राथमिक भूमि विकास बैंक (जिला स्तर पर)
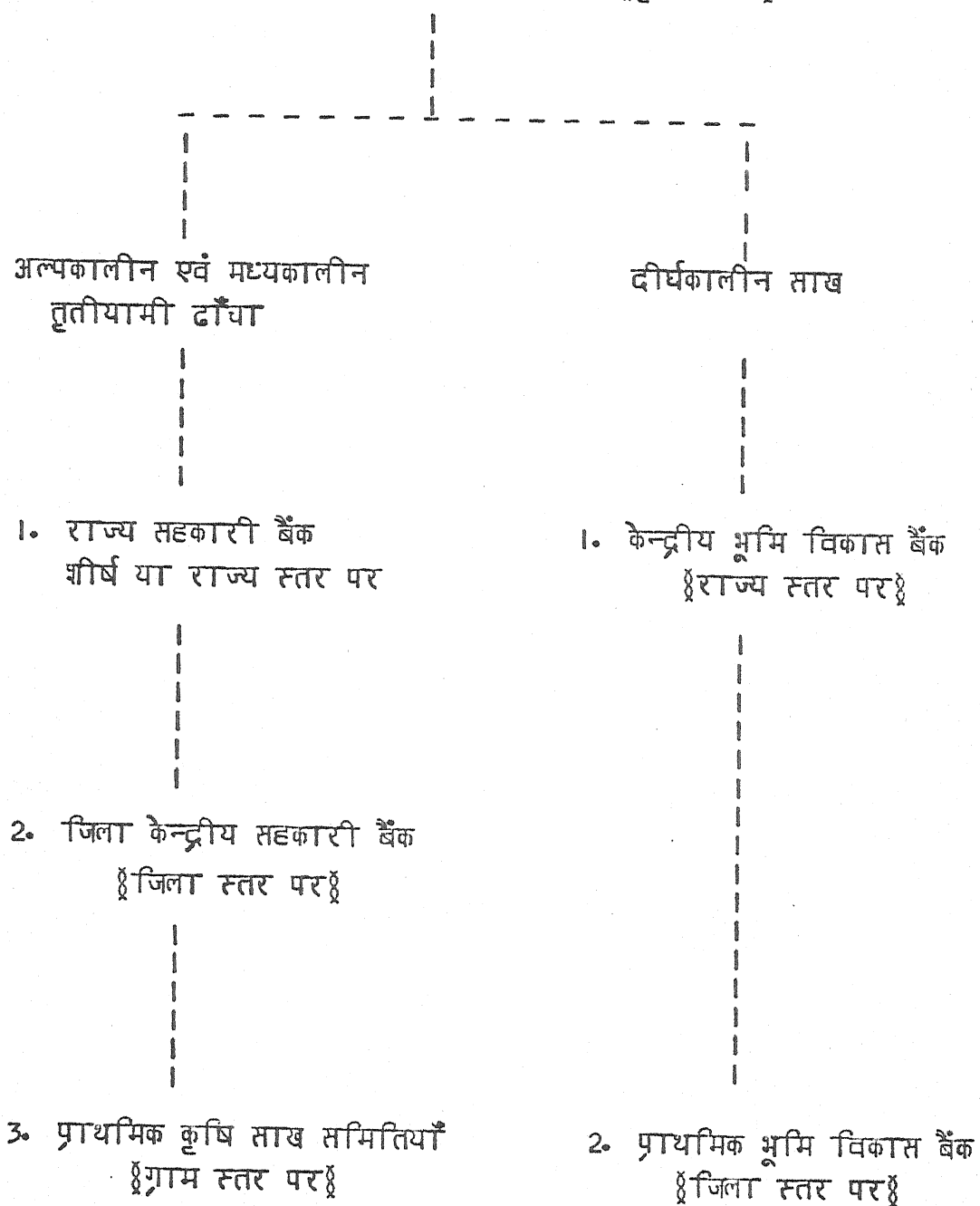
तृतीयामी सहकारी ढाँचा

हमारे देश का सहकारी साख ढाँचा संघीय एवं स्तूपाकार है। राज्य स्तर पर राज्य सहकारी बैंक, जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा गाँव स्तर पर प्राथमिक सहकारी साख समितियाँ हैं। तीनों संस्थायें एक एकीकृत पधति के स्रोतों को जुटाने के लिए एक साथ मिलती हैं तथा साख आपूर्ति के एक प्रभावशाली साधन के रूप में कार्य करती हैं। यह ढाँचा जोकि अल्पकालीन एवं मध्यकालीन साख की व्यवस्था करता है। दीर्घकालीन सहकारी ढाँचा द्विस्तरीय है - राज्य स्तर पर केन्द्रीय भूमि विकास बैंक तथा जनपद स्तर पर प्राथमिक भूमि विकास बैंक है। सम्पूर्ण सहकारी साख ढाँचे को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है:-

1. प्राथमिक कृषि साख समितियाँ :-

कृषकों को साख सुलभ कराने के लिए प्राथमिक स्तर पर ये समितियाँ हैं। ये इकाईयाँ देश में सहकारिता आन्दोलन की जीवत: तथा सेवा का प्रतीक हैं। ऐसी समितियाँ भारत में सहकारिता आन्दोलन की "अन्तर्वस्तु" हैं तथा सहकारी संस्थाओं की विशालतम संरचना हैं। इन समितियों के गठन का इतिहास सन् 1904 से आरम्भ होता है, जब प्रथम सहकारी साख समितियाँ अधिनियम पारित किया गया था। ये समितियाँ कृषकों को महाजनों एवं सूत खोरों के चंगुल से छुटकारा दिलाने के लिए एवं उनको सस्ती कृषि साख उपलब्ध कराने के लिए स्थापित की गईं थीं। इनका उद्देश्य न केवल साख उपलब्ध कराना था, बल्कि लोगों को सहकारिता के सिद्धान्तों एवं सहकारिता के बारे में अन्य जानकारी भी देना था, जिससे साख समितियाँ शक्तिशाली बन सकें और बिना किसी कठिनाई के अन्य बहुउद्देश्यीय व्यापारिक गति-विधियों में वृद्धि कर सकें। दूसरे शब्दों में ये "समितियाँ नींव का वह पत्थर

हैं, जिस पर सम्पूर्ण सहकारी इमारत का निर्माण हुआ है।"।

प्राथमिक सहकारी कृषि साख समितियाँ कृषक सेवा समितियाँ और वृहत् स्तरीय अधिवासी बहुउद्देश्यीय सहकारी समितियों के साथ गाँव स्तर पर कार्य करती हैं। कृषि और ग्रामीण विकास अधिनियम 1981 की राष्ट्रीय बैंक ने प्राथमिक ग्रामीण साख समिति को निम्न रूप में परिभाषित किया है:-

"प्राथमिक ग्रामीण साख समिति से तात्पर्य एक सहकारी समिति से है, जो कृषि अथवा कृषि कार्यों अथवा कृषि पदार्थों के विपणन अथवा ग्रामीण विकास के लिए अपने सदस्यों को वित्तीय सहायता देने का उद्देश्य रखती हैं एवं जिसकी नियमावलियाँ सदस्य के रूप में दूसरी सहकारी समिति के प्रवेश को स्वीकार नहीं करतीं।"

अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति (1951-54) की सिफारिशों के अनुपालन में वृहत् स्तरीय बहुउद्देश्यीय समितियाँ जिन्हें हम सेवा सहकारिता के रूप में जानते हैं, संगठित की गई। बहुउद्देश्यीय समिति अपने सदस्यों को साख प्रदान करना, बचत को प्रोत्साहन देना, कृषि आवश्यकताओं की पूर्ति करना एवं घरेलू आवश्यकताओं को जुटाती हैं तथा आधिक्य कृषि पदार्थों के विपणन की व्यवस्था करती हैं। बहुउद्देश्यीय सहकारी समितियाँ राष्ट्रीय स्तर पर अनेक कारणों से सफल नहीं हुई। अत: साख के पहलू पर अधिक ध्यान दिया गया और दूसरे सेवा कार्यों की उपेक्षा की गई।

सन् 1930 तक प्राथमिक कृषि साख समितियों की संख्या एवं इनकी सदस्यता तथा जमा पूँजी में वृद्धि हुई और इनको कम दर पर ऋण देने वाली "विशुद्ध सहकारी संगठन" माना गया, परन्तु कालान्तर में इन समितियों में कुछ अनिश्चित परिणाम देखने को मिले। जैसे बकाया धनराशि बढ़ गई थी और सदस्य ऋण चुकाने में असफल रहे। साख को न तो उत्पादक उद्देश्य तक

सीमित किया गया और न इस उद्देश्य से उसको जोड़ा गया। प्रबन्ध समिति के सदस्यों में बेईमानी प्रचुरता से बढ़ी एवं समितियों की सही देखरेख नहीं की गई। अतः सन् 1947 में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने सुझाव दिया कि निष्क्रिय समितियों से छुटकारा पाया जाये। उसने यह भी संस्तुति की कि इन समितियों को कृषकों की वित्तीय आपूर्ति करने का अभिकरण मात्र नहीं होना चाहिए बल्कि संयुक्त विपणन के उद्देश्य से इनका लक्ष्य सर्वोन्मुखी विकास भी होना चाहिए। किसी नवीन समिति का पंजीकरण नहीं किया जाना चाहिए। अतः एकल उद्देश्यीय समितियों के स्थान पर बहुउद्देश्यीय साख समितियाँ होनी चाहिए। अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति की संस्तुतियों पर विशाल आकार की समितियों की स्थापना होने लगी। समिति का कथन था - चूंकि बहुसंख्यक प्राथमिक समितियाँ कमजोर हैं तथा उनका व्यापार न के बराबर है, अतः वे अपना कार्यालय रखने अथवा कर्मचारियों का व्यय भार वहन करने में असमर्थ, जमा करने में असमर्थ एवं अपने सदस्यों को प्रचुर साख उपलब्ध कराने में असमर्थ हैं। अतः हम सुझाव देते हैं कि भावी नीति का उद्देश्य बड़े आकार की साख समितियों का गठन होना चाहिए जो एक गाँव की सेवा करें। अतएव ऐसी समितियों का गठन होना चाहिए जो पर्याप्त मात्रा में व्यापार, एक पर्याप्त पूँजीगत आधार तथा एक पूर्ण शिक्षित और समर्थ पूर्णकालिक वेतनभोगी सचिव को सेवा दे सके।

योजनाकाल में एकल साख समितियों को बहुउद्देश्यीय साख समितियों में परिवर्तित करने, बीमार समितियों को समर्थ समितियों में परिवर्तित करने पर तथा समितियों की सीमित दायित्व को रखने पर अधिक जोर दिया गया।

वर्तमान समय तक प्राथमिक कृषि साख समितियाँ अन्य सभी सहकारी समितियों से महत्वपूर्ण रही हैं तथा सामान्यतया सम्पूर्ण सहकारी आन्दोलन और विशेषतया साख ढाँचे की सफलता काफी सीमा तक इन्हीं पर निर्भर रही

हैं। अखिल भारतीय स्तर पर उत्तर प्रदेश स्तर एवं बुन्देलखण्ड स्तर पर प्राथमिक सहकारी साख समितियों की प्रगति प्रशंसनीय रही है, जैसाकि तालिका नं0 1 से सिद्ध है।

तालिका सं0 1 (अ)

PROGRESS OF PRIMARY AGRICULTURE COOPERATIVE SOCIETIES

	Particulars	1970-71* (Rs. in crores)	Increase in %	1981-82** (Rs. in crores)
1.	Number of Societies	161000		94628
2.	Membership (in lakhs)	310	96	607
3.	Paid up Capital	205.74	191	598.2
4.	Deposits	69.46	359	317
5.	Borrings	675.19	287	2609
6.	Working Capital	1153.40	274	4307.1
7.	Loans & Advances issued	577.88	236	1939.9
8.	Loans and Advances outstanding	784.48	252	2762.3
9.	Loans and Advances overdues.	322.40	276	1211.9
10.	Percentage of overdues to demand	39.5		43.0
11.	Percentage of overdues to outstanding	41.1		43.9

Source:*1. Annual Report of the Ministry of Industries and Civil Supplies, Department of Corporation for 1974-75, P.392, Quoted by Memoria, C.B. in Agricultural Problems of India, 8th Edh, 1976, P.498, RBI-Report of CRAFICARD, 1981, P.479.

**2. Important items of data on State/Central Co-operative Banks/State Land Dev.Banks & Primary Agril.Credit Soc., 1981-82, NABARD for Private Circulation.

तालिका सं0 1 (ब)

PROGRESS OF PRIMARY AGRICULTURAL & COOPERATIVE SOCIETIES IN UTTAR PRADESH

Particulars	1970-71 (Rs. in thousand)	1987-88 (Rs. in crore)
1. Number of Societies	25922	N.A.
2. Membership (Lakhs)	55.26	110.67
3. Paid-up Capital	326221	95.64
4. Deposits	50355	33.30
5. Borrings	726369	296.76
6. Loans & Advances issued	513421	N.A.
7. Loans & Advances outstanding	463080	43.71
8. Working Capital	1053966	789.76
9. Loans & Advances overdues	855575	N.A.
10. Profit:		
No.of Societies	20984	4895
Amount	21279	N.A.
11. Loss:		
No.of Societies	2201	2415
Amount	732	N.A.

प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों का पंजीकरण :-

कोई भी दस व्यक्ति मिलकर प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों के पंजीकरण के लिए प्रार्थना पत्र दे सकते हैं। ऐसे लोगों की आयु 18 वर्ष से अधिक होना चाहिए एवं उनको समिति के कार्यक्षेत्र का निवासी होना चाहिए तथा यह क्षेत्र इतना बड़ा नहीं होना चाहिए कि उत्पादक समितियों को उनकी सेवाओं को प्राप्त करने में असुविधा महसूस हो। इन व्यक्तियों को चरित्रवान होना चाहिए। इन व्यक्तियों को पंजीकरण के लिए एक निर्धारित प्रपत्र पर प्रार्थना पत्र देना होता है जिसके साथ समिति की नियमावली की एक प्रतिलिपि तथा निर्धारित शुल्क उस स्थान के प्राथमिक समितियों के निबन्धक के पास भेजना पड़ता है। यदि निबन्धक इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि समस्त औपचारिकतायें पूर्ण हैं, तो वह समिति को पंजीकृत कर लेता है एवं पंजीकरण का प्रमाण पत्र दे देता है।

प्राथमिक कृषि समितियों के कार्य :-

प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों के प्रमुख कार्य निम्न है- अल्पकालीन एवं मध्यकालीन साख उपलब्ध कराना एवं अन्य उत्पादन सम्बन्धी आवश्यकताओं की आपूर्ति करना, कृषि उत्पाद के विपणन की व्यवस्था करना आदि। इन कार्यों के अतिरिक्त ये समितियाँ गाँव के लिए कृषि उत्पाद सम्बन्धी योजना का निर्माण एवं उनको लागू करने में सहायता करती हैं। इन समितियों से यह भी आशा की जाती है कि वे अपने सदस्यों में बचत की आदत को प्रोत्साहित करें। इस प्रकार प्राथमिक कृषि सहकारी समितियाँ सहकारिता सिद्धान्तों के अनुसार अपने सदस्यों के आर्थिक हितों को बढ़ाने का लक्ष्य लेकर चलती है और यह लक्ष्य विविध दिशाओं में कार्यवाही करके प्राप्त किया जाता है। जैसेकि सदस्यों में बचत को प्रोत्साहित करके, ऋण देकर, कृषि सम्बन्धी साधनों की

आपूर्ति करके, घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति करके तथा कृषि उत्पाद के विपणन की व्यवस्था करके।

प्रबन्ध तथा निरीक्षण :-

समिति का प्रबन्ध प्रजातान्त्रिक तरीके से होता है। यह "एक सदस्य एक वोट" के सिद्धान्त पर आधारित है। प्रबन्ध दो संस्थाओं को सौंपा जाता है- समस्त सदस्यों वाली एक सामान्य समिति तथा पाँच से लेकर 9 सदस्यों तक की एक प्रबन्ध समिति, जिनका चुनाव आमसभा में सामान्य समिति के सदस्यों में से किया जाता है। समिति से सम्बन्धित समस्त विषयों पर अन्तिम अधिकार साधारण सभा को होता है। समिति का बाह्य प्रशासन या तो पंचायत के हाथों में या साधारण सभा समिति द्वारा चुनी गई समिति के हाथों में निहित होता है। पंचायतों में से एक सभापति तथा सचिव का चुनाव किया जाता है। समिति का अधिशासी कार्य सचिव के द्वारा किया जाता है, जिस पर सभापति का नियंत्रण रहता है।

समितियों का निरीक्षण नियमित अन्तराल से होना चाहिए, जिससे यह कार्य प्रभावपूर्ण ढंग से हो सके। यह भी आवश्यक है कि एक निरीक्षण को बड़ी संख्या में समितियों के निरीक्षण का कार्य नहीं सौंपना चाहिए। परिप्रेक्षक की नियुक्ति राजकीय सहकारी बैंकों द्वारा अथवा सरकार द्वारा की जाती है।

प्राय: परिपेक्षक अल्प वेतनभोगी होते हैं तथा उनमें सहकारिता सिद्धान्तों के ज्ञान का अभाव होता है जो समिति की बदनामी का कारण बनते हैं। अत: रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने संस्तुति की है कि कर्मचारियों को अच्छा वेतन दिया जाना चाहिए और प्रोन्नति के रूप में अधिलाभांश प्रदान किया जाना चाहिए। ग्रामीण साख पुनर्विचार समिति ने यह सुझाव दिया है कि प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा रिफ्रेशर पाठ्यक्रम के माध्यम से ऐसे प्रयास किये जाने चाहिए।

सदस्यता :-

किसी भी गाँव के सभी कृषक, शिल्पकार एवं छोटे व्यापारी इन समितियों के सदस्य बन सकते हैं। 1950-51 में 7 प्रतिशत ग्रामीण समुदाय इसके सदस्य थे। सन् 1960-61 में बढ़कर यह 24 प्रतिशत हो गये एवं 1970-71 में 40.4 प्रतिशत तथा 1977-78 में 45 प्रतिशत बढ़कर हो गई। औसत सदस्यता प्रति समिति 1950-51 में 45 थी, जो 1981-82 में बढ़कर 64 हो गई।

उत्तरदायित्व :-

प्रारम्भिक काल में इन समितियों के उत्तरदायित्व असीमित थे। फलस्वरूप कर्ज न लेने वाले सदस्यों को उन सदस्यों के भी ऋण चुकाने पड़ते थे, जो ऋणी होते थे। अखिल भारतीय ग्रामीण साख पुनर्निरीक्षण समिति ने बताया कि असीमित दायित्व के कारण समिति अपनी ऋण नीति को उदार नहीं कर पाती है तथा नये सदस्यों को स्वीकार नहीं कर पाती एवं कार्यक्षेत्र का विस्तार नहीं कर पाती। तब समिति को कठिनाई का सामना करना पड़ता है, जब राज्य सरकार से अनुदान प्राप्त करने की बात आती है। क्योंकि राज्य सरकार का उत्तरदायित्व अनिवार्यता सीमाबद्ध होता है। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए समितियों का गठन सीमित दायित्व के तहत किया गया तथा असीमित दायित्व वाली समितियों को सीमित दायित्व वाली समितियों में रूपान्तरित कर दिया गया।

प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों की अंशपूँजी :-

प्राथमिक कृषि सहकारी समितियाँ सामान्यतया अल्प मूल्य के अंश निर्गमित अर्थात् 10 तथा 50 रूपये के अंश अपने सदस्यों को देती है। अंशों का स्वामित्व यह निश्चित करता है कि समिति के प्रति अंश ग्रहीता के क्या

अधिकार और दायित्व है। अंश निधि पूँजी, चालू पूँजी का एक महत्वपूर्ण अंश है। सदस्य की ऋणग्रहीता क्षमता उसके अंशों की संख्या से निर्धारित होती है। चूँकि प्राथमिक कृषि सहकारी समिति के सदस्यों की माँगों की पूर्ति के लिए विशाल स्रोतों की आवश्यकता होती है। अतः इसके लिए ये समितियाँ अंश निधि पूँजी, प्रवेश शुल्क, जमा, रिजर्व निधि तथा उच्चतर समितियाँ अथवा सरकार से ऋण लेकर उस माँग की पूर्ति करती है। 1971-72 में प्रति समिति औसत अंश निधि 14279 रूपये थी, जो 1981-82 में बढ़कर 63219 रूपये हो गई।

कार्यशील पूँजी के स्रोत :-

प्राथमिक कृषि ऋण समितियों के पूँजी के मुख्य रूप से चार भाग है:- अदायगी हिस्सा पूँजी धनराशि, रक्षित कोष तथा आधिक्य से उत्पन्न संरक्षित धनराशि, जमा, उधार। इन समितियों की अदायगी हिस्से पूँजी में लगातार वृद्धि हुई है। यह मुख्य रूप से सदस्यों के ऋणों को एवं समितियों के हिस्सों के जोड़ने से हुई है। इसका विवरण निम्न है:-

अंशधारिताओं से ऋणों का सम्बन्ध

ऋणों के प्रकार	उधार से अंशधारिता का प्रतिशत
अल्पकालीन ऋण	
1. लघु, सीमान्त और आर्थिक रूप से कमजोर कृषक	प्रथम वर्ष में 5% और क्रमिक दो वर्षों में प्रत्येक वर्ष में 2.5% कुल मिलाकर 10%
2. अन्य कृषक	प्रथम वर्ष में 10% क्रमिक दो वर्षों में प्रत्येक वर्ष में 5%, कुल मिलाकर 20%

मध्यकालीन ऋण
===========

(सहकारी प्रक्रियन समितियों में अंशों के क्रय के अलावा दूसरे कार्यों के लिए)

1. लघु, सीमान्त तथा आर्थिक रूप से पिछड़े कृषक	कुल मिलाकर 5%
2. कृषि श्रमिकों और अकृषक, कमजोर वर्ग के सदस्य	" "
3. अन्य कृषक	" 10%

मध्यकालीन ऋण
===========

(सहकारी प्रक्रियन समितियों के अंश के क्रय के लिए)

अन्य कृषक	कुल मिलाकर 3%

कोषों का निर्धारण :-

प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों के मुख्य कार्य अल्पकालीन तथा मध्यकालीन साख को प्रदान करना है। इसके अतिरिक्त गाँव के लिए, कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए, योजनाओं का निर्माण करना और क्रियान्वयन में कृषकों की मदद करने तथा ऐसे शैक्षणिक सलाहकारी एवं कल्याणकारी कार्य जिन्हें सदस्य इच्छा से करने के लिए तैयार हो, को लागू करने के साथ-साथ कृषि उत्पादन के विपणन एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कार्य करना है।

केन्द्रीय सहकारी तथा राज्य सहकारी बैंक से प्राप्त ऋण :-

प्राथमिक कृषि सहकारी समितियाँ अपने सदस्यों की साख आवश्यकताओं

की पूर्ति हेतु राज्य सहकारी बैंक तथा केन्द्रीय सहकारी बैंकों से ऋण प्राप्त करती है। समिति की ऋण लेने की अधिकतम क्षमता का निश्चय आमसभा में किया जाता है। समिति के ऋण उसके दायित्वों पर आधारित होते हैं और यह प्रत्येक राज्य में भिन्न-भिन्न है। साख सीमा निबन्धक के द्वारा अथवा केन्द्रीय सहकारी बैंक के द्वारा निम्नलिखित कारकों के आधार पर निश्चित की जाती है:- 1. सदस्यों की जमा पूँजी 2. सदस्यों की आय तथा बकाया चुकाने की क्षमता 3. समिति की स्वामित्व निधियाँ 4. आडिट वर्गीकरण 5. बकाया वसूल करने की क्षमता

नवीन ऋण, समितियों को कुछ निश्चित मापदण्डों पर निश्चित किये जाते हैं। कुछ राज्यों में डिफाउलिंग समितियों को कर्ज नहीं दिये जाते थे। कुछ राज्यों में समितियों के बकाया के आधार पर डिफाउलिंग समितियों को कर्ज दिये जाते हैं, जो 15 से 20 प्रतिशत के बीच होता है।

ऋणदान नीतियाँ :-

प्राथमिक कृषि सहकारी समितियाँ अपने सदस्यों का अल्पकालीन तथा मध्यकालीन ऋण देती है। अल्पकालीन ऋण कर्ज लेने वाले को व्यक्तिगत जमानत पर स्वीकृत होते हैं तथा मध्यकालीन ऋण उनकी अचल सम्पत्ति को बन्धक रखकर दिये जाते हैं। ऋण वसूली की अवधि ऋण से प्राप्त आय के आधार पर निश्चित होती है।

संचालन क्षेत्र :-

अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने संस्तुति की कि प्राथमिक ग्रामीण साख समितियों का पुनर्गठन ऐसा हो कि वह एक ग्राम समूह के क्षेत्र में कार्य करें, जिसमें समुचित विशाल सदस्य संख्या हो तथा पर्याप्त

व्यापार को पाने के लिए पर्याप्त अंशनिधि उपलब्ध हो। इस कार्य क्षेत्र में परिवारों की अधिकतम संख्या 600 हो या 3000 की जनसंख्या हो। समिति ने सिफारिश की कि 3000 की जनसंख्या वाले क्षेत्र में कार्य करने की अनुमति दी जा सकती है।

प्राथमिक सहकारी समितियों की प्रगति :-

बुन्देलखण्ड सम्भाग में प्राथमिक सहकारी कृषि समितियों की प्रगति :-

उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड सम्भाग के अन्तर्गत पाँच जनपद झाँसी, बाँदा, ललितपुर, हमीरपुर एवं जालौन आते हैं। इन जनपदों में सहकारी कृषि ऋण समितियों की प्रगति, समितियों की संख्या, सदस्यों की संख्या, अंशपूँजी, कार्यशील पूँजी, बकाया ऋण एवं लाभ-हानि आदि का विवरण तालिका नं0 2 में दर्शाया गया है, जोकि इस प्रकार है:-

तालिका नं0 2 (अ)

जनपद जालौन में सहकारी कृषि ऋण समितियों का प्रगति विवरण वर्ष 1970-71 से 1987-88

(धनराशि हजार रूपयों में)

वर्ष	संख्या समिति	संख्या सदस्य	अंशपूँजी	आरक्षित तथा अन्य निधियाँ	जमाराशि	कार्यशील पूँजी	लगा हुआ ऋण बकाया	लाभ		हानि		ऋण जो दिया गया		वसूली	
								संख्या स0	राशि	संख्या स0	राशि	अल्पकालीन	मध्यकालीन	अल्पकालीन	मध्यकालीन
1970-71	266	65974	4019	1884	2461	13370	9226	252	383	01	-	8084	294	1370	195
1971-72 1972-73	287	66829	4783	2301	3224	17880	11570	166	585	19	16	12588	910	10247	483
1973-74	266	70000	5060	2482	3375	18709	11770	255	608	10	04	10202	450	10001	474
1974-75	272	71756	5367	2743	3486	19836	14136	-	-	-	-	10416	398	9372	402
1977-78	115	93135	7901	1689	3666	17666	12251	106	720	-	-	23335	1371	17476	1030
1978-79	113	93668	8697	1802	3624	30192	1076	83	982	06	-	26650	2753	25502	817
1979-80	111	94000	9269	-	784	39796	30253	-	-	-	-	27790	2490	-	-
1983-84	111	108764	13097	-	5231	67804	36732	67	-	03	-	25043	11689	-	-
1984-85	111	125711	13628	-	5192	76090	41661	47	-	12	-	28996	12665	-	-
1985-86	111	107933	14426	-	5859	86431	45036	56	-	09	-	31401	13635	-	-
1986-87	111	116460	15121	-	7128	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-
1987-88	111	125169	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-

स्रोत:- सहकारी समिति निबन्धक उ0प्र0, लखनऊ, वर्ष 1970-71 से 1987-88

तालिकानं0 2 (ब)

जनपद झाँसी में सहकारी कृषि ऋण समितियों का प्रगति विवरण वर्ष 1970-71 से 1987-88

(धनराशि हजार रूपयों में)

वर्ष	संख्या समिति	संख्या सदस्य	अंशपूँजी	आरक्षित तथा अन्य निधियाँ	जमाराशि	कार्यशील पूँजी	लगा हुआ ऋण बकाया	लाभ		हानि		ऋण जो दिया गया		वसूली	
								संख्या स0	राशि	संख्या स0	राशि	अल्पकालीन	मध्यकालीन	अल्पकालीन	मध्यकाल
1970-71	683	85255	4014	738	1254	1674	9462	445	442	125	32	2110	346	3559	381
1971-72 1972-73	495	92248	4923	821	1473	18477	10333	432	264	-	-	7052	769	6014	639
1973-74	348	59000	3957	760	1056	14956	8409	161	228	63	10	4086	238	4247	329
1974-75	296	66075	4105	826	1070	14925	10901	-	-	-	-	4916	302	5052	293
1977-78	76	65270	6250	608	1329	24820	6770	37	293	21	271	20731	624	16093	431
1978-79	68	68755	7436	770	1494	33546	-	-	-	-	-	25993	3718	21863	233
1979-80	68	69000	8366	-	2221	42963	35011	40	-	-	-	26335	3046	-	-
1983-84	68	94862	12619	-	2221	73087	47328	40	-	-	-	22723	556	-	-
1984-85	-	99949	13083	-	2159	76674	48453	41	-	01	-	19860	4296	-	-
1985-86	-	102824	14264	-	2476	90656	54808	54	-	05	-	29539	3588	-	-
1986-87	-	112286	14935	-	3591	-	-	-	-	-	-	29333	3550	-	-
1987-88	-	121179	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-

स्रोत:- सहकारी समिति निबन्धक उ0प्र0, लखनऊ, वर्ष 1970-71 से 1987-88

तालिका नं0 2 (स)

जनपद बाँदा में सहकारी कृषि ऋण समितियों का प्रगति विवरण वर्ष 1970-71 से 1987-88

(धनराशि हजार रूपयों में)

वर्ष	संख्या समिति	संख्या सदस्य	अंशपूँजी	आरक्षित तथा अन्य निधियाँ	जमाराशि	कार्यशील पूँजी	लगा हुआ ऋण बकाया	लाभ		हानि		ऋण जो दिया गया		वसूली	
								संख्या स0	राशि	संख्या स0	राशि	अल्पकालीन	मध्यकालीन	अल्पकालीन	मध्यकालीन
1970-71	311	49008	2769	747	818	11835	5595	273	114	-	-	1756	300	2494	519
1971-72 1972-73	279	55819	3365	919	895	15038	7251	268	94	11	03	5565	961	4132	562
1973-74	272	61000	3775	1054	995	16473	8329	240	79	21	78	7776	538	6699	660
1974-75	230	61182	4375	1152	1020	20907	11985	-	-	-	-	27894	5682	6160	475
1977-78	109	81881	10470	655	1489	45906	9278	76	690	24	190	41887	7738	24940	1108
1978-79	109	92711	13290	678	1564	61114	-	-	-	-	-	5232	6201	32538	3565
1979-80	109	102000	15705	-	2481	83402	68913	-	-	-	-	-	-	-	-
1983-84	109	116696	17584	-	2481	118962	75117	73	-	15	-	13916	6641	-	-
1984-85	109	120926	17287	-	5192	123246	74302	57	-	20	-	7970	3399	-	-
1985-86	109	141410	16921	-	5859	123601	70031	42	-	36	-	5072	478	-	-
1986-87	-	124270	17075	-	2400	-	-	-	-	-	-	6189	1547	-	-
1987-88	-	125852	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-

स्रोत:- सहकारी समिति निबन्धक उ0प्र0, लखनऊ, वर्ष 1970-71 से 1987-88

तालिका सं0 2 (द)

जनपद हमीरपुर में सहकारी कृषि ऋण समितियों का प्रगति विवरण वर्ष 1970-71 से 1987-88

(धनराशि हजार रूपयों में)

वर्ष	संख्या समिति	संख्या सदस्य	अंशपूँजी	आरक्षित तथा अन्य निधियाँ	जमाराशि	कार्यशील पूँजी	लगा हुआ ऋण बकाया	लाभ		हानि		ऋण जो दिया गया		वसूली	
								संख्या स0	राशि	संख्या स0	राशि	अल्पकालीन	मध्यकालीन	अल्पकालीन	मध्यकालीन
1970-71	512	63836	3322	789	873	10267	6280	447	198	-	-	-	-	-	-
1971-72 1972-73	415	59681	3731	904	876	12321	7581	277	256	72	31	-	-	-	-
1973-74	363	74000	3843	978	938	13591	8099	179	172	97	97	-	-	-	-
1974-75	354	67296	3890	978	863	19836	-	-	-	-	-	10416	398	3129	112
1977-78	139	73954	5159	511	1122	18857	6231	88	378	37	338	-	-	-	-
1978-79	107	75230	6283	538	1273	34956	-	-	-	-	-	-	-	-	-
1979-80	107	87000	8036	-	-	37095	28414	-	-	-	-	-	-	-	-
1983-84	107	110033	12190	-	1711	70049	35909	62	-	22	-	29423	1895	-	-
1984-85	107	114591	13172	-	1985	80726	54022	76	-	14	-	33907	6474	-	-
1985-86	107	115788	14016	-	2367	84204	51570	69	-	16	-	30040	3728	-	-
1986-87	107	125799	15005	-	3034	-	-	-	-	-	-	39670	3285	-	-
1987-88	107	138268	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-

स्रोत :- सहकारी समिति निबन्धक उ0प्र0, लखनऊ, वर्ष 1970-71 से 1987-88

तालिका नं0 2 (य)

जनपद ललितपुर में सहकारी कृषि ऋण समितियों का प्रगति विवरण वर्ष 1970-71 से 1987-88

(धनराशि हजार रूपयों में)

वर्ष	संख्या समिति	संख्या सदस्य	अंशपूँजी	आरक्षित तथा अन्य निधियाँ	जमाराशि	कार्यशील पूँजी	लगा हुआ ऋण बकाया	लाभ		हानि		ऋण जो दिया गया		वसूली	
								संख्या स0	राशि	संख्या स0	राशि	अल्पकालीन	मध्यकालीन	अल्पकालीन	मध्यकालीन
1970-71	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-
1971-72	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-
1972-73	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-
1973-74	111	23000	1367	62	294	4439	2341	61	81	30	67	2294	106	1716	209
1974-75	111	26137	1520	62	284	4843	3277	-	-	-	-	2062	49	1615	189
1977-78	40	35230	2586	31	441	10563	3302	40	155	-	-	7232	293	5572	314
1978-79	40	33926	3295	31	459	4744	-	-	-	-	-	12570	676	9776	96
1979-80	40	37000	4023	-	-	20096	68913	-	-	-	-	24419	875	-	-
1983-84	41	50104	7591	-	784	43754	28210	37	-	03	-	17363	1240	-	-
1984-85	41	57425	7933	-	752	48449	30436	31	-	10	-	14113	796	-	-
1985-86	41	60935	8565	-	1077	55862	35484	40	-	01	-	18113	11999	-	-
1986-87	41	64173	9127	-	1280	-	-	-	-	-	-	12408	5083	-	-
1987-88	41	70453	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-

स्रोत :- सहकारी समिति निबन्धक उ0प्र0, लखनऊ, वर्ष 1970-71 से 1987-88

उपरोक्त तालिकाओं में दिये गये तथ्यों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि वर्ष 1970-71 की तुलना में 1987-88 में सभी जनपदों की समितियों की संख्या में गिरावट आई है। इस गिरावट का कारण कुछ समितियों का अन्य समितियों में एकीकरण करना एवं निष्क्रिय समितियों का भंग करना रहा है। दूसरा कारण यह है कि सरकार की नीति के अन्तर्गत एकल समितियों के स्थान पर बहुउद्देश्यीय समितियों के गठन पर विशेष बल दिये जाने के कारण एकल समितियां मृत प्राय: हो गईं। इसकी पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि समितियों के सदस्यों की संख्या में प्रत्येक जनपद में वृद्धि हुई है। जहाँ जालौन जनपद में वर्ष 1970-71 में प्राथमिक समितियों की सदस्य संख्या 65974 थी वहाँ यह संख्या बढ़कर वर्ष 1987-88 में 125169 हो गई अर्थात् इन सत्रह वर्षों में उनकी संख्या लगभग दुगुनी हो गई। उसी अवधि में झाँसी जनपद में इनकी संख्या 85255 से बढ़कर 121179 हो गई। बाँदा एवं हमीरपुर जनपद में तो इस अवधि में समिति के सदस्यों की संख्या में वृद्धि और भी तीव्रगति से हुई है। वर्ष 1970-71 की तुलना में 1987-88 में बाँदा में लगभग ढाई गुनी वृद्धि और हमीरपुर जनपद में दुगने से भी अधिक सदस्यों की संख्या बढ़ी है। यह तथ्य इस बात को सिद्ध करते हैं कि प्राथमिक कृषि ऋण सहकारी समितियों में लोगों की भागीदारी बढ़ी है। जनपद ललितपुर पहिले झाँसी जनपद में सम्मिलित था। सन् 1973-74 में यह झाँसी जनपद से अलग होकर एक स्वतन्त्र जनपद बना। अपनी स्थापना से लेकर वर्ष 1987-88 तक यह भी समितियों की सदस्य संख्या में उतरोत्तर वृद्धि हुई है।

समितियों की अंशपूँजी एवं कार्यशील पूँजी में सन् 1970-71 से 1987-88 के बीच पर्याप्त मात्रा में वृद्धि हुई है। जनपद जालौन में 1970-71 में यह अंशपूँजी केवल 4019 हजार रूपये थी, जोकि 1986-87 में बढ़कर 15021 हो गई तथा कार्यशील पूँजी 1970-71 में 13370 हजार रूपये से बढ़कर 1985-86

में 86431 हजार रूपये हो गई। इसी प्रकार झाँसी जनपद में अंशपूँजी 4014 हजार रूपये §1970-71§ से बढ़कर 14935 हजार रूपये वर्ष 1987-88 में हो गई और कार्यशील पूँजी जो 1970-71 में 1674 हजार रूपये थी, बढ़कर 1985-86 में 90656 हजार रूपये पहुँच गई। परन्तु जनपद बाँदा एवं हमीरपुर में ठीक सदस्य संख्या की वृद्धि के अनुरूप अंशपूँजी एवं कार्यशील पूँजी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। संदर्भ काल में बाँदा जनपद में अंशपूँजी में लगभग 6 गुनी एवं कार्यशील पूँजी में 10 गुने से अधिक वृद्धि हुई है जबकि जनपद हमीरपुर में अंशपूँजी में वृद्धि लगभग 5 गुनी एवं कार्यशील पूँजी में लगभग 8 गुनी वृद्धि हुई है। जनपद ललितपुर भी इन जनपदों की वृद्धि की तुलना में कम नहीं रहा है क्योंकि वर्ष 1973-74 से वर्ष 1986-87 के अन्तराल में अंशपूँजी में लगभग 7 गुनी वृद्धि एवं कार्यशील पूँजी में लगभग 12 गुनी वृद्धि हुई है। इस प्रकार बुन्देलखण्ड सम्भाग के सभी जनपदों में प्राथमिक समितियों की अंशपूँजी एवं कार्यशील पूँजी में वृद्धि हुई है परन्तु बाँदा, हमीरपुर एवं ललितपुर जनपदों में यह वृद्धि अप्रत्याशित एवं उल्लेखनीय रही है।

प्राथमिक सहकारी समितियों की उपयोगिता एवं सफलता का मूल्यांकन उनके द्वारा प्रदत्त ऋणों की राशि एवं वसूली प्रतिशत के आधार पर किया जाता है। यह तो निर्विवाद सत्य है कि विगत वर्षों के प्राथमिक सहकारी समितियों के द्वारा प्रदत्त ऋणों की मात्रा में पर्याप्त वृद्धि हुई है क्योंकि अधिकांश कृषकों एवं ग्रामीण जनसमुदाय का रूझान कृषि कार्यों हेतु ऋण प्राप्ति की ओर बढ़ा है। बुन्देलखण्ड सम्भाग के सभी जनपदों में प्राथमिक सहकारी कृषि समितियों के द्वारा प्रदत्त ऋणों में पर्याप्त वृद्धि हुई है। तालिका सं0 2 में दिये गये तथ्य प्रदर्शित करते हैं कि जहाँ जनपद जालौन में वर्ष 1970-71 में 8378 हजार ऋण वितरित किया गया था, जोकि 1986-87 में यह बढ़कर 45036 हजार रूपये हो गया जबकि वसूली केवल 1970-71 में 1565 हजार रूपये हुई थी जो 1978-79 में 26319 हजार रूपये बढ़ी थी। इसी प्रकार

जनपद झाँसी में भी इसी अवधि में ऋण वितरण 5456 हजार रूपये से बढ़कर 29333 हजार रूपये हो गया था तथा ऋण की वसूली 3940 हजार रूपये से बढ़कर 1978-79 में 22096 हजार रूपये हो गई। इसी प्रकार अन्य जनपदों में भी ऋणों की मात्रा बढ़ी है किन्तु ऋण वसूली अपेक्षाकृत कम हुई है।

यह निर्विवाद सत्य है कि केवल पर्याप्त मात्रा में ऋण देने मात्र से ही कोई भी समिति अपनी कार्यक्षमता सिद्ध नहीं कर सकती, जब तक कि उसकी वसूली सन्तोषजनक न हो। सम्भाग के लगभग सभी जनपदों में बकाया ऋणों की न केवल राशि बढ़ी है बल्कि कुल प्रदत्त ऋणों की तुलना में वसूली के प्रतिशत में गिरावट आई है। हाल ही में वसूली के प्रतिशत में गिरावट आने के लिए पूर्णरूपेण सहकारी समितियों को ही दोषी ठहराया नहीं जा सकता है क्योंकि कुछ हद तक सरकारी नीतियों एवं घोषणाओं के फलस्वरूप वसूली में शिथिलता आई है।

प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों को अपने कार्यकलापों को इस ढंग से संचालित करना चाहिए कि वर्ष के अन्त में वे कुछ न कुछ लाभ प्राप्त करने की स्थिति में हो क्योंकि यदि समितियाँ निरन्तर घाटे में चलती रहेगी तो आगे चलकर एक स्थिति ऐसी आयेगी जबकि उन्हें अपना कार्य बन्द करना पड़ सकता है। सामान्यतया बुन्देलखण्ड सम्भाग के सभी जनपदों की सहकारी कृषि समितियाँ लाभ पर ही चल रही हैं। एक-दो अपवादों को छोड़कर सन् 1970-71 से वर्ष 1987-88 की कार्य अवधि में इन्होंने लाभ ही कमाया है। हालांकि सभी जनपदों में लाभ की धनराशि में पहिले की अपेक्षा गिरावट आई है इसका कारण ये भी है कि विगत वर्षो में कर्मचारियों के वेतन व प्रशासनिक व्यय में भी वृद्धि हुई है। निःसन्देह इसे नियंत्रित करके समितियों के लाभार्जन में वृद्धि की जा सकती है।

PROGRESS OF PRIMARY AGRICULTURAL COOPERATIVE SOCIETIES

Particulars	INDIA		UTTAR PRADESH		BUNDELKHAND DIVISION	
	1970-71* (Rs.in crores)	1981-82** (Rs.in crore)	1970-71*** (Rs.in Thousand)	1981-82**** (Rs.in crores)	1970-71***** (Rs.in thousands)	1981-82****** (Rs.in thousands)
1. Number of Societies	161000	94628	25922	8607	1772	3265
2. Membership (in lakhs)	310.00	607.00	55.27	90.62	2.6	4.05
3. Paid-up Capital	205.74	598.2	21.93	72.78	1.4	4.62
4. Deposits	69.46	317.0	5.84	16.59	0.38	1.05
5. Borrowings	675.19	2609.0	5.3	342.46	11.28	-
6. Working Capital	1153.40	4307.1	124.91	543.78	73.4	285.05
7. Loans & Advances issued	577.88	1939.9	62.36	221.27	10.0	11.35
8. Loans & Advances outstanding	784.48	2762.3	52.45	340.18	20.7	22.09
9. Loans & Advances overdues	322.40	1211.9	85.56	160.80	24.6	32.8

*Annual Report of the Ministry of Industries and Civil Supplies, Department of Corporation for 1974-75,P.392,quoted by Memoria., C.B.,in Agricultural Problems of India, 8th Edh.,1976,P.498, RBI Report of CRAFICARD,1981,P.479.

** Important items of data on State/Central Co-operative Banks/State Land Development Bank and Primary Agricultural Credit Societies, 1981-82,NABARD for Private Circulation.

,* सहकारी समिति निबन्धक, उ0प्र0 लखनऊ, 1975,पृष्ठ 105, 1988, पृष्ठ 6.

*****,****** सहकारी समिति निबन्धक, उ0प्र0 लखनऊ, 1971-72, 1981-82

2. जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक :-

राज्य में सहकारिता आन्दोलन का ढाँचा एक पिरामिड जैसे आकार का होता है। सर्वोच्च शिखर पर राज्य सहकारी बैंक तथा इसके नीचे प्राथमिक कृषि समितियाँ होती हैं और बीच में जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक होती है। इसी कारण सहकारिता आन्दोलन संघात्मक संस्था बनता है जिसकी सफलता उसके वित्तीय ढाँचे पर आधारित होती है। प्राथमिक कृषि सहकारी समितियाँ प्रायः कमजोर संगठन होता है एवं अपने अपर्याप्त स्रोतों के कारण वे अपने पैरों पर खड़े होने में असमर्थ होते हैं। उनकी साख आवश्यकताओं की पूर्ति बाहरी वित्तीय से होती है, इस कारण महसूस किया गया कि प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों को कुछ वित्तीय संघों में बाँटा जाये। इस बात को ध्यान में रखकर सहकारी समिति अधिनियम 1912 में जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक के पंजीकरण का प्रावधान किया गया उसके बाद बड़े पैमाने पर जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक स्थापित किये गये।

जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक के कार्य :-

जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक, प्राथमिक कृषि साख समितियों एवं राज्य सहकारी बैंक के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी है, इसके कार्य निम्नलिखित है:-

(1) सदस्य समितियों की साख आवश्यकताओं की पूर्ति ।

(2) बैंकिंग व्यापार का संचालन ।

(3) प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों के स्रोतों के लिए एक "सन्तुलन केन्द्र" का कार्य करना ।

(4) गैर साख गतिविधियों को करना ।

(5) प्राथमिक कृषि साख समितियों से निकट तथा निरन्तर सम्पर्क बनाये

रखना एवं इन समितियों के लिए नेतृत्व एवं निर्देश प्रदान करना ।

§6§ प्राथमिक कृषि साख समितियों का निरीक्षण तथा परिप्रेक्षण करना ।

§7§ प्राथमिक कृषि साख समितियों के स्रोतों का धन विनियोग के लिए सुरक्षित स्थान देना ।

§8§ स्थानीय लोगों के मस्तिष्क में स्थानीय जमा को आकर्षित करने हेतु विश्वास दिलाना ।

§9§ अपने कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत सभी सम्भावित तरीकों द्वारा सहकारिता आन्दोलन को मजबूत आधार पर विकास करने में सहायता देना ।

संचालन का क्षेत्र :-

इनका कार्यक्षेत्र सामान्यतया एक जनपद होता है। यद्यपि सदस्यता केवल वैयक्तिक स्तर पर सीमित होती है परन्तु यह सभी प्रकार की सहकारी समितियाँ जैसे विपणन समितियाँ, उपभोक्ता भण्डार, कृषि ऋण समितियाँ, नगरीय सहकारी साख समितियाँ आदि के लिए खुली होती है। ये बैंक अपनी निधि को अंशपूँजी जनता की जमा पूँजी तथा सरकार अथवा रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, व्यापारिक बैंक तथा राज्य सहकारी बैंकों से प्राप्त कर्जों से बनाती है। इन बैंकों की ऋणग्रहीता क्षमता अपनी निजी पूँजी तथा जमा पूँजी के बीच 1:10 के अनुपात पर निर्धारित होती है। इनकी ऋणग्रहीता क्षमता इनके चुकाये गये अंश पूँजी तथा सुरक्षित निधि के 12 गुना से लेकर 15 गुना के बीच होती है। ये बैंक कृषि हेतु प्राथमिक कृषि साख समितियों की वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति हेतु सामान्य तथा अल्प एवं मध्यकालीन ऋण देते हैं। ये ऋण समुचित जमानत, भू-सम्पत्ति, मकान बन्धक रखकर, पशु, कृषि उत्पाद, स्वर्णाभूषण, फिक्स जमा रसीदें, जीवन बीमा निगम की पोलिसीज, प्रोनोट को लेकर

स्वीकृत किये जाते हैं और ये सब चीजें ऋण लेने वाली समितियों के द्वारा प्रस्तुत की जाती है।

भारत में
जिला केन्द्रीय सहकारी बैंकों की प्रगति

(धनराशि करोड़ रुपयों में)

मदें	1977-78	1978-79	1979-80	1980-81	1981-82
संख्या	338	338	337	337	338
निजी पूँजी	484	546	602	669	731
जमा पूँजी	1377	1669	1978	2419	2758
रिजर्व बैंक/ शीर्ष बैंक से प्राप्त ऋण	784	806	886	1017	1444
कार्यशील पूँजी	2954	3376	3870	4572	5304
ऋण वितरण	2116	2432	2695	3211	4143
ऋण बकाया	754	835	969	940	1083

Source: Report of trend and progress of Banking in India, 1980-81, 1981-82, 1982-83, (R.B.I.),PP 81-85 &119.

कार्यशील पूँजी :-

जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक में कार्यशील पूँजी के अन्तर्गत आते हैं- अंश पूँजी, सुरक्षित निधियाँ, सदस्यों तथा गैर सदस्यों की जमा पूँजी तथा राज्य सहकारी बैंक एवं संयुक्त बैंकों से लिये गये ऋण। जमा पूँजी जो कि कार्यशील पूँजी का एक प्रमुख स्रोत है, जो अधिक एकत्रित किया जाना चाहिए

ताकि वे प्राथमिक समितियों की वित्तीय आवश्यकताओं को बड़े पैमाने पर पूर्ति में समर्थ हो सकें। किन्तु इस सम्बन्ध में स्थिति को बहुत सन्तोषजनक नहीं माना जा सकता, यद्यपि इसमें बहुत परिवर्तन हुआ है। 1950-51 में इन बैंकों के पास कुल जमा पूँजी मात्र 38 करोड़ रूपये थी। यह जमा पूँजी 1955-56 में 46 करोड़ रूपये हो गई। परन्तु 1960-61 से इस ओर स्थिति में काफी तीव्र गति से परिवर्तन हुआ क्योंकि 1960-61 में यह पूँजी बढ़कर 110 करोड़ रूपये हो गई तथा 1968-69 तक 350.84 करोड़ रूपये हो गई एवं 1979-80 में 1778 करोड़ रूपये, 1981-82 में यह बढ़कर 2758 करोड़ रूपये हो गई।

ऋण तथा ऋण वितरण :-

जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक का अधिकतर लेन-देन प्राथमिक कृषि साख समितियों से रहा है। ये बैंक इन समितियों के अल्पकालीन तथा मध्यकालीन ऋण अग्रिम रूप में देते हैं। अल्पकालीन ऋणों का बहुत बड़ा भाग कृषि सम्बन्धी उद्देश्यों के लिए होता है जैसेकि- कृषि सम्बन्धी कार्य, कृषि सम्बन्धी वस्तुओं के क्रय के लिए, कृषि सम्बन्धी यंत्रों को खरीदने हेतु, फसल के विपणन तथा कृषि उत्पाद की सही प्रक्रिया के लिए इत्यादि। मध्यकालीन ऋण भूमि के प्रभावशाली सुधार के लिए एक से तीन वर्ष के लिए दिये जाते हैं जैसे- कुँए खोदने के लिए, पशु क्रय हेतु, मशीनरी के ऋण के लिए जिससे भूमि का छोटा-मोटा सुधार हो सके अथवा अन्य कृषि सम्बन्धी उद्देश्यों के लिए।

जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक का एक बहुत बड़ा भाग असन्तोषजनक तत्व यह है कि इनके बकाया में निरन्तर वृद्धि हुई है। इसके प्रमुख देखरेख में अपर्याप्तता तथा क्षमता, जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक एवं प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों के प्रबन्ध में लापरवाही, सहकारी विपणन के विकास का अभाव तथा साख एवं विपणन के बीच की कड़ी का अभाव है। जानबूझकर

बकाया न देने वाले दोषी सदस्यों के विरूद्ध तात्कालिक कार्यवाही का अभाव तथा बकाया वसूल करने के प्रति सामान्य लापरवाही भी ऐसी स्थिति के लिए उत्तरदायी है।

तालिका सं0 1(ए) में अखिल भारतीय स्तर पर जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक की सामान्य प्रगति का विवरण दिया गया है एवं तालिका सं0 1 (बी) में ऋण की स्थिति को दर्शाया गया जो उद्देश्यानुसार दिया गया है:-

TABLE NO.1(A)

COMPOSITION OF WORKING CAPITAL OF D.C.C.Bs IN INDIA

(Rs. in crores)

Particular	1965-66	1967-68	1972-73	1973-74	1977-78	1979-80	1980-81	1981-82*
Working Capital	583.5	706.0	1441.8	1594.1	2954.1	3870.0	4572.0	5304.0
Owned Funds	101.9 (71.8)	135.5 (19.2)	254.3 (18.0)	280.6 (17.6)	483.8 (16.4)	602.0 (15.55)	669.0 (14.63)	731.0 (13.78)
Deposits	236.6 (40.5)	300.6 (42.6)	646.6 (45.8)	718.6 (45.1)	1376.6 (46.6)	1978.0 (51.11)	2419.0 (52.91)	2758.0 (52.0)
Other Borrowings	254.0 (41.8)	270.0 (38.2)	570.9 (36.2)	595.5 (37.3)	927.6 (31.4)	886.0 (22.89)	1017.0 (22.24)	1444.0 (27.22)

*Provisional data.

Note: Figures in brackets indicate percentage to total working capital.

Source: Report on trend and progress of Banking in India, 1982-83, P.119.

TABLE NO. 1(B)

LOANS ADVANCED PURPOSE-WISE BY D.C.C.Bs IN INDIA

(Rs. in crores)

Purpose	1961-62	1965-66	1967-68	1972-73	1973-74	1975-76	1977-78
A. Short Term(Total)	353.77	642.0	747.3	1128.0	1206.0	1575.4	1865.0
1. Seasonal Agricultural operations.	202.20	311.3	393.9	601.0	657.3	-	-
2. Marketing of Crops.	52.76	74.0	73.7	56.18	42.94	49.3	23.4
3. Consumption Loans.	3.95	22.3	31.8	-	-	-	-
4. Purchase of Agricultural implements.	N.A.	13.7	5.5	1.18	2.05	4.2	5.5
5. Processing of Agricultural produce.	N.A.	24.9	27.7	53.64	63.71	70.8	146.9
6. Industrial purpose.	94.86	13.1	19.0	25.17	34.27	42.0	90.1
7. Other purpose.	-	18.7	195.7	227.79	274.18	297.8	403.1
B. Medium Term Loans	30.54	40.3	45.4	172.23	81.80	146.3	250.4
1. Sinking and repairs of well.	0.04	3.8	3.4	6.49	3.39	5.2	7.9
2. Purchase of Machinery.	2.09	3.7	4.5	10.69	6.90	7.3	6.7
3. Purchase of cattle	7.26	13.1	17.3	7.70	8.21	12.5	9.4
4. Minor improvement to land	3.84	4.0	3.7	1.47	0.81	1.4	1.4
5. Other Agricultural purpose	N.A.	5.5	5.3	18.66	5.75	119.7	225.0
6. Other purpose	6.41	10.2	11.2	25.59	25.78	-	-

Source: Report on trend and progress of Banking in India, 1982-83

तालिका नं0 1 {बी} में मध्यकालीन ऋण जो 1961-62 में 30.54 करोड़ था, बढ़कर 1967-68 और 1972-73 में क्रमशः 45.4 करोड़, 172.23 करोड़ रूपये हो गया। और 1977-78 में बढ़कर 250.4 करोड़ हो गया।

अल्पकालीन ऋण जो 1961-62 में 353.77 करोड़ रूपये था, यह बढ़कर 1967-68 में 747.3 करोड़ रूपये, 1973-74 में 1206.8 करोड़ रूपये एवं 1977-78 में यह बढ़कर 1865.0 करोड़ रूपये हो गया। इसी प्रकार मध्यकालीन ऋण जो 1961-62 में 30.54 करोड़ रूपये था, यह 1965-66 में बढ़कर 40.3 करोड़ रूपये हो गया तथा 1977-78 में यह बढ़कर 25.1 करोड़ रूपये हो गया।

जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक का प्रबन्धतंत्र :-

जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक के प्रशासन के लिए वार्षिक रूप से चुनी गई प्रबन्धतंत्र परिषद तथा एक कार्यपालिका होती है अथवा अन्य कुछ मामलों में त्रिवर्षीय आधार पर "एक सदस्य एक वोट" के आधार पर चुनाव होता है। समितियाँ एवं वैयक्तिक अंश पूँजीधारी {शेयर होल्डर} इस प्रबन्ध परिषद का प्रतिनिधित्व करते हैं।

बुन्देलखण्ड सम्भाग में केन्द्रीय सहकारी बैंकों की प्रगति :-

बुन्देलखण्ड सम्भाग में पाँच जनपदों (झाँसी, बाँदा, ललितपुर, हमीरपुर एवं जालौन) में वर्ष 1977-78 से 1986-87 तक केन्द्रीय सहकारी बैंकों का बहुमुखी विकास हुआ है। विशेष रूप से इनकी कार्यशील पूँजी में वृद्धि हुई है। यह पूँजी जनपद जालौन वर्ष 1977-78 में 224.50 लाख रूपये थी, वर्ष 1986-87 में बढ़कर 1065.13 लाख रूपये हो गई। इसी प्रकार झाँसी जनपद में इसी अवधि में 417.94 लाख रूपये से बढ़कर 1222.88 लाख रूपये हो गई। जनपद बाँदा एवं हमीरपुर में क्रमशः जो राशि वर्ष 1977-78 में 510.76 लाख रूपये, 310.57 लाख रूपये से बढ़कर यह राशि वर्ष 1986-87 में क्रमशः 1302.14 लाख रूपये व 1171.35 लाख रूपये हो गई। अब ऐसे केन्द्रीय बैंक को जीवन योग्य नहीं समझा जाता, जिसकी पूँजी एक करोड़ रूपये से कम है। बुन्देलखण्ड सम्भाग में कोई भी केन्द्रीय बैंक ऐसी नहीं है, जिसकी कार्यशील पूँजी एक करोड़ से कम हो। इससे स्पष्ट है कि जहाँ तक वित्तीय साधनों का प्रश्न है, इन बैंकों ने इस दिशा में काफी प्रगति की है, जिससे वे भविष्य में अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

अंश पूँजी में भी इस अवधि में प्रशंसनीय प्रगति हुई है क्योंकि जहाँ पर जनपद झाँसी में 1977-78 में यह धनराशि केवल 57.34 लाख रूपये थी, बढ़कर 1986-87 में 109.38 लाख रूपये हो गई। इसी प्रकार जनपद बाँदा में 57.39 लाख रूपये से बढ़कर 93.75 लाख रूपये इसी अवधि में हो गई। जनपद हमीरपुर एवं जालौन में यह राशि इसी अवधि में लगभग दुगुनी हो गई। निजी कोष में भी यह राशि शनैः-शनैः बढ़ती ही गई। तथा इन बैंकों की जमा पूँजी में भी इन वर्षों के दौरान लगभग तिगुनी और चौगुनी वृद्धि हुई है परन्तु ललितपुर जनपद पहिले झाँसी जनपद के अन्तर्गत आता था, हाल ही में यह अपना स्वयं अस्तित्व पाया है अतएव यहाँ के बैंकों की प्रगति

सन्तोषजनक नहीं है।

किसी भी वित्तीय संस्था की उन्नति का आंकलन उसके द्वारा दिया गया ऋण एवं वसूली से आंकना चाहिए क्योंकि सहकारी संस्थाओं का ऋण वितरण की प्रक्रिया को अपनाना ही प्रमुख उद्देश्य है। बुन्देलखण्ड सम्भाग के सभी जनपदों में ऋण वितरण की प्रक्रिया को वर्ष 1977-78 से वर्ष 1986-87 तक निरन्तर वृद्धि होती गई है परन्तु इस अवधि में सभी जनपदों में बकाया ऋणों में लगभग पाँच गुनी वृद्धि हुई है। अतः यह एक गम्भीर प्रश्न है। यदि इस सम्बन्ध में प्रभावशाली कदम नहीं उठाये गये तो हो सकता है कि कुछ बैंकों की स्थिति असन्तोषजनक हो जाये। हालांकि इन बकाया ऋणों में वृद्धि का कारण सरकारी नीति, सूखा, बाढ़ आदि कारण उत्तरदायी रहे हैं।

केन्द्रीय सहकारी बैंकों की कार्यक्षमता इनका लाभदायकता से मालूम की जा सकती है। झाँसी जनपद में केन्द्रीय सहकारी बैंक द्वारा जो लाभ वर्ष 1977-78 में केवल 31.97 लाख रूपये से बढ़कर वर्ष 1986-87 में यह 98.69 लाख रूपये हो गया। इसी प्रकार जनपद बाँदा में इसी अवधि में 40.92 लाख रूपये से बढ़कर 181.31 लाख रूपये हो गया। जनपद हमीरपुर में यह धनराशि 18.34 लाख रूपये से बढ़कर 95.78 लाख रूपये और जनपद जालौन में 29.14 लाख रूपये से 104.91 लाख रूपये इसी अवधि में लाभार्जन किया, जोकि एक आशाजनक लाभार्जन है।

बुन्देलखण्ड सम्भाग में जिलेवार केन्द्रीय सहकारी बैंकों की प्रगति

जनपद बाँदा

(Amt. in lakhs)

Year	No.of bran-ches	Share capi-tal	Owne Funds	Working Capital	Loan disbured during the year		Outstanding against cashcredit	
					S.T.	M.T.		Year's demand
1977-78	14	57.39	75.79	510.76	343.25	64.95	-	388.38
1978-79	14	66.55	86.50	636.64	479.00	93.38	-	483.91
1979-80	14	74.23	104.10	892.78	286.09	391.93	-	508.44
1980-81	14	88.97	35.97	1052.86	374.16	8.86	453.13	692.73
1981-82	15	90.29	121.89	1010.35	224.02	51.40	365.10	837.69
1982-83	16	90.64	124.15	1109.79	186.64	284.58	365.10	816.42
1983-84	15	92.35	127.90	1186.43	137.73	105.22	28.03	294.42
1984-85	15	92.83	129.64	1221.34	82.88	17.03	24.36	644.51
1985-86	15	93.83	140.66	1293.32	62.15	1.19	36.13	709.83
1986-87	16	93.75	144.75	1302.14	62.15	15.78	-	755.09

Year	Recovery	Overdues	Deposits	Years Income	Borrowings	Outstanding Loan
1977-78	351.73	36.65	348.62	40.92	222.38	340.81
1978-79	572.38	34.05	359.81	53.49	271.19	463.32
1979-80	473.85	34.59	448.91	63.27	190.33	667.49
1980-81	480.57	134.15	648.67	87.60	346.29	371.72
1981-82	581.70	242.20	583.37	90.16	365.10	747.29
1982-83	476.97	339.45	640.01	99.39	185.30	861.69
1983-84	273.10	378.19	728.67	98.97	502.50	855.34
1984-85	71.72	560.16	827.49	173.87	540.09	878.12
1985-86	80.52	629.33	898.16	187.38	519.26	786.28
1986-87	318.03	442.47	997.38	181.31	502.32	661.36

स्रोत:- सहकारी समिति निबन्धक उ0प्र0, लखनऊ, वर्ष 1977-78 से 1986-87

बुन्देलखण्ड सम्भाग में जिलेवार केन्द्रीय सहकारी बैंकों की प्रगति

जनपद झाँसी

(Amt. in lakhs)

Year	No. of branches	Share capital	Owne Funds	Working capital	Loan disbured during the year		Outstanding against cash credit		Recovery	Overdues	Deposits	Years Income	Borrowings	Outstanding Loan
					S.T.	M.T.		Year's demand						
1977-78	15	57.34	15.50	417.94	286.88	19.07	5.59	342.53	256.24	74.09	307.68	31.97	156.49	235.75
1978-79	15	71.14	16.13	556.28	392.57	53.80	12.30	428.06	446.37	92.06	355.54	41.51	242.77	343.69
1979-80	19	79.34	16.95	663.87	240.56	224.65	8.38	485.52	314.31	172.21	392.01	49.67	315.34	494.19
1980-81	19	99.04	116.36	806.39	673.70	14.39	35.74	794.66	603.45	191.21	502.95	64.18	322.17	587.22
1981-82	19	103.00	120.36	966.39	455.73	102.80	49.05	681.29	476.41	204.88	720.32	78.22	358.17	630.66
1982-83	19	126.48	150.17	1220.24	466.85	130.19	83.03	927.34	491.04	436.30	895.52	104.70	461.58	736.67
1983-84	19	140.72	161.99	1240.94	441.68	26.80	81.85	465.87	433.98	460.13	1028.20	112.91	396.45	703.10
1984-85	19	143.68	191.74	1343.41	358.54	57.94	103.30	495.34	355.61	598.86	1165.55	118.16	407.39	763.97
1985-86	14	109.01	131.97	1124.73	238.40	38.62	-	828.58	501.99	326.59	1165.35	105.46	250.73	419.70
1986-87	15	109.38	147.43	1222.88	222.63	54.10	-	588.60	231.52	357.08	1281.18	98.69	246.82	521.20

स्रोत:- सहकारी समिति निबन्धक उ0प्र0, लखनऊ, वर्ष 1977-78 से 1986-87

बुन्देलखण्ड सम्भाग में जिलेवार केन्द्रीय सहकारी बैंकों की प्रगति

जनपद हमीरपुर

(Amt. in lakhs)

Year	No. of branches	Share Capital	Owne Funds	Working Capital	Loan disbursed during the year	Outstanding against cash credit	Year's demand	Recovery	Overdues	Deposits	Year's Income	Borrowings	Outstanding Loan
1977-78	10	33.80	13.40	310.57	112.83	10.00	161.30	97.86	63.43	279.70	18.34	52.19	127.07
1978-79	13	35.83	13.82	343.21	251.15	12.68	257.58	251.15	56.10	300.23	24.40	88.88	179.12
1979-80	13	56.81	14.01	430.11	313.99	9.79	278.34	210.62	67.72	376.90	30.47	151.46	282.49
1980-81	13	53.99	76.33	483.40	396.37	21.51	400.55	328.42	72.12	445.97	42.80	208.47	350.49
1981-82	14	58.51	80.89	569.86	456.48	49.08	509.01	389.26	119.75	574.36	51.29	220.30	368.58
1982-83	13	62.72	22.79	563.36	463.12	51.60	801.48	673.35	125.43	680.57	66.21	149.89	470.21
1983-84	13	73.50	26.50	720.36	616.52	43.88	515.07	620.67	191.31	836.84	71.31	269.98	473.78
1984-85	13	76.56	28.50	830.76	724.62	57.55	517.22	629.54	273.73	937.40	80.50	288.27	555.19
1985-86	15	70.86	91.57	1031.74	420.26	93.16	620.02	496.62	214.73	1077.69	88.33	258.69	282.26
1986-87	15	75.37	99.07	1171.35	805.88	93.32	521.5[illegible]	744.10	245.32	1304.83	95.78	216.75	-

स्रोत:- सहकारी समिति निबन्धक उ0प्र0, लखनऊ, वर्ष 1977-78 से 1986-87

बुन्देलखण्ड सम्भाग में जिलेवार केन्द्रीय सहकारी बैंकों की प्रगति

जनपद जालौन

(Amount in lakhs)

Year	No.of bran-ches	Share capi-tal	Owne Funds	Working Capital	Loan disbured during the year	Outstanding against cash credit	Year's demand	Recovery	Overdues	Deposits	Years Income	Borrowings	Outstanding Loan
1977-78	12	43.96	53.48	224.50	320.97	34.73	277.16	194.13	84.03	403.55	29.18	24.31	123.81
1978-79	12	49.29	59.23	313.56	239.48	33.71	327.42	239.48	87.18	389.44	34.24	58.11	117.40
1979-80	13	52.13	65.15	432.16	241.22	34.58	243.52	173.32	70.20	409.20	31.61	104.68	219.69
1980-81	13	50.06	63.23	533.89	203.65	47.69	303.65	222.89	80.96	495.65	40.45	105.26	207.48
1981-82	13	58.80	73.53	637.72	258.84	24.76	335.50	239.89	95.61	619.18	55.11	95.92	202.25
1982-83	13	65.39	80.71	726.35	299.53	0.43	461.63	291.79	122.68	753.37	64.70	77.86	191.20
1983-84	13	54.34	89.03	887.36	335.29	0.16	811.98	363.95	105.70	862.93	67.65	96.61	192.03
1984-85	13	69.33	92.65	903.15	318.35	-	902.27	291.86	168.07	1001.30	78.39	122.29	242.07
1985-86	15	94.62	115.47	1006.49	354.72	-	675.06	411.55	148.56	1182.35	93.55	201.55	224.47
1986-87	15	97.51	119.60	1065.13	384.92	-	989.42	335.47	186.06	1423.78	104.91	189.19	318.41

स्रोतः- सहकारी समिति निबन्धक उ0प्र0, लखनऊ, वर्ष 1977-78 से 1986-87

3. राज्य सहकारी बैंक :-

सहकारी आन्दोलन का सम्पूर्ण ढाँचा संघीय प्रकृति का है। इस प्रकार के संघीय ढाँचे का सुझाव सन् 1914 में मैक्लेगन समिति द्वारा दिया गया था। उसी समय यह अनुभव किया गया था कि जिस प्रकार प्राथमिक समितियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए जिला स्तर पर केन्द्रीय बैंक के रूप में उनके संघ की आवश्यकता है, उसी प्रकार राज्य स्तर पर केन्द्रीय बैंकों के संघ के रूप में एक राज्य सहकारी बैंक का भी होना आवश्यक है। इस प्रकार राज्य सहकारी बैंक किसी राज्य की सहकारी साख संस्थाओं में एक सर्वोच्च संस्था है तथा सर्वोच्च शीर्ष या शिखर बैंक कही जाती है। यह संस्था सहकारी आन्दोलन विशेषकर सहकारी साख के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है। वह समस्त साख आन्दोलन का नियन्त्रण एवं प्रबन्ध करती है तथा विभिन्न संस्थाओं के कार्यों में समन्वय स्थापित करती है। इस संस्था द्वारा ही राज्य की अन्य सहकारी साख संस्थाओं का नेतृत्व किया जाता है। यह संघीय ढाँचे के शिखर पर स्थापित यह सम्बद्ध संस्थाओं से शक्ति ग्रहण करता है और इसके उपलक्ष्य में देश के मौद्रिक ढाँचे के सम्पर्क के फलस्वरूप अर्जित की गई शक्ति प्रदान करता है। यह ऐसे ढंग से कार्य करता है कि सभी आवश्यकतायें ठीक तरह से पूरी हो तथा ऋणदान एवं बकाये में कमी के कारण वित्तीय सुदृढ़ता कम न हो। यह बैंक एक ओर मुद्रा बाजार तथा भारतीय रिजर्व बैंक से सम्पर्क जोड़ता है तथा दूसरी ओर सहकारी साख ढाँचे से। यह बैंक विशाल पूँजी को आकर्षित करके तथा भारतीय रिजर्व बैंक से ऋण प्राप्त करके केन्द्रीय सहकारी बैंकों का पूरक बनता है और ऐसे बैंकों के अतिरिक्त स्रोतों और रिजर्वों का संरक्षक के रूप में कार्य करता है। यह एक ऐसा कारक है जो एक बाहरी एजेन्सी को सुरक्षा देता है। अतः केन्द्रीय सहकारी बैंक अल्पकालीन, मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन सहकारी साख के सम्पूर्ण ढाँचे में

एक धुरी की स्थिति रखता है। यह उसे सहकारी आन्दोलन का मित्र, प्रेरक तथा मार्गदर्शक कहा जाये, तो अतिशयोक्ति न होगी।

राज्य सहकारी बैंकों के कार्य :-

राज्य सहकारी बैंकों का मूल उद्देश्य राज्य में कार्य करने वाली सहकारी संस्थाओं के एक सन्तुलन केन्द्र, समाशोधन गृह तथा वित्तीय संस्था के रूप में कार्य करना है। इनको केन्द्रीय तथा शहरी बैंकों की अतिरिक्त जमा राशियों (कोषों) को प्राप्त करने तथा उन्हें उन क्षेत्रों में जहाँ उनकी आवश्यकता हो, पहुँचाने का अधिकार है। राज्य सहकारी बैंकों के प्रमुख कार्य निम्न है:-

(1) वे राज्य स्तर पर सहकारिता की नीति में समन्वय स्थापित करते हैं।

(2) ये बैंक राज्य की सहकारी संस्थाओं के साधनों के लिए सन्तुलन केन्द्र के रूप में कार्य करते हैं।

(3) वे समस्त सहकारिता आन्दोलन के लिए साख नीति निर्धारित करने तथा उसे कार्यान्वित करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

(4) वे केन्द्रीय बैंकों के कार्यों पर नियन्त्रण रखते हैं तथा राज्य की सहकारी संस्थाओं के मित्र, प्रेरक तथा पथ प्रदर्शक के रूप में कार्य करते हैं।

(5) वे सहकारी आन्दोलन का देश के मुद्रा बाजार तथा रिजर्व बैंक से सम्पर्क स्थापित करते हैं।

(6) वे राज्य सहकारी आन्दोलन तथा राष्ट्रीय सहकारी आन्दोलन में भी सम्बन्ध एवं समन्वय स्थापित करते हैं।

§7§ कहीं-कहीं पर ये बैंक §जैसे बम्बई, मद्रास§ उपभोक्ता सहकारी आन्दोलन के प्रसार एवं संगठन में भी सहायता प्रदान करते हैं तथा कुछ राज्यों में व्यापारिक बैंकों का भी कार्य करते हैं।

शीर्ष बैंकों की सदस्यता :-

राज्य सहकारी बैंकों के सदस्य केन्द्रीय बैंक प्राथमिक सहकारी समितियाँ तथा व्यक्ति हैं। 1976-77 में देश में कार्य करने वाले 26 राज्य बैंकों में से केवल 7 बैंक विशुद्ध प्रकार के थे, जिनमें राज्य सरकार के अतिरिक्त केवल सहकारी संस्थाओं को ही उनके हिस्सों को खरीदने का अधिकार प्राप्त था। शेष बैंक मिश्रित राज्य सहकारी बैंक थे, जो सहकारी समितियों तथा व्यक्तियों दोनों को ही सहायता ग्रहण करने की अनुमति प्रदान करते थे।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि राज्य सहकारी बैंकों की स्थापना का श्रेय व्यक्तिगत प्रयासों को है न कि सहकारी समितियों को। इन संस्थापक अग्रगामियों ने स्वयं पूँजी देकर तथा अपने मित्रों को इनके अंशों को खरीदने तथा अपना धन जमा करने के लिए प्रेरित करके एक महत्वपूर्ण एवं उपयोग कार्य किया है। फलस्वरूप कुछ बैंकों पर ऐसे व्यक्तियों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए ही बाद में व्यक्तियों को नये अंशों का निर्गमन नहीं किया गया। इस सम्बन्ध में अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वे का यह सुझाव था कि राज्य सहकारी बैंक की सदस्यता सभी केन्द्रीय बैंकों तथा उन सहकारी साख संस्थाओं के लिए खुली रखनी चाहिए, जोकि उससे प्रत्यक्ष व्यवहार करते हों। एक बहुत ही सीमित संस्था में व्यक्तियों को उसकी सदस्यता प्रदान की जानी चाहिए।

कार्यक्षेत्र :-

इनका कार्यक्षेत्र राज्य के अन्तर्गत है प्रत्येक राज्य में एक सर्वोच्च बैंक

होता है परन्तु कुछ राज्यों में जैसे महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, पंजाब, आन्ध्र प्रदेश में एक से अधिक है। इनकी सदस्यता सभी जिला सहकारी बैंक तथा अन्य ऐसी समितियों के लिए खुली है, जिनका सीधा लेन-देन राज्य सहकारी बैंक से होता है।तमिलनाडु, महाराष्ट्र जैसे राज्यों में वैयक्तिक सदस्यता का प्रावधान भी है। अब राज्य सरकारें राज्य सहकारी बैंकों की हिस्सेदार हो गई है ताकि उनको मजबूत एवं प्रभावशाली बनाया जा सके।

प्रबन्धतंत्र :-

यधपि राज्य सहकारी बैंकों की प्रमुख सत्ता आमसभा के पास निहित है, फिर भी दिन-प्रतिदिन के कार्य संचालन का अधिकार निदेशक मण्डल के हाथों में निहित है। एक हिस्सेदार के परिणाम बतौर स्वरूप सरकार कुछ निदेशकों को नामांकित करती है और शेष निदेशकों को आमसभा के द्वारा चयनित किया जाता है। आमसभा की प्रत्येक वर्ष में एक बार मीटिंग होती है।

वित्तीय स्रोत :-

इन बैंकों के प्रमुख रूप से वित्तीय स्रोत निम्न है- अंशपूँजी, सुरक्षित निधि, सदस्यों एवं गैर सदस्यों की जमा पूँजी, राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण बैंक, भारतीय रिजर्व बैंक, भारतीय स्टेट बैंक तथा राज्य सरकार से लिये गये ऋण एवं राज्य का योगदान ।

ऋण सम्बन्धी क्रियायें :-

राज्य सहकारी बैंक कृषि कार्यों तथा उपज के विपणन के लिए अल्पकालीन ऋण प्रदान करते हैं, जबकि पशुओं एवं यंत्रों को खरीदने तथा कुँए आदि के लिए मध्यकालीन ऋण देते हैं। सदस्य समितियों को अपनी शाखाओं के माध्यम से ऋण स्वीकृत किये जाते हैं।

साख सीमा तथा उपयोग :-

राज्य सहकारी बैंकों को भारतीय रिजर्व बैंक अल्पकालीन तथा मध्यकालीन कृषि उद्देश्यों हेतु ऋण स्वीकृत करते हैं। अल्पकालीन साख सीमायें इन बैंकों को और भी कृषि कार्य हेतु तथा फसल विपणन हेतु भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा स्वीकृत किये जाते हैं। राज्य सहकारी बैंकों को मध्यकालीन सीमायें स्वीकृत नहीं की जाती है, ताकि वे सूखा व अकाल के कारण वसूल न हो सकने वाले अल्पकालीन ऋणों को जिला सहकारी बैंकों से बकाया में समर्थ बना सके।

उ0प्र0 राज्य सहकारी बैंकों की प्रगति :-

उ0प्र0 में राज्य सहकारी बैंकों की भूमिका सामान्यतया प्रशंसनीय रही है क्योंकि 1971-72 में अंश पूँजी 45727 हजार रूपये थी, बढ़कर यह 1986-87 में 200023 हजार रूपये हो गई। इसी प्रकार कार्यशील पूँजी इसी समयान्तराल में 725181 हजार रूपये से बढ़कर 7797300 हजार रूपये हो गई। जमा की धनराशि में भी काफी तीव्रगामी गति से वृद्धि हुई है क्योंकि 1971-72 में यह केवल 311871 हजार रूपये थी, 1986-87 में यह बढ़कर 4414769 हजार रूपये हो गई। इस प्रकार हर क्षेत्र में उ0प्र0 राज्य सहकारी बैंक ने सन्तोषजनक प्रगति की है।

इस बैंक द्वारा इन 15 वर्षों में जो ऋण वितरण किया उससे भी बड़ी मात्रा में राज्य के कृषक लाभान्वित हुए क्योंकि पहिले जो ऋण की मात्रा थी, वह राज्य के विशालतम क्षेत्र को दृष्टिगत रखते हुए बहुत ही कम मात्रा में थी यह ऋण वितरण की राशि, जोकि 1970-71 में 337630 हजार रूपये था, वह 1986-87 में बढ़कर 1706381 हजार रूपये हो गई। लेकिन ऋण वितरण के

साथ ही साथ बकाया ऋणों में भी वृद्धि हुई। यह बकाया ऋणों की धनराशि इसी अवधि में 415922 हजार रूपये से बढ़कर 2503393 हजार रूपये हो गई।

इसके अतिरिक्त उ0प्र0 सहकारी बैंक ने इसी अवधि के दौरान लाभार्जन भी किया है और निरन्तर वृद्धि भी अर्जित की है। यह धनराशि 1971-72 में 35061 हजार रूपये से बढ़कर 1986-87 में 581193 हजार रूपये हो गई।

UTTAR PRADESH CO-OPERATIVE BANK

INCOME, EXPENDITURE, NET PROFIT & COST OF MANAGEMENT

(Amt. in 000 Rs.)

YEAR	INCOME	EXPEN-DITURE	NET PROFIT	COST OF MANAGEMENT	
				AMOUNT	% to W.C.
1971-72	35061	31475	3586	4445	0.61
1972-73	40050	36465	3585	4675	0.53
1973-74	50011	42787	7224	5561	0.61
1974-75	73014	63832	9182	7195	0.68
1975-76	90026	79241	10779	7813	0.76
1976-77	108784	93300	15484	7777	0.54
1977-78	158028	136305	21723	9104	0.47
1978-79	172503	144293	28210	10330	0.46
1979-80	197771	168321	29450	13016	0.46
1980-81	258445	227848	30597	18617	0.51
1981-82	339397	307218	32179	25617	0.56
1982-83	391573	355279	36294	31898	0.62
1983-84	450984	414611	36373	36057	0.63
1984-85	482027	445535	36492	41138	0.66
1985-86	542143	510870	31273	46000	0.64
1986-87	581193	575664	5529	52900	0.68

स्रोतः- उ0प्र0 कोआपरेटिव बैंक लि0, लखनऊ ।

UTTAR PRADESH CO-OPERATIVE BANK

LOAN ADVANCES & OUTSTANDINGS

(Rs. in 000 Rs.)

YEAR	S.T. LOAN ADVANCES	M.T. LOAN ADVANCES	CONVERSION	TOTAL LENDING	S.T. LOAN (OUTSTANDING)	M.T. LOAN (OUTSTANDING)	TOTAL ST+MT LOAN OUTSTANDING
1971-72	337630	3403	123387	464420	269257	146665	415922
1972-73	494308	11281	20344	525933	319012	124410	443422
1973-74	520909	8340	5404	534653	393612	82501	477113
1974-75	663513	-	7496	670414	491051	36490	527541
1975-76	686657	481	5978	693116	381306	8937	390243
1976-77	951075	47170	280	998525	523681	62305	585986
1977-78	1125942	37660	36026	1199628	653839	111542	765381
1978-79	1256383	50631	106450	1413464	752249	213113	965362
1979-80	1194975	74764	515650	1775389	633449	692879	1326328
1980-81	1358711	67350	157675	1583736	880987	612365	1492752
1981-82	1414269	173495	92045	1609809	1266186	561143	1827329
1982-83	1458965	176910	444870	2080745	1156458	782906	1939364
1983-84	1668941	324515	217896	2211052	1325765	897433	2223198
1984-85	1526955	140236	120307	1787498	1446736	808778	2255514
1985-86	1494782	146250	505681	2146713	1494782	818714	2313496
1986-87	1706381	144892	509611	2360884	1707943	795450	2503393

स्रोत:- उ0प्र0 कोआपरेटिव बैंक लि0, लखनऊ ।

UTTAR PRESH CO-OPERATIVE BANK

SHARE CAPITAL, RESERVES, OWNED FUNDSDEPOSITS WORKING CAPITAL & INVESTMENT

(Amt. in 000 Rs.)

YEAR	SHARE CAPITAL	OF WHICH GOVT.	RESERVES	OWNED FUND	DEPOSITS	WORKING CAPITAL	INVESTMENT	
							AMOUNT	OF WHICH IN GOVT. SECURITY
1971-72	45727	6220	55329	101056	311871	725181	106449	34412
1972-73	57235	16220	59598	116833	416879	874976	106232	33742
1973-74	58482	17220	62745	121228	490479	915411	118209	38742
1974-75	60544	20220	71471	132015	551726	1054787	143343	53592
1975-76	66842	20220	85410	152252	752983	1033291	205292	98527
1976-77	73999	20220	88569	162568	1046612	1452588	297397	151653
1977-78	86977	20220	98649	185626	1187303	1933035	336818	182893
1978-79	95866	20220	153751	249617	1300233	2227101	349672	200418
1979-80	109526	20220	221020	330546	1595041	2815012	401431	226951
1980-81	125782	20220	277733	403515	1959453	3643805	507585	301899
1981-82	141613	15694	321283	462896	2311177	4513757	613626	369952
1982-83	158145	15372	381524	539669	2553800	5095503	634862	389952
1983-84	178415	14200	476453	654868	3046028	5758490	688721	409953
1984-85	184850	13050	503911	688761	3401371	6256952	788513	450110
1985-86	195829	13050	538895	734724	3897504	7142079	862493	492714
1986-87	200023	13050	564691	764614	4414769	7797300	979963	547916

स्रोत:- उ0 प्र0 कोआपरेटिव बैंक लि0 लखनऊ ।

SHARE CAPITAL
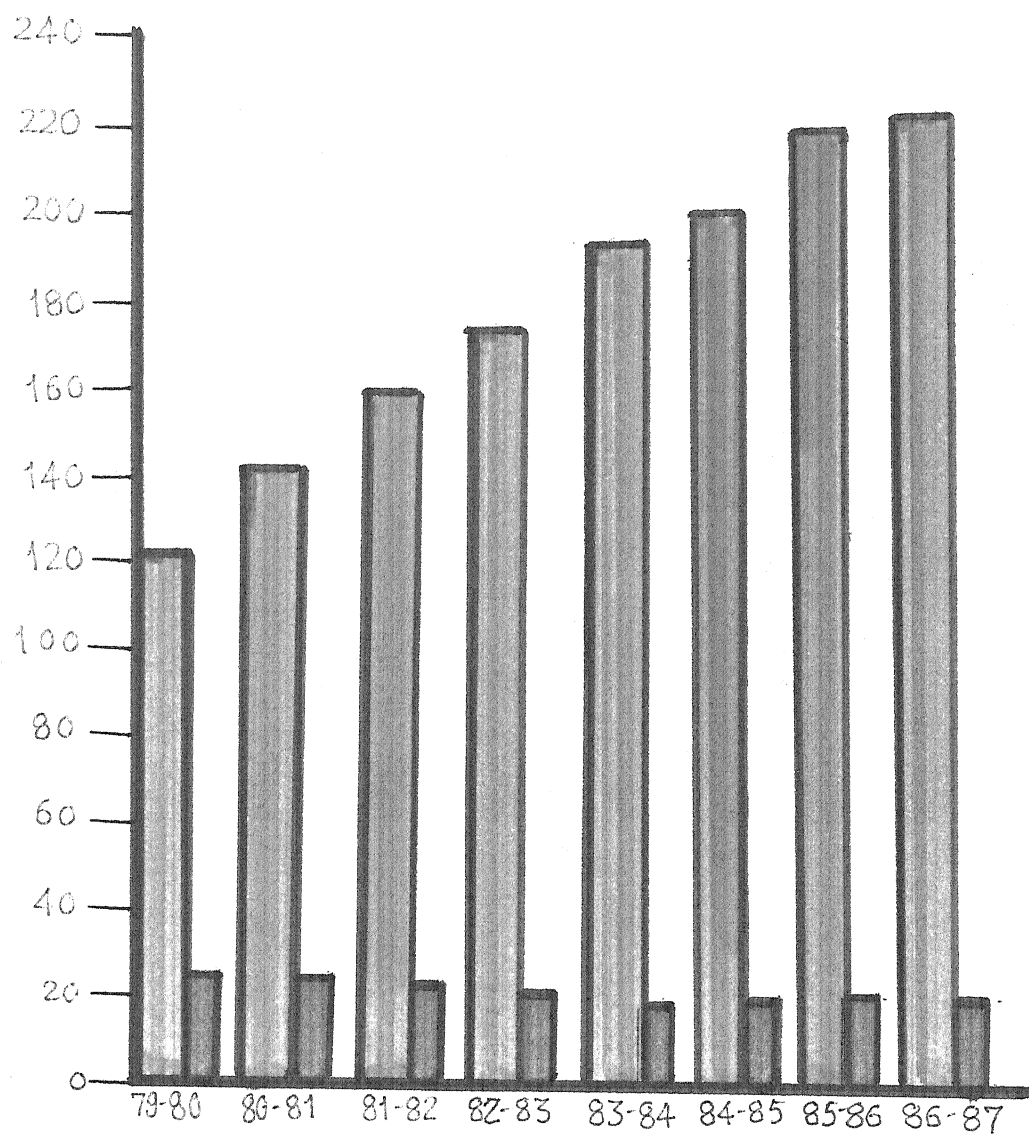
WORKING CAPITAL
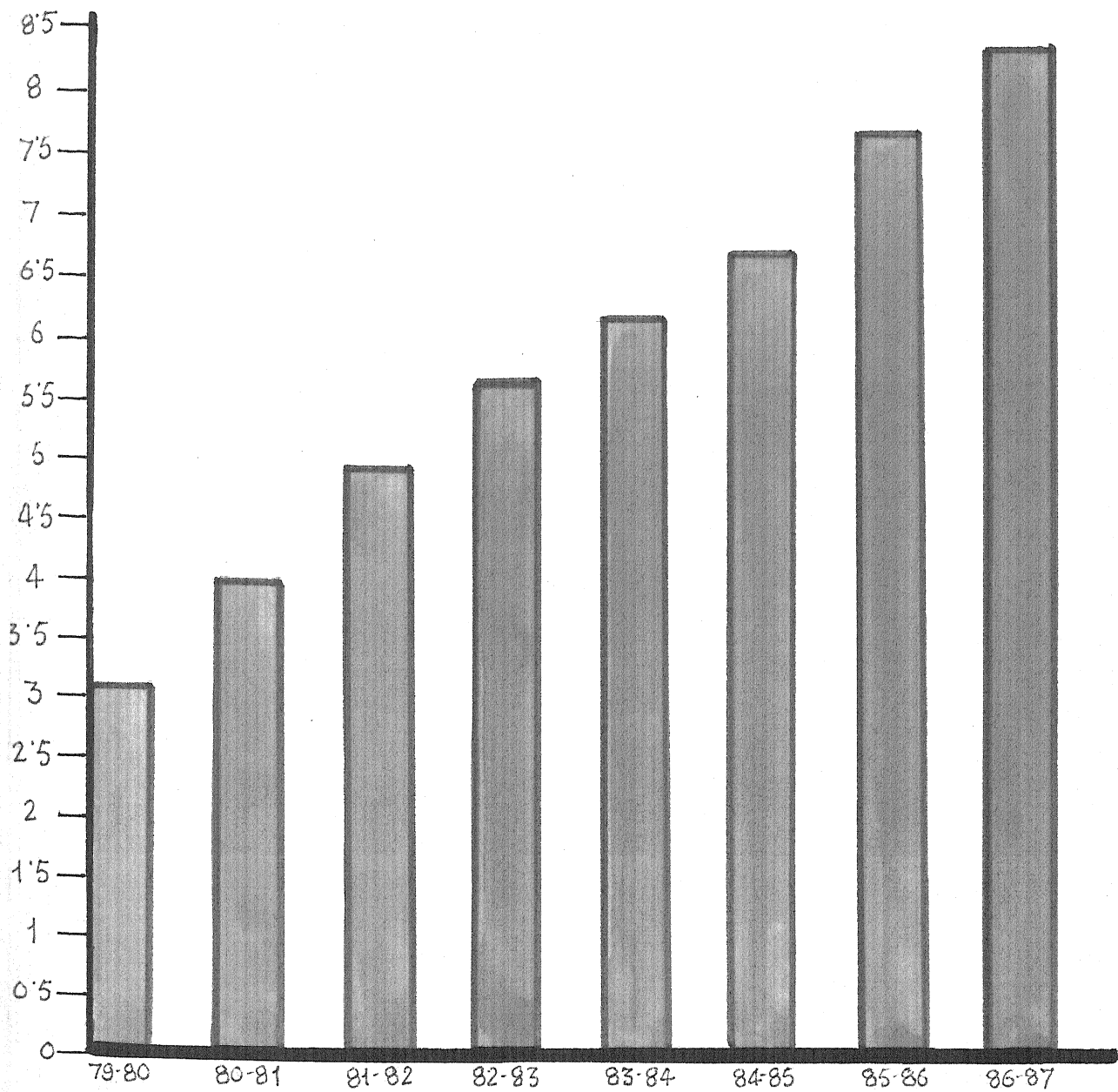
GROWTH OF DEPOSIT OF UPCB.
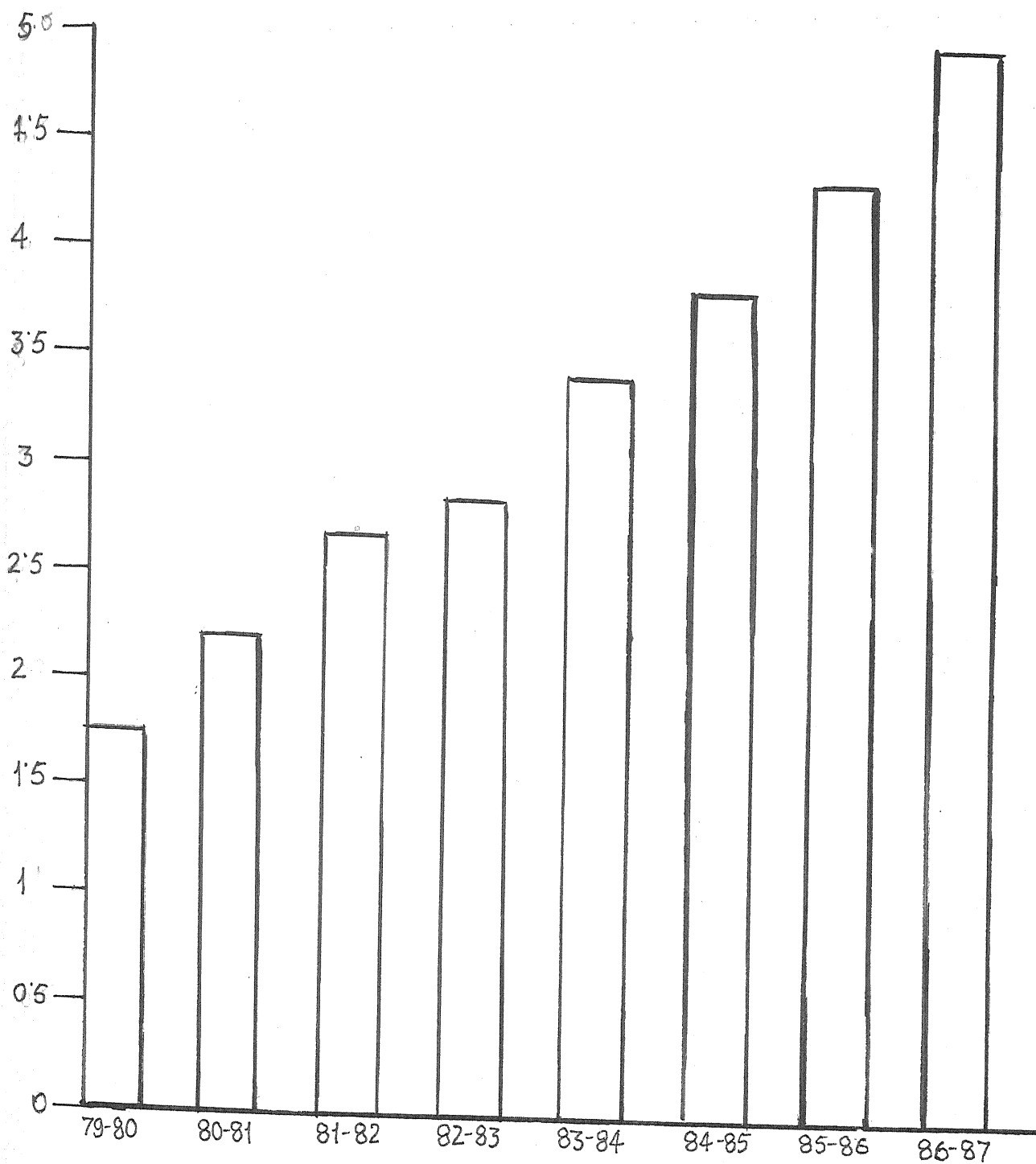
INCOME & EXPENDITURE
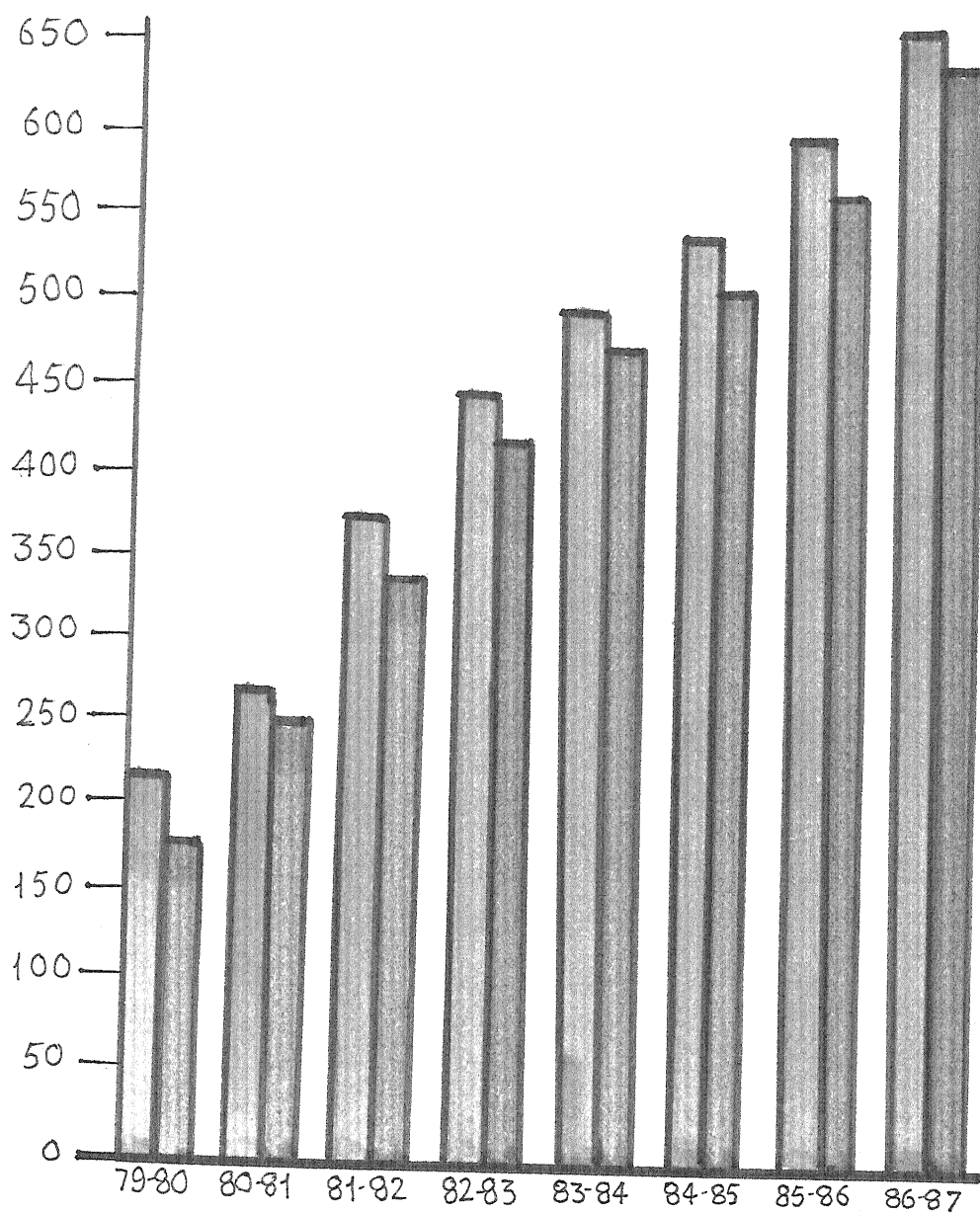
CAPITAL & LIABILITIES
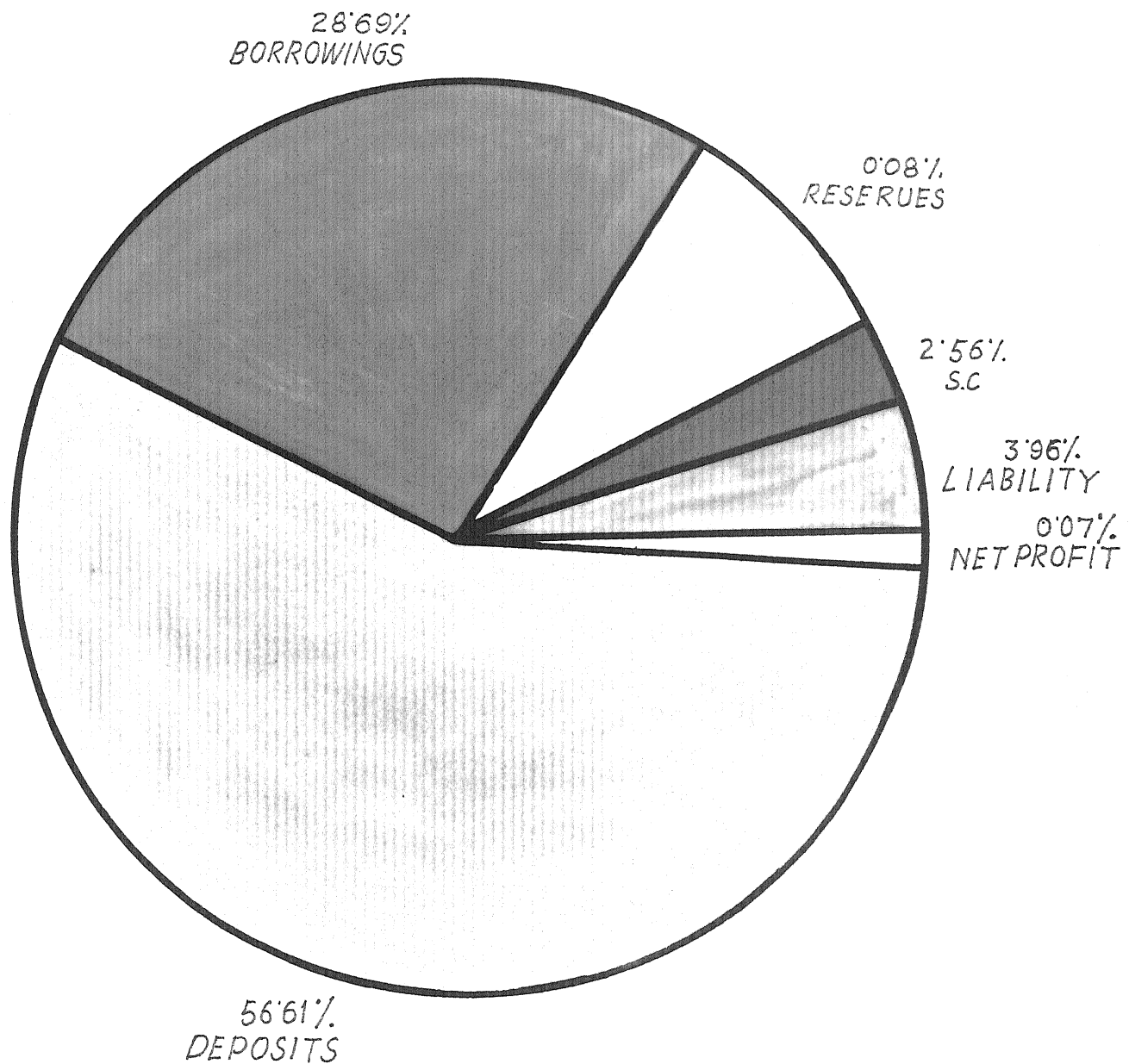
PROPERTY & ASSETS
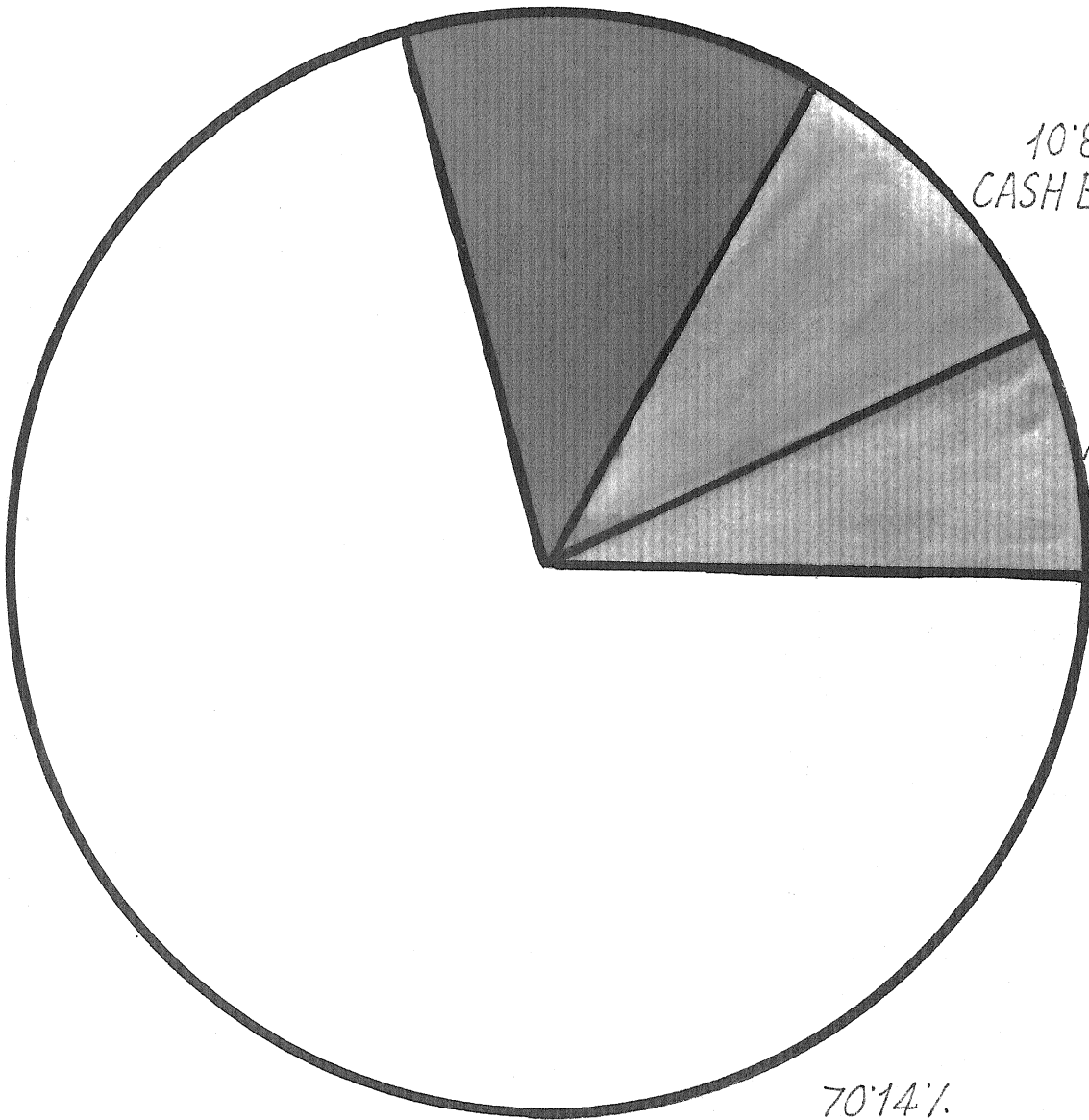
TREND OF PROFIT
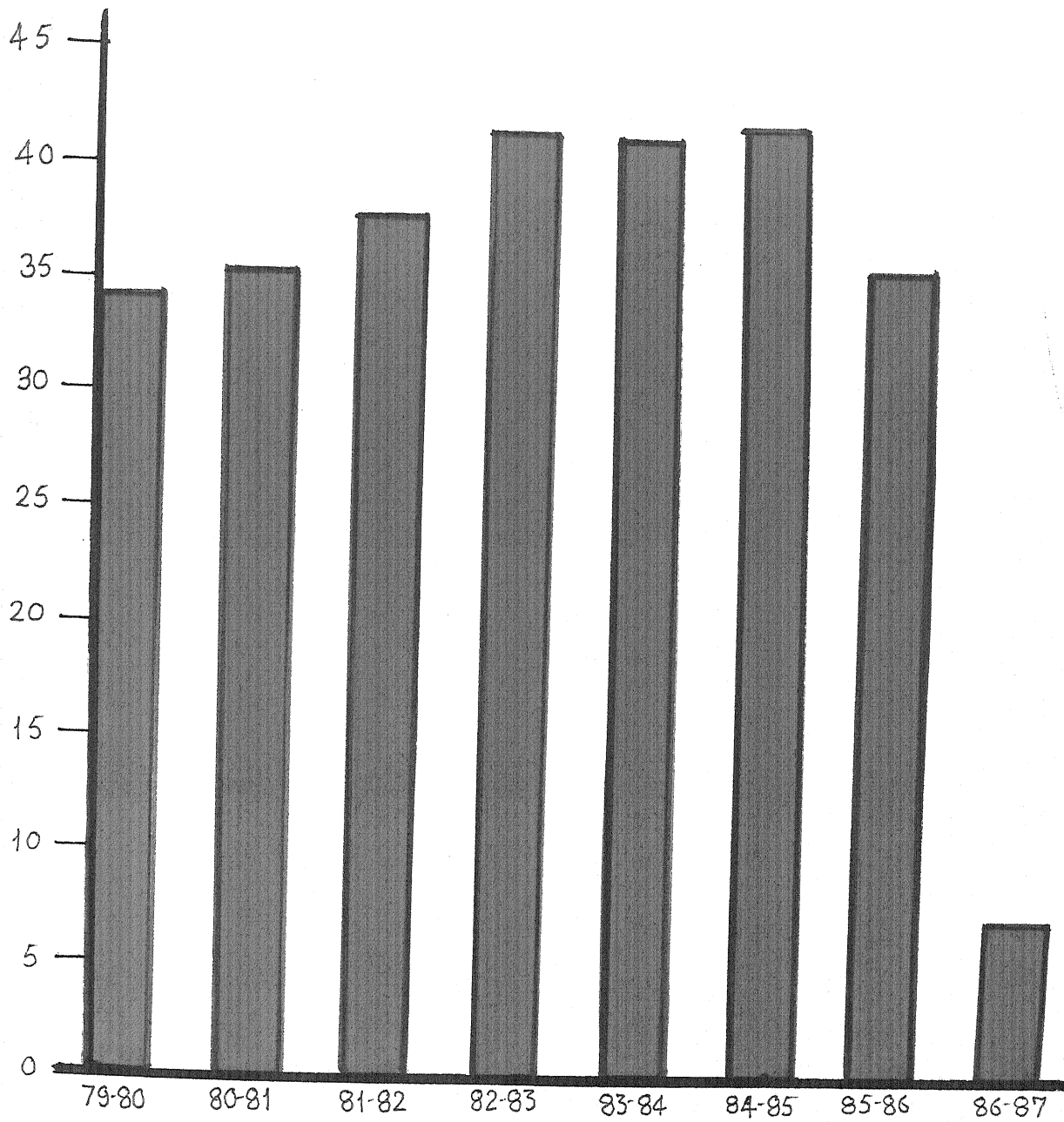
:: अध्याय चतुर्थ ::

सहकारी साख का दीर्घकालीन ढाँचा

खण्ड - ब

1. केन्द्रीय भूमि विकास बैंक

2. प्राथमिक भूमि विकास बैंक

भूमि विकास बैंक

कृषि के लिए दीर्घकालीन साख प्रदान करने में भूमि विकास बैंकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। कृषि के लिए दीर्घकालीन साख की आवश्यकता 19वीं शताब्दी के अन्त में महसूस की गई, जब सरकार ने अपनी निधियों से उत्पादकों की दीर्घकालीन साख आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए अपनी स्वयं की प्रणाली अपनाई और उसका कार्यान्वयन भूमि सुधार ऋण अधिनियम 1883 तथा कृषक ऋण अधिनियम 1884 के माध्यम से किया, तथापित पूर्णकालीन ऋणों के भुगतान की व्यवस्था की अनुपस्थिति में लोगों में वित्तीय सहायता के लिए राजकीय एजेन्सियों से लेन-देन के प्रति अभिरूचि रही तथा कृषि वित्त प्रदान करने की दिशा में राजस्व विभाग अनुपयुक्त रहा एवं बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक इसमें कोई महत्वपूर्ण प्रगति नहीं हुई। देश में सन् 1904 से सहकारिता आन्दोलन के आरम्भ होने के बाद से सहकारी साख समितियों तथा जिला केन्द्रीय बैंकों को जो सामान्यतया अल्प तथा मध्यकालीन ऋणों को देते थे, एक निश्चित सीमा तथा दीर्घकालीन ऋणों को देने की अनुमति प्राप्त हुई परन्तु शीघ्र ही यह महसूस किया गया कि इस प्रकार के कार्य के लिए प्राथमिक सहकारी समितियाँ पूर्णतया अनुपयुक्त हैं। प्रशासक तथा अंशधारकों को इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा कि दीर्घकालीन साख प्रदान करने के लिए एक अलग से संस्था की आवश्यकता है। अतएव भूमि बन्धक बैंक की स्थापना केलिए प्रयास किये गये। परिणामस्वरूप सन् 1920 में सर्वप्रथम प्रयास पंजाब के झाग नामक स्थान पर भूमि बन्धक बैंक की स्थापना की गई। तथा सन् 1925 में दो बैंक मद्रास में व 1929 में तीन बैंक बम्बई में स्थापित किये गये। शनैः-शनैः यह आन्दोलन देश के अन्य भागों में शुरू किया गया।

भारत में सन् 1926 में सहकारी समितियों के निबन्धकों के अधिवेशन में भूमि बन्धक बैंकों के व्यापार के क्षेत्र तथा पधतियों के विकास पर विचार

किया गया, जिसमें यह संस्तुति की गई कि ऐसे बैंक सहकारी समिति अधिनियम के अन्तर्गत गठित हो। इस ओर शाही कृषि आयोग 1928 तथा केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति का भी ध्यान आकर्षित हुआ।

इन समितियों ने भारत में आन्दोलन के स्वस्थ्य विकास के लिए महत्वपूर्ण संस्तुतियाँ दी, जिनमें प्रमुख निम्न हैं:-

§1§ इन बैंकों का संचालन क्षेत्र इतना बड़ा भी न हो, जिसे सम्भाला न जा सके और न इतना छोटा हो, जो आर्थिक दृष्टि से अलाभप्रद हो।

§2§ पूर्णकालीन लिये गये ऋणों के लिए ऋणों को अग्रिम देना, भूमि सुधार के लिए ऋण देना तथा विशेष मामलों में भूमि क्रय हेतु ऋण प्रदान करना ।

§3§ कोई भी ऐसा ऋण स्वीकृत न करना, जिससे ऋणों को आर्थिक दृष्टि से लाभ न हो।

§4§ ऋण की अधिकतम सीमा 20 वर्ष निश्चित करना ।

§5§ ऋण पत्रों बॉण्डों को केन्द्रीय वित्त संस्था द्वारा जारी करना और इन बॉण्डों को न्यासधारी सुरक्षा के रूप में मान्यता देना ।

§6§ राज्य सरकार द्वारा भूमि बन्धक बैंकों को उनके कार्य करने के लिए प्रारम्भिक स्तरों पर अनुदान स्वीकृत करना ।

§7§ स्टाम्प शुल्क, रजिस्ट्रेशन शुल्क इत्यादि के मामलों में भूमि बन्धक बैंकों को छूट देना ।

§8§ ऋण पत्रों द्वारा अलग से दीर्घकालीन स्रोतों में वृद्धि के लिए प्रत्येक राज्य में एक केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक की स्थापना करना ।

भूमि बन्धक बैंक के क्षेत्र में वास्तविक शुरूआत सन् 1929 में मद्रास में हुई, जिसका लक्ष्य ऋण पत्रों को जारी करना तथा प्राथमिक बैंकों की कार्य प्रणाली से सामंजस्य स्थापित करना था। इसके पश्चात बम्बई, उड़ीसा, मैसूर, कोचीन में इन बैंकों की स्थापना की गई। देश के अन्य भागों में अनेक वर्षों तक केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक अस्तित्व में नहीं आये। यद्यपि दीर्घकालीन ऋण देने के लिए प्राथमिक भूमि बन्धक बैंक थे। इन बैंकों के ऋण संचालन में चौथे दशक तक जबकि देश में सामान्यतया नैराश्य व्याप्त था, उत्पादकों की भूमि को महाजनों के चंगुल से बचाने की आवश्यकता महसूस की गई थी, बड़े पैमाने पर ऋण दिये। इसके पश्चात द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ होनेके फलस्वरूप उत्पादकों की कृषि उत्पादन के मूल्यों में वृद्धि के कारण उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ और अधिकांश कृषक बिना ऋण लिये अपने पुराने ऋण चुकाने में समर्थ हो गये। इन बैंकों के व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ने का कारण देश के अनेक भागों में ऋण अधिनियम का पारित होना था।

भूमि बन्धक बैंकों की कार्य प्रणाली पर पुनर्विचार करते समय अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने इन बैंकों की भूमिका को महत्वपूर्ण माना, परन्तु स्रोतों में वृद्धि करने, ऋण स्वीकृत में देरी, विविध एजेन्सियों में सामंजस्य का अभाव तथा बड़े किसानों की पूर्ति करना आदि मामलों में इन बैंकों की कार्यप्रणाली की आलोचना की। समिति ने भूमि बन्धक बैंकों की भावी कार्यप्रणाली में सुधार हेतु अनेक सुझाव दिये, जिनमें प्रमुख निम्न हैं:-

(1) प्रत्येक राज्य में एक केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक होना चाहिए।

(2) ऋण के उद्देश्यानुसार केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंकों द्वारा विविध कालीन ऋण पत्रों को जारी करना ।

(3) ग्रामीण बचत को प्रोत्साहन देने के लिए इनको ऋण पत्र जारी करना चाहिए।

(4) भूमि बन्धक बैंकों के ऋण पत्रों के लिए एक प्रभावशाली बाजार बनाने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक एवं भारतीय स्टेट बैंक को सकारात्मक कदम उठाना चाहिए।

(5) इन बैंकों की अंश पूँजी में राज्य सरकार को योगदान देना चाहिए।

(6) भूमि बन्धक बैंकों को उत्पादन के लिए कार्य संचालन के मामले में स्वयं निर्भर होना चाहिए तथा सुधार एवं अन्य उत्पादक लक्ष्यों के लिए ऋण पत्रों को वरीयता देना चाहिए।

(7) सरकार को इन बैंकों को अधिविकर्ष की सुविधा देना चाहिए तथा रजिस्ट्रेशन शुल्क, स्टाम्प शुल्क आदि से मुक्त रखना चाहिए।

दीर्घकालीन सहकारी कृषि साख का संगठात्मक ढाँचा जैसाकि गत वर्षों में सामने आया है, समस्त भारत में एक जैसा नहीं है। जबकि कुछ राज्यों में भूमि विकास बैंक एक संघात्मक रूप में राज्य स्तरीय केन्द्रीय भूमि विकास बैंक तथा निम्न अथवा आधारभूत स्तर पर प्राथमिक भूमि विकास बैंक के रूप में संगठित हुए हैं। कुछ अन्य राज्यों में समान स्तर पर राज्य में सर्वोच्च केन्द्रीय भूमि विकास बैंक के रूप में अस्तित्व में आये हैं, जो अपनी शाखाओं एवं उप शाखाओं के माध्यम से निचले स्तर पर कार्य करते हैं।

संगठनात्मक ढाँचा :-

सम्पूर्ण देश में दीर्घकालीन कृषि वित्त को 19 केन्द्रीय भूमि विकास बैंकों के द्वारा किया जाता है। 12 प्रान्तों में संघात्मक प्रकार का ढाँचा है तथा शेष प्रान्तों में एकात्मक ढंग के अन्तर्गत काम कर रहे हैं। 6 छोटे प्रान्तों में तथा केन्द्रशासित स्थलों में भूमि विकास बैंकों की स्वतन्त्र पहिचान नहीं है। इन प्रान्तों और केन्द्रशासित प्रदेशों में राजकीय सहकारी बैंक कृषकों को दीर्घकालीन

साख देने की दायित्व लिए है और यह कार्य एक अलग भूमि विकास बैंकिंग उपभाग के माध्यम से होता है। यद्यपि इसके कुछ अन्य कार्य भी हैं।

एकात्मक पधति के अन्तर्गत केन्द्रीय भूमि विकास बैंक अपनी शाखाओं और अभिकरणों के माध्यम से सीधे वैयक्तिक स्तर पर ऋण अग्रसारित करते हैं। एक संघात्मक ढाँचे में सर्वोच्च स्तर पर केन्द्रीय भूमि विकास एवं जिला अथवा तहसील स्तर पर प्राथमिक भूमि विकास बैंक हैं, जो अन्तोगत्वा राज्य स्तर पर सर्वोच्च संगठन के रूप में संघात्मक हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संघात्मक ढाँचा उन राज्यों में अस्तित्व में है, जहाँ दीर्घकालीन साख अपनी गतिशीलता कुछ दशक पूर्व से जड़ें जमाये हुए था। परन्तु कुछ अन्य राज्यों में जहाँ इसका अभिनव प्रादुर्भाव हुआ है {गुजरात को छोड़कर} केन्द्रीय भूमि विकास बैंक अपनी शाखाओं के साथ आरम्भ हुए हैं। वर्तमान में 12 प्रान्तों में संघात्मक पधति पर कार्य पधति है {आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, असम, हरियाणा, केरल, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मैसूर, पंजाब, राजस्थान तथा पश्चिमी बंगाल} चार प्रान्तों में {बिहार, गुजरात, जम्मू तथा कश्मीर} एकात्मक ढाँचा है। पान्डिचेरी तथा त्रिपुरा इन दो केन्द्रशासित क्षेत्रों में दीर्घकालीन साख ढाँचा एकात्मक है। जिला स्तर के नीचे दीर्घकालीन ढाँचे का प्रसार एक समान सभी प्रान्तों में विकसित नहीं हुआ है। हिमांचल प्रदेश में भूमि विकास बैंकों का ढाँचा एकात्मक/संघात्मक है।

भारत में रॉयल कमीशन ऑन एग्रीकल्चर तथा अखिल भारतीय साख सर्वेक्षण समिति ने भूमि विकास बैंकों के लिए दो प्रकार के संघात्मक ढाँचे को उचित माना है। अविकसित प्रान्तों में उन्होंने प्रथमतः केन्द्रीय भूमि विकास के गठन को उचित माना, जिसको अपनी शाखाओं और अभिकरणों के माध्यम से

कार्य करना चाहिए परन्तु अन्ततोगत्वा इन शाखाओं को प्राथमिक भूमि विकास बैंकों में रूपान्तरित अवश्य हो जाना चाहिए।

सन् 1939 में निबन्धक अधिवेशन में भूमि विकास बैंकों के त्रिपक्षीय ढाँचे पर विचार किया गया था। मद्रास के निबन्धक ने कहा कि एक प्राथमिक भूमि विकास बैंक के सफल संचालन के लिए एक तहसील के बराबर का लगभग क्षेत्र होना चाहिए। अधिवेशन में यह निश्चय कर लिया गया कि प्राथमिक भूमि विकास का क्षेत्र एक जनपद से बड़ा नहीं होना चाहिए। इस प्रकार हम देखते हैं कि संघात्मक ढाँचा सर्वथा उपयुक्त है तथा भारत के अधिकाधिक प्रान्तों में इसी प्रकार का ढाँचा गठित है।

केन्द्रीय भूमि विकास बैंक :-

उद्देश्य तथा कार्य :-

केन्द्रीय भूमि विकास बैंक का आधारभूत उद्देश्य दीर्घकालीन निधियों को जुटाना है, जिससे सम्बद्ध प्राथमिक भूमि विकास बैंक के वित्त की पूर्ति की जा सके अथवा अपनी शाखाओं के माध्यम से वित्त की पूर्ति की जा सके। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु ये बैंक निम्नलिखित कार्य करते हैं:-

(1) इन बैंकों के द्वारा अपनी सम्पदा की जमानत पर ऋण पत्र जारी करना ।

(2) ऋण लेने वाले सदस्यों के विवाद रहित सम्पदा जिस पर उसका पूर्ण अधिकार हो, को बन्धक रखकर अपनी शाखाओं के माध्यम से अथवा प्राथमिक भूमि विकास बैंकों अथवा वैयक्तिक स्तर पर ऋण स्वीकार करना ।

§3§ प्राथमिक भूमि विकास बैंकों की देखरेख, निरीक्षण तथा निर्देशन का कार्य करना तथा उनकी बन्धक भूमि को प्रमाणित करना ।

§4§ ग्रामीण बचत को गतिशील बनाना तथा ऋण पत्रों का निर्गम करके पूँजी वृद्धि को प्रोत्साहित करना ।

§5§ भारतीय रिजर्व बैंक, सरकार तथा दीर्घकालीन बैंकिंग के मध्य कड़ी बनने का कार्य करना ।

§6§ सभी कार्यों के सफल संचालन हेतु समुचित कर्मचारियों की नियुक्ति करना ।

इस प्रकार केन्द्रीय भूमि विकास बैंक, प्राथमिक भूमि विकास बैंक को केवल कर्जा देने के लिए न केवल दीर्घकालीन निधियों की व्यवस्था करते हैं बल्कि प्राथमिक भूमि विकास बैंकों का निरीक्षण, निर्देशन एवं देखभाल भी करते हैं। इसके अतिरिक्त सर्वोच्च बन्धक बैंक दीर्घकालीन बैंकिंग की नीतियों तथा कार्यक्रमों में उनके साथ समन्वय स्थापित करते हैं, जो सहकारी बैंकिंग के उन अंगों से जुड़े हुए हैं, जो अल्पकालीन तथा मध्यकालीन साख सुलझाने का कार्य करते हैं। सरकार तथा भारतीय रिजर्व बैंक के साथ सम्पूर्ण पधति के बीच में ये एक आवश्यक कड़ी का कार्य करते हैं। छोटे तथा मध्यम कृषकों को ये बैंक महाजन के चंगुल से बचाते हैं। एक सर्वोच्च संगठन के रूप में ये एक ऐसी धुरी हैं, जिसके चारों ओर दीर्घकालीन साख के समस्त अंग घूमते हैं। किसी राज्य के प्राथमिक भूमि विकास बैंक के लिए ये बैंक एक मित्र, विचारक तथा निर्देशक का कार्य करते हैं। ये बैंक स्वभावतः पुराने ऋणों से मुक्ति दिलाने के लिए निधियों को स्वीकृत करते हैं। भूमि में सुधार, विकास, कृषि योग्य बनाना, कृषि सम्बन्धी यंत्र खरीदना, नलकूप लगाने तथा कुँओं की मरम्मत आदि के लिए ऋण स्वीकृत करते हैं।

वित्तीय स्रोत :-

केन्द्रीय भूमि विकास बैंक निम्नलिखित स्रोतों से धन एकत्र करते हैं:-

§1§ अंश पूँजी ।

§2§ अपनी सम्पदा की जमानत पर ऋण पत्रों का निर्गम करके तथा बन्धक बॉण्डों से जिनको प्राथमिक भूमि विकास बैंक हस्तान्तरित करते हैं।

§3§ राज्य सरकार की प्रतिभूति पर भारतीय स्टेट बैंक से प्राप्त ऋण ।

§4§ अनुदान तथा राजकीय सहायता अनुदान ।

§5§ प्रवेश शुल्क तथा अन्य शुल्क ।

§6§ जमा धनराशि ।

§7§ अन्य निधियाँ ।

केन्द्रीय भूमि विकास बैंक सामान्यतया ग्रामीण तथा विशेष विकास के ऋण पत्रों का निर्गम करके निधियों को एकत्रित करते हैं। साधारण ऋण पत्र सामान्य जन संस्थाओं एवं वैयक्तिक स्तर के लिए जारी किये जाते हैं। इनकी सुरक्षा की प्रतिभूति राज्य सरकारें देती हैं। 1970-71 में 140 करोड़ रूपये के तथा 1973-74 में 74.97 करोड़ रूपये के साधारण ऋण पत्र निर्गत किये थे। ग्रामीण ऋण पत्र भूमि को बन्धक 6 या 7 साल की अवधि के लिए उत्पादक उद्देश्यों के लिए किसानों को ऋण देने हेतु धन जुटाने के हेतु निर्गत किये जाते हैं। विशेष ऋण पत्र कृषि विकास तथा भूमि सुधार कार्यक्रम के लिए किसानों को वित्त जुटाने के लिए निर्गत किये जाते हैं। 1973-74 में

83.30 करोड़ के विशेष ऋण पत्र निर्गत किये गये। इन ऋण पत्रों में भारतीय जीवन बीमा निगम, भारतीय स्टेट बैंक, व्यापारिक बैंक पूँजी निवेश करने वाले प्रमुख अभिकरण हैं।

ऋण स्वीकृत नीति :-

केन्द्रीय भूमि विकास बैंक 10 वर्ष से लेकर 20 वर्ष तक की अवधि के लिए अपने 70 प्रतिशत ऋण उत्पादक लक्ष्य के लिए देती हैं। कुछ राज्यों में यह अवधि 6 वर्ष तथा कुछ राज्यों में 12 तथा कुछ राज्यों में 15 वर्ष तक की होती है। अग्रसारित ऋण की अधिकतम सीमा हर सदस्य को अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग है, जो दस हजार रूपये से लेकर पच्चीस हजार तक है। किसान से ब्याज की दर 7 प्रतिशत से 13 प्रतिशत वार्षिक है, जो सामान्य ऋण की ब्याज दर से 1 प्रतिशत अधिक है। विविध राज्यों में वसूली की जाने वाली ब्याज दर भी भिन्न-भिन्न है।

उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक की प्रगति :-

उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक लिमिटेड ने "भूमि विकास बैंकिंग के इतिहास में" अनेक कीर्तिमान स्थापित किये हैं। इसने न केवल ऋण वितरण और ऋण वसूली के क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलतायें प्राप्त की हैं बल्कि इसने अन्य अनेक क्षेत्र में जैसे संगठनात्मक एवं प्रशासनिक ढाँचे में आवश्यक सुधार करके कार्यशील पूँजी, कुल निजी पूँजी तथा कुल अंश पूँजी में वृद्धि करके अपनी आर्थिक और प्रशासनिक सुदृढ़ता में काफी वृद्धि की है, जोकि इसके आर्थिक प्रगति के पथ पर बढ़ते हुए पद चिन्हों को भलीभांति प्रतीक्षित करते हैं।

उत्तर प्रदेश का यह बैंक भारत में अपनी बहुमुखी प्रगति के कारण

वर्ष 1976-77 में राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित किया गया था। अपने उत्कृष्ट कार्यों के लिए नई दिल्ली में हुए "भारत में भूमि विकास बैंकिंग की आदर्श शताब्दी समारोह" के शुभ अवसर पर इस बैंक को 16.08.1977 को सम्पूर्ण भारत में प्रथम राष्ट्रीय पुरूस्कार (बैजन्ती) भारत के प्रधानमंत्री श्री मोरार जी देसाई द्वारा प्रदान किया गया था, जिसने उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक की गरिमा में चार चाँद लगा दिये थे।

किन्तु कुछ वर्षों से भूमि विकास बैंक को असफलताओं का भी सामना करना पड़ा है, जो बैंक ऋण वितरण और ऋण वसूली के क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त किया करता था। उसमें भी गत वर्षों में असफल रहा है तथापित बैंकों के कार्यों का मूल्यांकन इस असफलता से कम नहीं आंका जाना चाहिए।

इस बैंक की प्रतिवर्ष हुई सदस्यों की संख्या, विभिन्न प्रकार की पूँजी और शुद्ध लाभ की राशि, जिनसे सम्बन्धित आंकड़े, तालिका सं0 1 में प्रस्तुत हैं, इस बात का प्रमाण है कि बैंक गत वर्षों में आर्थिक दृष्टिकोण से काफी सबल बना है और इसके कार्य क्षेत्र में काफी विस्तार हुआ है।

तालिका सं0 1

बैंक की सदस्यता विभिन्न प्रकार की पूँजी, शुद्ध लाभ

सहकारी वर्ष	सदस्यता संख्या	कुल अंशपूँजी	कुल निजी पूँजी	कार्यशील पूँजी	शुद्ध लाभ
1	2	3	4	5	6
1960-61	604	15.34	16.13	16.03	0.22
62	2708	16.52	17.43	17.43	0.91
63	7587	22.56	24.28	68.40	1.27
64	11690	30.75	33.72	146.92	2.97

1	2	3	4	5	6
1964-65	21015	42.51	47.56	286.69	3.11
66	66248	88.41	95.10	915.34	10.06
67	99110	161.60	175.07	1745.29	16.07
68	123544	227.04	240.62	2983.80	28.54
69	210759	337.32	373.57	5125.03	59.43
70	270817	429.87	468.51	5828.05	78.63
71	346154	609.94	680.48	9321.25	100.50
72	436548	805.92	909.04	12332.44	130.19
73	496647	974.74	1083.41	14210.39	228.93
74	594892	1107.07	1356.00	17905.15	278.54
75	647907	1270.78	1685.70	20753.84	341.53
76	706902	1491.03	1849.69	22685.45	413.77
77	777766	1814.54	2746.72	26075.11	515.62
78	880248	2150.66	3405.12	29332.73	514.35
79	960000	2314.28	3573.72	32433.07	367.71
80	1070730	2619.41	4260.90	34444.75	364.10
81	1137185	2821.88	4466.00	36185.00	434.00
82	1197676	3007.00	4955.00	37918.00	454.85
83	1272947	2915.67	4865.25	40127.84	408.35
84	1350941	3245.71	5221.87	40744.53	528.04
85	1440831	3257.57	6282.76	43193.18	541.85
86	1529960	3525.71	7620.69	44103.37	565.11
87	1636490	3789.82	8178.70	47917.00	565.35
88	1772619	4044.00	8708.00	51671.00	570.00

स्रोतः- उ0प्र0 राज्य सहकारी भूमि विकास लिमिटेड, लखनऊ

बैंक के प्रारम्भिक वर्ष 1960-61 में इसके कुल सदस्यों की संख्या केवल 604 थी, जोकि अगले वर्ष में बढ़कर 2706 हो गई अर्थात् लगभग एक ही वर्ष

सदस्य संख्या

18
17
16
15
14
13
12
11
10
9
8
7
6
5
4
3
2
1
0
604
346154
1137185
1529960
1636490
1772619
1960-61
1960-71
1980-81
1985-86
1986-87
1987-88

कुल अंश पूंजी
(धनराशि करोड़ रुपयों में)
0.15
6.10
28.22
35.21
37.89
40.44
1960-61
1970-71
1980-81
1985-86
1986-87
1987-88
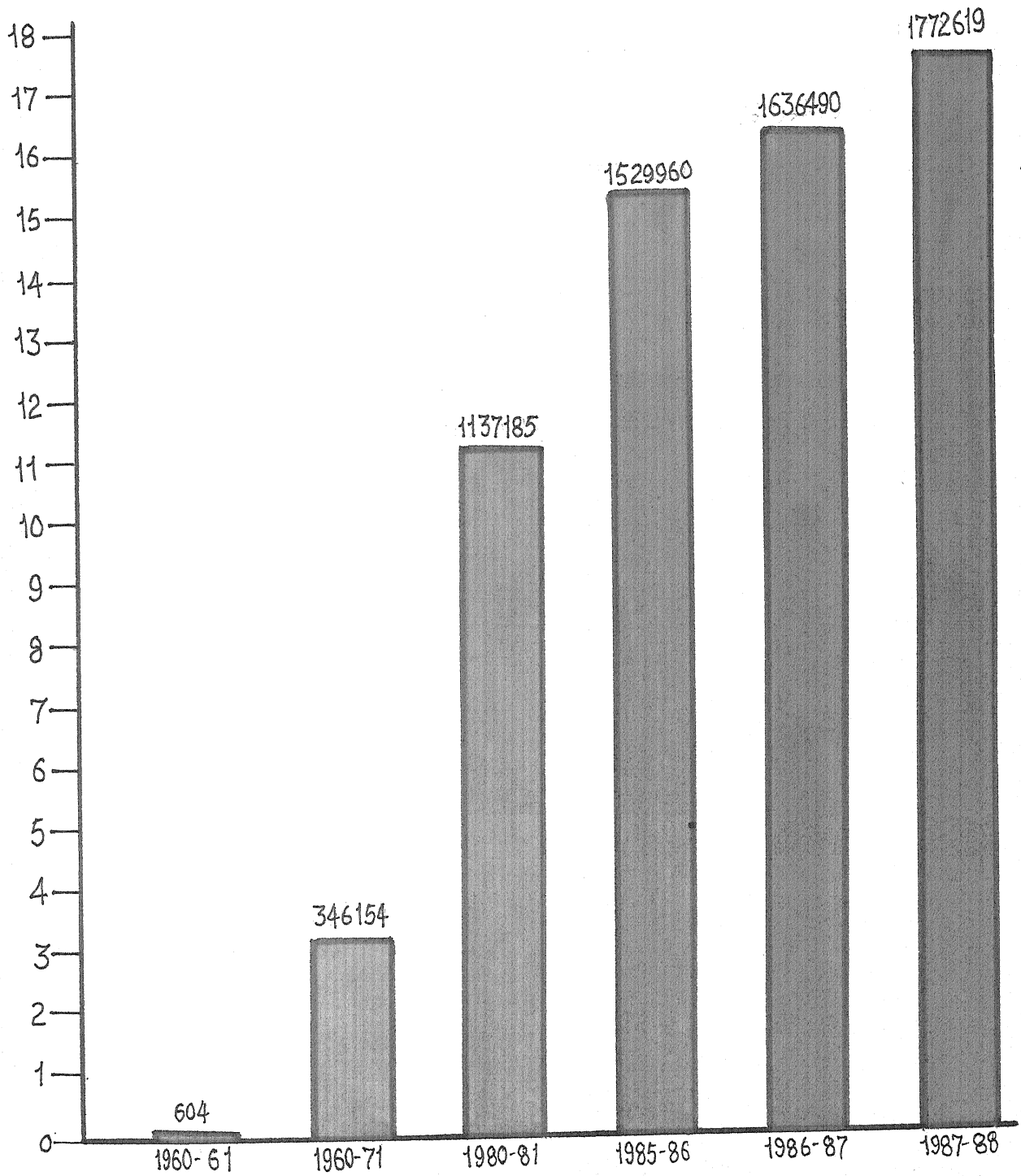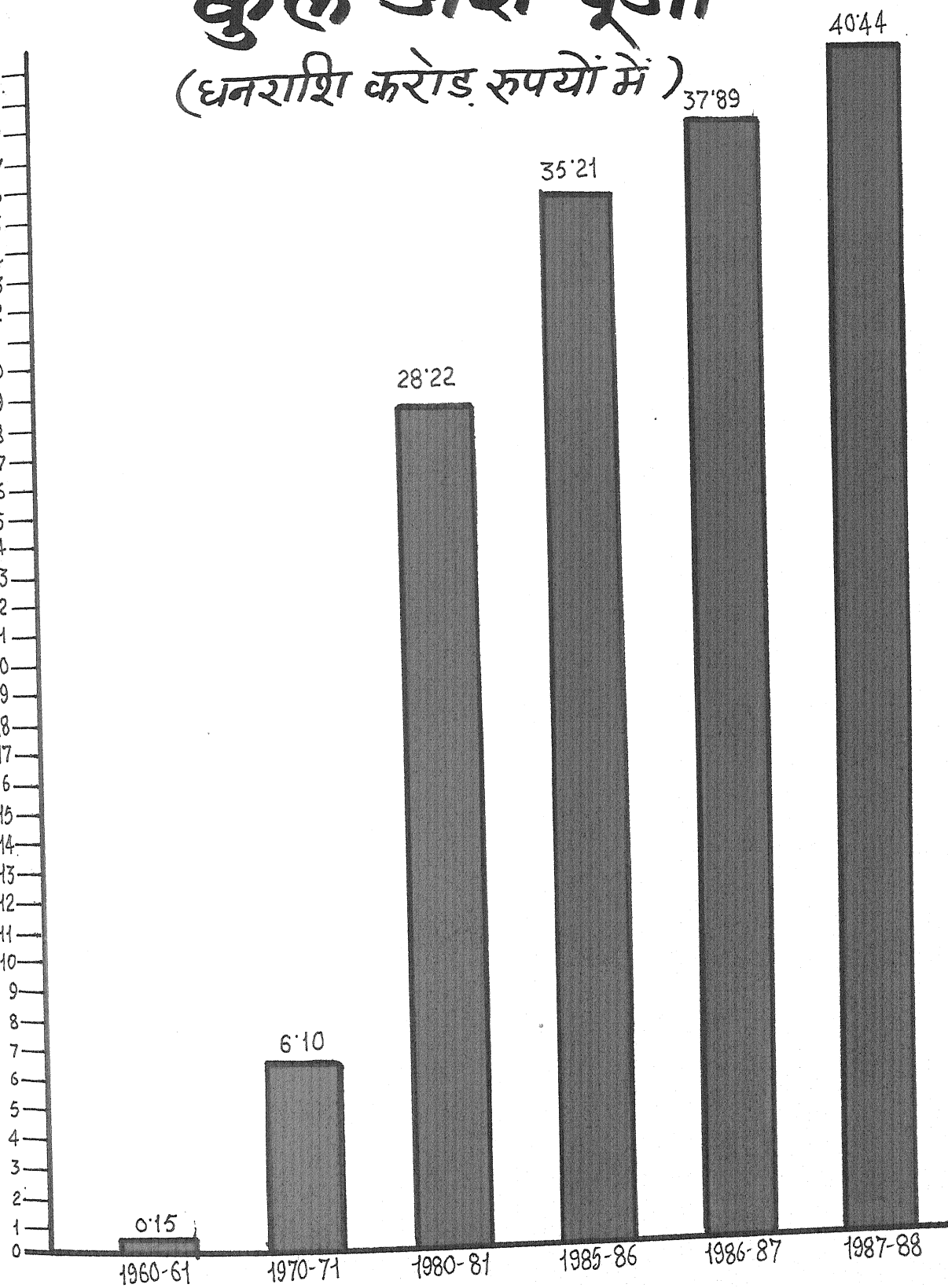
कार्यशील पूंजी
कुल निजी पूंजी
(धनराशि करोड़ रुपयों में)
0.16
0.16
68.28
6.80
361.62
44.67
441.03
76.27
479.17
81.79
516.71
87.08
1960-61
1970-71
1980-81
1985-86
1986-87
1987-88
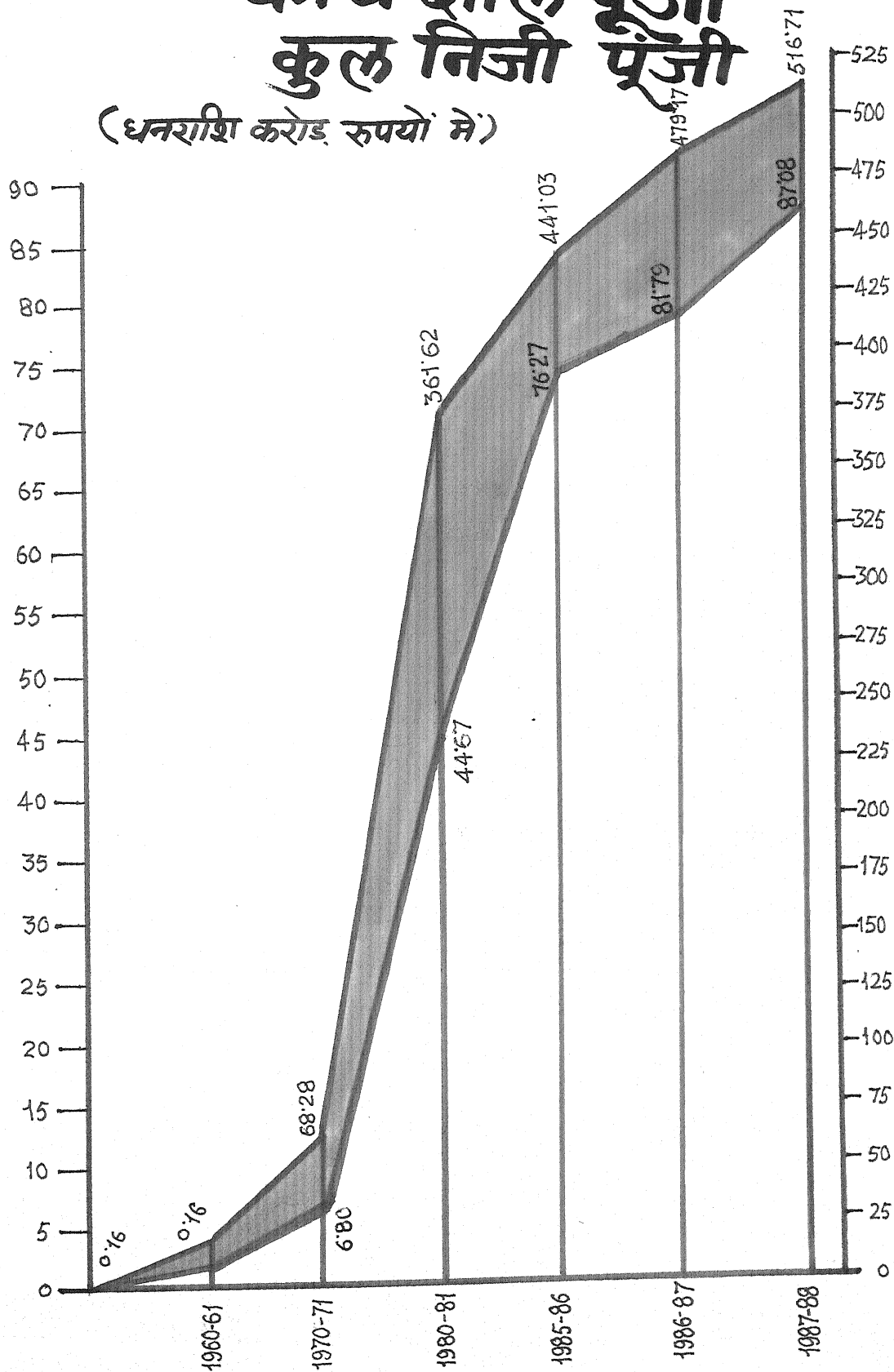
शुद्ध लाभ

(धनराशि लाख रुपयों में)

में साढ़े चार गुनी वृद्धि सदस्यों की संख्या में हुई। वर्ष 1970-71 में इस बैंक के सदस्यों की संख्या 346154 थी, जोकि दस वर्ष में अर्थात् 1980-81 में बढ़कर 1137185 हो गई और 1987-88 में बढ़कर 1772619 हो गई है। बढ़ती हुई सदस्यता इस बात का प्रतीक है कि बैंक के कार्यक्षेत्र में आशातीत वृद्धि हुई है और इससे हमारे प्रदेश के अत्यधिक कृषक लाभान्वित हुए हैं।

अंशपूँजी बैंक के सदस्यों द्वारा खरीदे गये अंश पत्र के माध्यम से निर्मित होती है। प्रत्येक सदस्य को अपने कुल स्वीकृत ऋण का 5 प्रतिशत अभ्यास अंश पूँजी के रूप में बैंक के पास जमा करना पड़ता है, जिस पर बैंक निर्धारित दर से लाभांश सदस्यों को वितरित करता है। इस प्रकार की पूँजी सदस्यों की संख्या पर निर्भर करती है। अन्य शब्दों में जितनी अधिक संख्या में सदस्यता में वृद्धि होगी उतनी ही अधिक मात्रा में इस प्रकार की पूँजी में वृद्धि होती है।

तालिका सं0 1 में दिये गये अंश पूँजी के आंकड़ों को देखने पर विदित होता है कि बैंक की इस प्रकार की पूँजी में अपनी स्थापना के वर्ष से लेकर 1981-82 तक लगातार वृद्धि हुई है, जोकि इस बैंक की बढ़ती हुई सदस्यता का परिणाम है किन्तु सहकारी वर्ष 1982-83 की अंश पूँजी में थोड़ी सी कमी आयी है, लेकिन इसका प्रभाव बैंकों की अर्थव्यवस्था पर कोई खास नहीं पड़ा। बैंक की कुल अंश पूँजी 1960-61 में 15.34 लाख रूपये थी, जोकि अगले दस वर्षों में बढ़कर अर्थात् 1970-71 में 609.94 लाख रूपये हो गई थी। 1980-81 में बैंक की अंशपूँजी 2821.88 लाख रूपये थी, जोकि 1987-88 में बढ़कर 4044.00 लाख रूपये हो गई।

बैंक अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए अनेक प्रकार के कोषों एवं फण्डों का निर्माण करता है। जैसे कि परिनियत आरक्षित निधि,

शाखाओं की संख्या

300
250
200
150
100
50
0
30
185
247
264
265
266
1960-61
1970-71
1980-81
1985-86
1986-87
1987-88

में साढ़े चार गुनी वृद्धि सदस्यों की संख्या में हुई। वर्ष 1970-71 में इस बैंक के सदस्यों की संख्या 346154 थी, जोकि दस वर्ष में अर्थात् 1980-81 में बढ़कर 1137185 हो गई और 1987-88 में बढ़कर 1772619 हो गई है। बढ़ती हुई सदस्यता इस बात का प्रतीक है कि बैंक के कार्यक्षेत्र में आशातीत वृद्धि हुई है और इससे हमारे प्रदेश के अत्यधिक कृषक लाभान्वित हुए हैं।

अंशपूँजी बैंक के सदस्यों द्वारा खरीदे गये अंश पत्र के माध्यम से निर्मित होती है। प्रत्येक सदस्य को अपने कुल स्वीकृत ऋण का 5 प्रतिशत अभ्यास अंश पूँजी के रूप में बैंक के पास जमा करना पड़ता है, जिस पर बैंक निर्धारित दर से लाभांश सदस्यों को वितरित करता है। इस प्रकार की पूँजी सदस्यों की संख्या पर निर्भर करती है। अन्य शब्दों में जितनी अधिक संख्या में सदस्यता में वृद्धि होगी उतनी ही अधिक मात्रा में इस प्रकार की पूँजी में वृद्धि होती है।

तालिका सं0 1 में दिये गये अंश पूँजी के आंकड़ों को देखने पर विदित होता है कि बैंक की इस प्रकार की पूँजी में अपनी स्थापना के वर्ष से लेकर 1981-82 तक लगातार वृद्धि हुई है, जोकि इस बैंक की बढ़ती हुई सदस्यता का परिणाम है किन्तु सहकारी वर्ष 1982-83 की अंश पूँजी में थोड़ी सी कमी आयी है, लेकिन इसका प्रभाव बैंकों की अर्थव्यवस्था पर कोई खास नहीं पड़ा। बैंक की कुल अंश पूँजी 1960-61 में 15.34 लाख रूपये थी, जोकि अगले दस वर्षों में बढ़कर अर्थात् 1970-71 में 609.94 लाख रूपये हो गई थी। 1980-81 में बैंक की अंशपूँजी 2821.88 लाख रूपये थी, जोकि 1987-88 में बढ़कर 4044.00 लाख रूपये हो गई।

बैंक अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए अनेक प्रकार के कोषों एवं फण्डों का निर्माण करता है। जैसे कि परिनियत आरक्षित निधि,

अशोध्य एवं संदग्धि ऋण निधि, भवन निधि, कृषि स्टेट फण्ड, विनियोग कोष रिस्क फण्ड इत्यादि। कुल अंशपूँजी में जब इस प्रकार के कोषों में जब इस प्रकार के कोषों और फण्डों की धनराशि को शामिल कर लिया जाता है, तो वह बैंक पूँजी का स्वरूप धारण कर लेते हैं। बैंक द्वारा इस प्रकार के कोषों का निर्माण और उसमें बढ़ती हुई धनराशि के फलस्वरूप बैंक की वित्तीय स्थिति को काफी मजबूत बनाने में सहायक होती है।

उक्त तालिका सं0 1 में दिये गये कुल निजी पूँजी से सम्बन्धित आँकड़ों का अध्ययन करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उसने अपनी इस प्रकार की पूँजी के निर्माण में सराहनीय कार्य किया है। बैंक की कुल निजी पूँजी वर्ष 1960-61 में 16.13 लाख रूपये थी, जोकि अगले बीस वर्षों में अर्थात् 1980-81 में बढ़कर 4466.00 लाख रूपये हो गई। वर्ष 1981-82 में बैंक की निजी पूँजी बढ़कर 4955.00 लाख रूपये हो गई थी किन्तु वर्ष 1982-83 में बैंक की इस पूँजी में कमी आयी है और बैंक की निजी पूँजी बढ़कर 5221.87 लाख रूपये हो गयी, जोकि सहकारी वर्ष 1985-86 में बढ़कर 7626.69 लाख रूपये तथा वर्ष 1986-87 में बढ़कर 8178.70 लाख रूपये हो गई। इस प्रकार सहकारी वर्ष 1987-88 में निजी पूँजी में .550 लाख रूपये की वृद्धि हुई, जो बैंक की प्रशंसनीय उपलब्धि है एवं 1987-88 में 8708.00 लाख रूपये होगई।

बैंक की कुल निजी पूँजी में जब उसके द्वारा बाहरी वित्तीय संस्थाओं से लिये गये ऋण को जोड़ दिया जाता है, तो उसके कुल योग को कार्यशील पूँजी कहते हैं। अन्य शब्दों में, कुल कार्यशील पूँजी अन्य फण्ड, बाहरी ऋण तथा अधिविकर्ष के कुल क्रमिक योग से होती है।

बैंक की कुल कार्यशील पूँजी में वृद्धि अन्य बातों के अलावा मुख्यतः

इस बात पर निर्भर करती है कि बैंक अन्य संस्थाओं से ऋण प्राप्त करने में कितना सक्षम सिद्ध होता है। जब बैंक को उधार ऋण कम प्राप्त होता है तब कार्यशील पूँजी की मात्रा स्वत: कम हो जाती है और जब उधार अधिक प्राप्त होता है, तब कार्यशील पूँजी की मात्रा अधिक हो जाती है।

तालिका सं0 । में दिये गये कार्यशील पूँजी से सम्बन्धित आंकड़ों का अवलोकन करने पर हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बैंक के प्रारम्भिक वर्षों में इस प्रकार की पूँजी की मात्रा में कमी थी, जो उसकी आर्थिक स्थिति को दुर्बल (कमजोर) स्पष्ट करती है परन्तु आगे चलकर इसने अपने कदमों को मजबूत आर्थिक स्थिति की दिशा में तेज गति से बढ़ाया, जिसके फलस्वरूप इसकी कार्यशील पूँजी में अत्यधिक वृद्धि होती चली गयी। बैंक की कार्यशील पूँजी वर्ष 1960-61 में केवल 16.03 लाख रूपये थी, जोकि अगले 20 वर्षों में बढ़कर अर्थात् 1980-81 में 36185.00 लाख रूपये हो गयी तथा 1987-88 में यह बढ़कर 51671.00 लाख रूपये हो गयी। बैंक की लगातार बढ़ती हुई कार्यशील पूँजी इसकी सुदृढ़ आर्थिक स्थिति की ओर संकेत करती है।

किसी भी संस्था की प्रगति और अवनति के माप का आधार उसके द्वारा अर्जित लाभ या हानि से किया जा सकता है। जिस प्रकार से वायु के दबाव का मापन हम बैरोमीटर से कर सकते हैं, ठीक उसी प्रकार से किसी संस्था की धनराशि से सम्बन्धित आंकड़ों की सहायता से उसकी प्रगति व अवनति का माप कर सकते हैं। बैंक अपने शुद्ध लाभ में से ब्याज एवं अन्य मदों की धनराशि को घटा देता है, जिसके पश्चात कुछ वितरण योग्य लाभ की धनराशि ज्ञात हो जाती है। इसमें से भी बैंक 25 प्रतिशत सुरक्षित कोष, 17 प्रतिशत शिक्षा कोष, 15 प्रतिशत कृषि स्थिरीकरण कोष तथा अन्य कोषों का निर्धारित प्रतिशत को घटा देता है। इसके पश्चात जो भी धनराशि बचती है उसको सदस्यों में लाभांश के रूप में वितरित किया जाता है। सदस्यों को

लाभांश उनकी सदस्यता की अवधि के अनुसार दिया जाता है। यदि किसी सदस्य की सदस्यता 6 माह से कम हुई है और खाते बन्द कर दिये गये हैं, ऐसी दशा में उन सदस्यों को कुछ भी लाभांश नहीं दिया जाता है। लाभांश वितरित करने की अधिकतम दर 9 प्रतिशत है।

बैंक की प्रगति से सम्बन्धित एक उल्लेखनीय प्रवृत्ति यह थी कि यह अपनी स्थापना के वर्ष अर्थात् 1959 से 1976-77 तक लगातार लाभ अर्जन में वृद्धोन्मुख रहा था और यह प्रवृत्ति बैंक के कृषि वित्त सम्बन्धी लम्बे रास्ते पर मजबूती के साथ बढ़ते हुए कदमों का प्रतीक थी, जिसकी पुष्टि तालिका सं0 1 में दिये गये शुद्ध लाभ से सम्बन्धित आंकड़ों का अवलोकन करने से हो जाती है।

आंकड़ों को देखने पर पता चलता है कि वर्ष 1960-61 में शुद्ध लाभ की धनराशि केवल 22,000 रूपये थी, जो अगले दस वर्षों में अर्थात् 1970-71 में बढ़कर लगभग एक करोड़ हो गई और उसके बाद के वर्षों में भी बैंक के शुद्ध लाभ में अर्थात् 1976-77 तक लगातार वृद्धिहोती गई किन्तु वर्ष 1976-77 के बाद से बैंक के शुद्ध लाभ में लगातार 3 वर्षों तक कमी आई। उसके उपरान्त सन् 1980-81 और 1981-82 में बैंक के शुद्ध लाभ में कुछ वृद्धि हुई फिर भी यह वृद्धि 1976-77 की अपेक्षा कम रही परन्तु वर्ष 1983-84 में शुद्ध लाभ तीव्रगति से बढ़कर 528.04 लाख रूपये हो गया। शुद्ध लाभ आंशिक रूप से बढ़कर 1986-87 में 565.35 लाख रूपये हो गया। भूमि विकास बैंक के अब तक के इतिहास में अधिकतम लाभ इस बैंक को वर्ष 1986-87 में हुआ है, जो उल्लेखनीय है।

उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक प्रदेश में सहकारी क्षेत्र में दीर्घकालीन ऋण वितरण करने की शीर्षस्थ संस्था है। ऋण वितरण के कार्य को इसने प्रारम्भ में छोटे पैमाने से प्रारम्भ किया। सन् 1960-61 में लगभग 3 लाख

रूपये का ऋण वितरण किया, इसके पश्चात ऋणराशि में लगातार वृद्धि होती गई जोकि तालिका सं0 2 से स्वतः स्पष्ट हो जाती है:-

उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक लि0 की ऋण वितरण

तालिका सं0 2

(रू0 लाखों में)

सहकारी वर्ष	वर्ष में ऋण वितरण	क्रमिक ऋण योग ऋण वितरण	सदस्यों पर लगा हुआ ऋण
1	2	3	4
1960-61	2.90	2.90	2.58
62	15.40	18.30	17.58
63	53.79	62.09	59.09
64	73.32	135.41	125.16
65	125.94	261.35	238.55
66	596.67	858.02	812.65
67	698.23	1556.25	1482.20
68	1030.51	2586.76	2464.47
69	1897.91	4484.67	4249.79
70	1707.32	6191.99	5755.70
71	2162.25	8354.24	7615.94
72	2399.46	10753.76	9567.07
73	3147.31	13901.01	12070.10
74	2550.92	16451.93	13645.72
75	3042.60	19494.53	15463.32
76	2316.77	21811.30	15903.80
77	3934.06	25745.36	17679.81
78	5110.82	30850.18	20281.11
79	4375.71	35231.89	21653.68
80	5828.78	41060.67	24194.23
81	5229.40	46320.07	25669.00

ऋण वितरण

(धनराशि करोड़ रुपयों में)
975
950
925
900
875
850
825
800
775
750
725
700
675
650
625
600
575
550
525
500
475
450
425
400
375
350
325
300
275
250
225
200
175
150
125
100
75
50
25
0
0·3
83·54
21·62
463·20
52·59
773·23
74·78
860·34
87·11
961·77
101·44
1960-61
1970-71
1980-81
1985-86
1986-87
1987-88
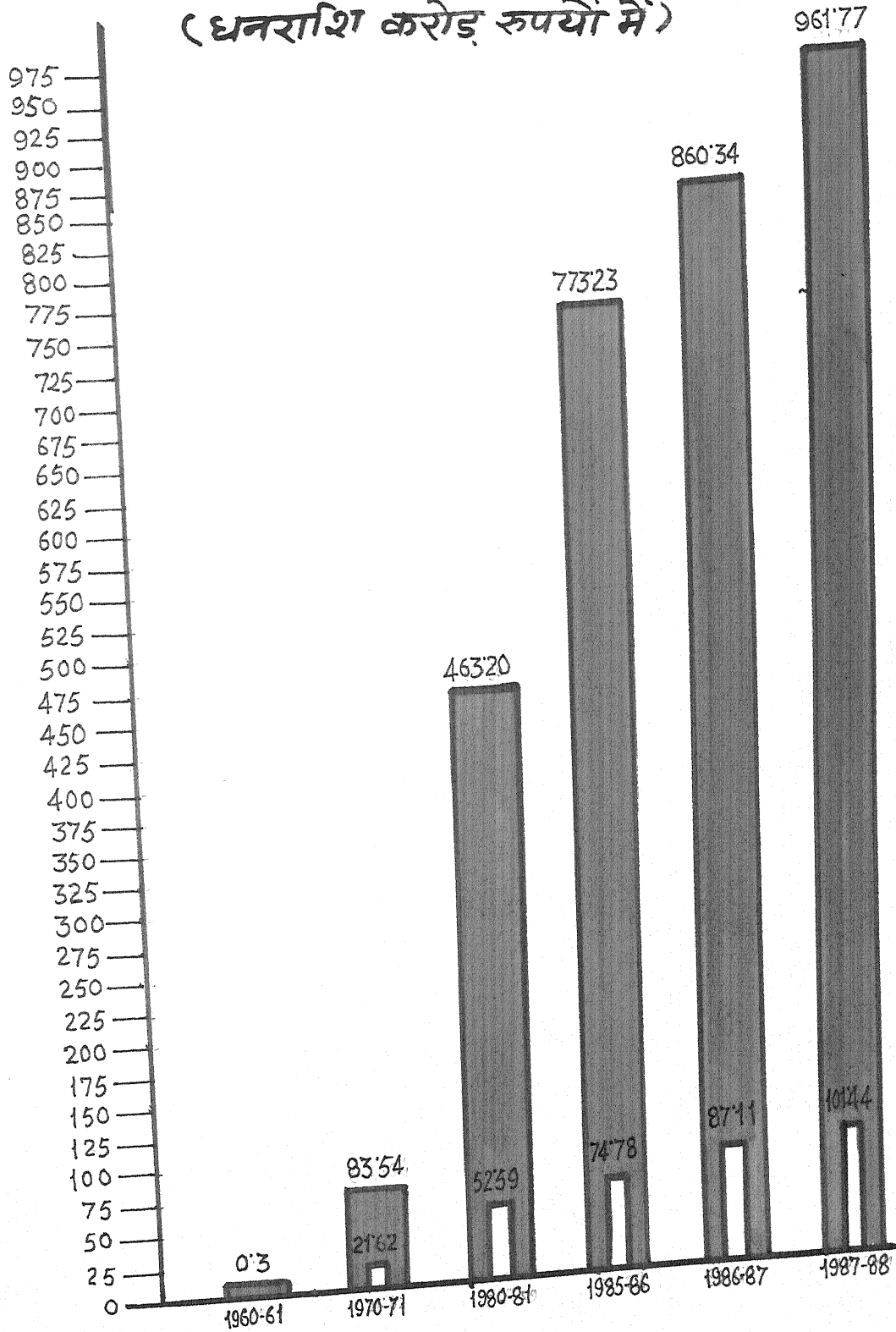
1	2	3	4
1981-82	4364.18	50684.25	26030.30
83	5428.68	56112.93	27314.76
84	6518.68	62631.61	29138.53
85	7213.21	69844.82	31290.98
86	7478.17	77322.99	33232.65
87	8710.98	86033.97	35645.35
88	96178.00	-	38748.00

स्रोत:- उ0प्र0 राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक लि0 लखनऊ

उपरोक्त तालिका देखने पर पता चलता है कि इस बैंक ने प्रतिवर्ष पिछले वर्ष की अपेक्षा अधिक ऋण वितरण किया है। वितरित ऋण के क्रमिक योग को देखने से यह पता चलता है कि बैंक ने अपनी स्थापना से लेकर 30 जून, 1987 तक 360.34 करोड़ रूपये का ऋण वितरण किया है।

ऋण वसूली के कार्य में प्रतिवर्ष काफी गिरावट आई है। ऋण वसूली को तालिका सं0 3 में दर्शाया गया है:-

तालिका सं0 3

ऋण वसूली के सम्बन्ध में बैंक की वार्षिक प्रगति

(रू0 लाखों में)

सहकारी वर्ष	कुल माँग (वसूली)	वर्ष में वसूली की गई धनराशि	वसूली का प्रतिशत
1	2	3	4
1961-62	0.72	0.67	95.37

1	2	3	4
1962-63	2.86	2.67	93.4
64	11.13	10.21	91.7
65	24.14	21.44	88.8
66	48.09	41.36	86.0
67	64.23	50.90	79.75
68	189.97	170.16	89.57
69	336.10	286.48	85.83
70	601.70	501.48	83.33
71	959.00	745.91	77.78
72	1314.97	1382.02	74.35
73	1858.80	1922.36	77.3
74	3167.61	2361.87	74.6
75	4078.15	3387.90	83.1
76	4716.92	3591.66	76.1
77	5658.19	4149.17	73.4
78	6907.59	4996.67	72.3
79	6920.98	5206.67	75.2
80	8831.24	6204.34	70.3
81	9913.85	6550.19	66.1
82	10102.88	6680.49	66.3
83	10457.88	7519.61	72.0
84	10707.08	7913.75	73.9
85	11436.55	8725.56	76.3
86	14153.30	9779.94	69.1

स्रोत:- उ0प्र0 राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक लिमिटेड लखनऊ।

उपरोक्त तालिका में दिये गये आँकड़ों को देखने से यह पता लगता है कि बैंक की वसूली के कार्य में प्रतिवर्ष गिरावट आई है। तालिका से यह भी

वसूली का प्रतिशत
100
90
80
70
60
50
40
30
20
10
0
100
77·78
70·3
76·0
69·1
69·1
1960-61
1970-71
1980-81
1985-86
1986-87
1987-88
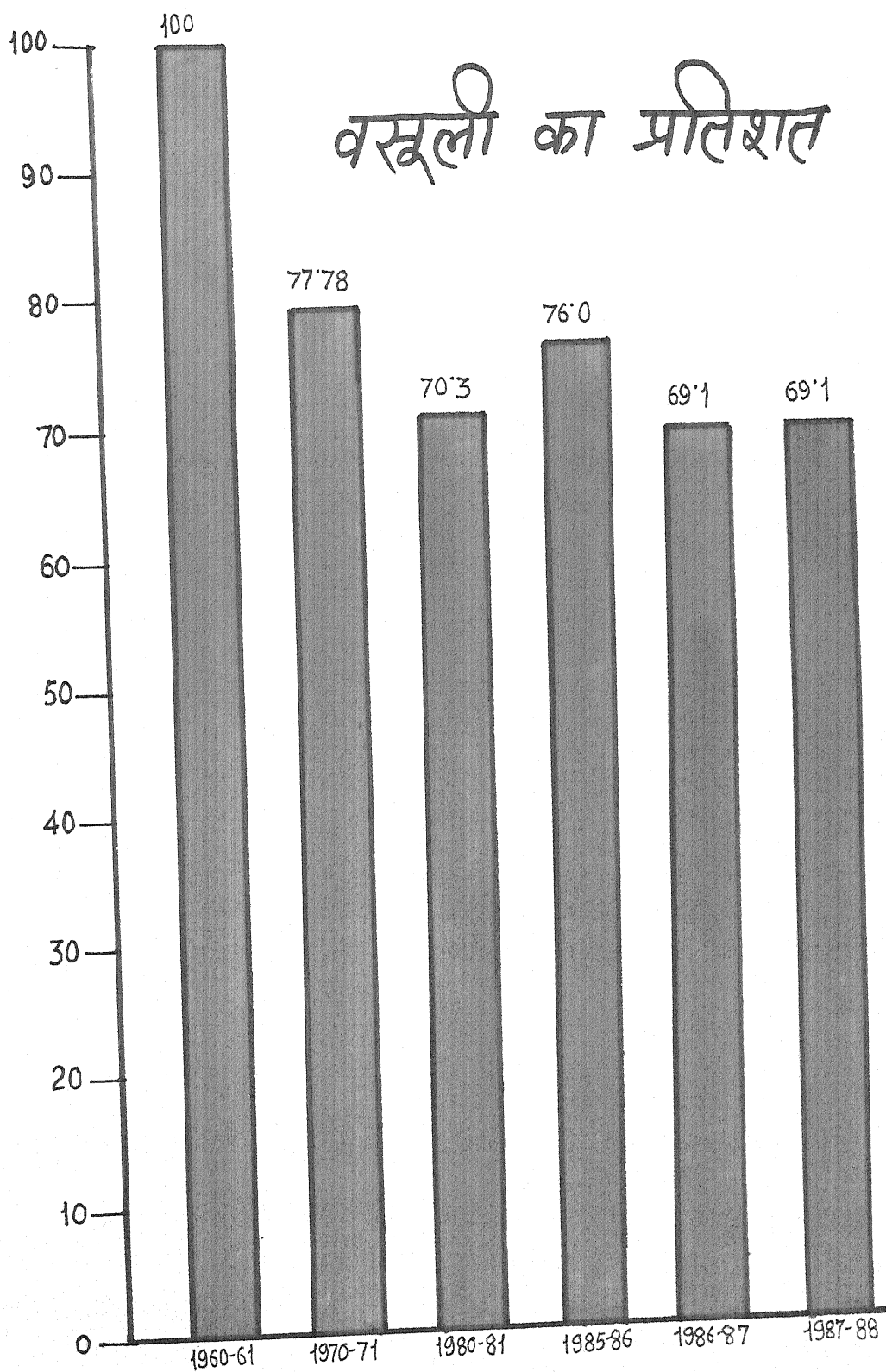
दृष्टिगोचर होता है कि माँग की धनराशि और वसूल की जाने वाली धनराशि दोनों में ही प्रतिवर्ष अत्यधिक वृद्धि हुई है, जोकि बैंक की मजबूत आधारशिला का प्रतीक है। प्रतिशत वसूली दर में उतार-चढ़ाव हुए हैं। सबसे अधिक वसूली का प्रतिशत वर्ष 1961-62 में 95.4 था तथा 1981-82 में सबसे कम 66.1 प्रतिशत रहा।

उपरोक्त विवरण एवं आंकड़ों का अवलोकन करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उत्तर प्रदेश सहकारी भूमि विकास बैंक लिमिटेड ने जहाँ आशातीत सफलतायें प्राप्त की हैं, वहीं दूसरी ओर उसे कुछ असफलताओं का भी सामना करना पड़ा है, किन्तु इसकी असफलतायें इसकी सफलताओं की तुलना में नगण्य हैं, जिन्हें बैंक थोड़े से प्रयासों से दूर कर सकता है।

प्राथमिक भूमि विकास बैंक

उद्देश्य तथा कार्य :-

प्राथमिक भूमि विकास बैंक का प्रमुख उद्देश्य केन्द्रीय भूमि विकास बैंकों से दीर्घकालीन ऋणों की व्यवस्था करना है एवं निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए जमानत के आधार पर भूमि तथा अचल सम्पत्ति को बन्धक रखकर कृषकों को ऋण अग्रसारित करना है:-

1. किसानों की बन्धक रखी गई कृषि योग्य भूमि को छुड़ाना ।
2. कृषि भूमि एवं कृषि के तरीकों में सुधार करने के लिए ।
3. पूर्वकाल के ऋणों से छुटकारा दिलाना ।
4. भूमि खरीदने के लिए ।
5. सदस्यों में आपसी सहायता तथा स्वालम्बन की भावना को प्रोत्साहन देना ।

उपर्युक्त लक्ष्यों की पूर्ति हेतु प्राथमिक भूमि विकास बैंक को सम्बन्धित राज्य के सर्वोच्च भूमि विकास बैंक का सदस्य अवश्य होना चाहिए।

वित्तीय स्रोत :-

प्राथमिक भूमि बन्धक बैंकों के वित्तीय साधनों के स्रोत निम्न हैं:-

1. अंशपूँजी ।
2. केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक से ऋण ।
3. जमा से प्राप्त धनराशि ।
4. प्रवेश तथा अन्य शुल्क ।

5. अनुदान ।

6. अन्य संस्थाओं से ऋण ।

प्राथमिक भूमि विकास बैंक ऋण के आधार पर एक निश्चित अनुपात में अपने सदस्यों को अंश निर्गत करके अपनी अंशपूँजी बढ़ाते हैं।

ब्याज दर :-

प्राथमिक भूमि विकास बैंक । से ।.5 प्रतिशत के बीच ब्याज लेते हैं, यह ब्याज दर केन्द्रीय भूमि विकास बैंक से 0.5 प्रतिशत अधिक है।

संविधान :-

प्राथमिक भूमि विकास बैंक उन कृषकों का स्वैच्छिक संघ है जो भूमि बन्धक रखकर दीर्घकालीन ऋण लेना चाहते हैं। सामान्यतया इन बैंकों की सदस्यता भूस्वामी तथा उनके सहभागी ग्रहण करते हैं। यदि वे परिनियमावली की शर्तों को पूरा करते हो। भागीदारी सहभागियों को "बी" वर्गीय सदस्यता मिलती है। ऋण न लेने वाले भी सदस्य बन सकते हैं।

प्राथमिक भूमि विकास बैंक की प्रगति :-

बुन्देलखण्ड सम्भाग के पाँचों जनपदों में प्राथमिक भूमि विकास बैंकों की प्रगति सन्तोषजनक रही है। ये बैंक जिले में दीर्घकालीन साख प्रदान करते हैं। इन्होंने माँग के अनुरूप ही ऋण वितरण किया है। जैसेकि झाँसी जनपद में वर्ष ।98।-82 में ऋणों की कुल माँग 98.।। लाख रूपये थी, जबकि ऋण की पूर्ति 55.20 लाख रूपये की थी। यह ऋण की माँग वर्ष ।988-89 में 244.45 लाख रूपये हो गई, अतएव लगभग 50 प्रतिशत कुल ऋण की पूर्ति की

गई, जबकि वसूली जोकि 1981-82 में 62 प्रतिशत थी, यह घटकर 1988-89 में 56.5 प्रतिशत ही रह गई और बकाया जो 1981-82 में 36.60 लाख रूपये था, बढ़कर 1987-88 में 85.79 लाख रूपये हो गया। हालांकि इस समयान्तराल में वसूली लगभग दुगनी हुई है, फिर भी ऋण वितरण की अपेक्षा बहुत ही कम मात्रा में हुई है।

इसी प्रकार की स्थिति लगभग जनपद बाँदा एवं हमीरपुर में रही है। जहाँ पर जनपद हमीरपुर में वर्ष 1981-82 में 62.56 लाख रूपये से बढ़कर वर्ष 1988-89 में लगभग दो गुना बढ़कर 116.11 लाख रूपये हो गया, लेकिन ऋण वसूली की गति बहुत ही तेज रही क्योंकि इन्हीं वर्षो के अन्तराल में यह 60.44 लाख रूपये ऋण वसूल किया था, जबकि यह 1988-89 में 143.64 लाख रूपये का ऋण वसूल कियागया। बकाया की धनराशि भी कृषकों के पास न्यून मात्रा में शेष रह गई। जबकि माँग वितरण के लगभग दो गुनी थी। इसी प्रकार की स्थिति लगभग जनपद बाँदा में रही है। ऋण वितरण जो वर्ष 1981-82 में 48.73 लाख रूपये बाँटा गया था, यह राशि वर्ष 1988-89 में 75.70 लाख रूपये हो गई, जबकि माँग लगभग ढाई गुनी थी। वसूली जनपद हमीरपुर की ही भाँति काफी तेज गति से हुई है।

जनपद ललितपुर एवं जनपद जालौन की स्थिति अन्य जनपदों की ही भाँति रही है। ऋण वितरण में पिछले वर्षो की अपेक्षा वर्तमान में काफी तेजी आई है तथा वसूली में काफी शिथिलता आई है। इसका कारण यह रहा है कि ये जनपद कई वर्षो तक सूखाग्रस्त इलाके रहे हैं तथा कुछ सरकार की वर्तमान नीतियों के कारण वसूली यथा सम्भव नहीं हो पाई है। यथा- भूमि की नीलामी करना, ऋण वितरण में नियमों को शिथिलता प्रदान करना इत्यादि कारण वसूली की गिरावट में उत्तरदायी रहे हैं।

जनपद झाँसी में प्राथमिक भूमि विकास बैंक

(रु० लाख में)

वर्ष	ऋण वितरण	माँग	वसूली	वसूली का %	बकाया
1981-82	55.20	98.11	61.54	62.00	36.60
83	64.05	135.28	71.21	53.2	62.26
84	77.67	126.74	51.56	40.6	-
85	59.70	142.45	90.55	63.50	51.99
86	63.33	154.90	99.01	64.00	55.89
87	73.25	204.66	116.00	56.6	88.66
88	84.80	919.75	133.96	60.96	85.79
89	119.03	244.46	138.12	56.5	-

स्रोतः- भूमि विकास बैंक, झाँसी

जनपद ललितपुर में प्राथमिक भूमि विकास बैंक

(रु० लाख में)

वर्ष	ऋण वितरण	माँग	वसूली	वसूली का %	बकाया
1981-82	28.36	44.89	24.89	55.4	19.99
83	31.73	52.75	27.04	51.2	25.71
84	34.74	52.20	18.25	35.9	-

वर्ष	ऋण वितरण	माँग	वसूली	वसूली का %	बकाया
1984 -85	26. 35	60. 38	31. 06	50. 00	29. 31
86	33. 81	87. 90	40. 32	65. 8	47. 58
87	39. 90	115. 30	47. 10	40. 84	68. 20
88	44. 75	125. 03	66. 59	53. 26	58. 44
89	50. 80	97. 45	51. 57	52. 92	-

स्रोतः- भूमि विकास बैंक, ललितपुर ।

जनपद हमीरपुर में प्राथमिक भूमि विकास बैंक

(रू० लाख में)

वर्ष	ऋण वितरण	माँग	वसूली	वसूली का %	बकाया
1981-82	62. 56	75. 23	60. 44	83. 4	14. 79
83	66. 53	99. 30	69. 57	70. 0	29. 73
84	72. 10	102. 70	50. 06	48. 6	-
85	70. 53	126. 95	99. 45	78. 5	27. 49
86	86. 08	139. 62	112. 18	80. 35	27. 44
87	101. 94	169. 27	134. 31	80. 3	34. 96
88	120. 64	171. 43	141. 85	82. 75	29. 58
89	116. 11	167. 42	143. 64	85. 08	-

स्रोतः- भूमि विकास बैंक, हमीरपुर

जनपद बाँदा में प्राथमिक भूमि विकास बैंक

(रु0 लाख में)

वर्ष	ऋण वितरण	माँग	वसूली	वसूली का %	बकाया
1981-82	48.73	122.20	67.29	56.7	54.89
83	54.01	157.52	82.19	53.1	75.23
84	56.95	145.25	50.16	35.20	-
85	55.70	166.69	85.08	50.09	81.60
86	48.79	139.80	94.12	67.3	45.68
87	54.46	203.81	113.43	55.6	90.39
88	64.92	212.14	118.90	56.05	93.24
89	75.70	176.01	100.89	57.32	57.32

स्रोतः- भूमि विकास बैंक, बाँदा ।

जनपद जालौन में प्राथमिक भूमि विकास बैंक

(रु0 लाख में)

वर्ष	ऋण वितरण	माँग	वसूली	वसूली का %	बकाया
1981-82	41.23	52.97	44.86	80.9	8.08
83	37.31	64.36	53.04	82.4	11.33
84	33.11	64.92	45.60	70.35	-
85	36.59	72.21	58.17	80.50	13.93
86	48.44	75.80	65.24	86.07	10.56
87	54.07	86.07	70.43	86.00	13.65
88	73.50	90.67	76.80	84.07	13.87
89	74.06	102.40	88.52	86.44	-

स्रोतः- भूमि विकास बैंक, जालौन ।

:: अध्याय पंचम ::

सहकारी क्षेत्र एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा प्रदत्त कृषि साख का अध्ययन

1. राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक
2. राष्ट्रीयकृत बैंक
3. ग्रामीण बैंक

राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक

भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना वर्ष 1935 में की गयी थी। उसी समय से भारतीय रिजर्व बैंक ने देश के केन्द्रीय बैंक होने के नाते कृषि विकास हेतु साख व्यवस्था के लिये "कृषि साख विभाग" की स्थापना की थी। इस विभाग का मुख्य कार्य कृषि कार्यों के लिए संसाधन प्रबन्ध करना और कृषि साख में लगी हुई संस्थाओं को संसाधन उपलब्ध कराना था। इसके लिए कोष की स्थापना की गई। इसका नाम "लाँग टर्म ओपरेशन फण्ड" था। इस कोष से ऋण, अंशदान या ऋण पत्रों में धन का विनियोजन कर कृषि विकास के लिए सहकारी संस्थाओं और बैंकों की सहायता की जाती थी। स्वतन्त्रता के पश्चात कृषि विकास पर विशेष बल दिया गया तथा "अधिक अन्न उपजाओ" कार्यक्रम के अन्तर्गत कृषि ऋण की माँग बढ़ी। बढ़ती हुई माँग को उपरोक्त कोष पूरा करने में असफल रहा, अतः भारतीय रिजर्व बैंक ने सन् 1963 में "कृषि पुनर्वित्त निगम" की स्थापना की। निगम का कार्य अतिरिक्त संसाधन व्यवस्था करना तथा कृषि वित्त पोषण के लिए संस्थाओं को पुनर्वित्त उपलब्ध कराना था। सन् 1975 में "कृषि पुनर्वित्त निगम" का नाम बदलकर "कृषि पुनर्वित्त एवं विकास निगम" हो गया। इस प्रकार से अब पुनर्वित्त प्राप्त हेतु सर्वप्रथम योजना बनाकर स्वीकृत करनी होती है तथा उसके बाद योजना की स्वीकृत शर्तों के अनुसार पुनर्वित्त प्राप्त होता है। कृषि साख की बढ़ती हुई माँग जब देश के आन्तरिक साधनों से पूरी नहीं हुई, तो वर्ष 1975 में ही विश्व बैंक की संस्था "अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ" से कृषि विकास के लिए भारत सरकार ने ऋण प्राप्त किया और इस प्राप्त ऋण को "कृषि पुनर्वित्त एवं विकास निगम" के माध्यम से ऋण उपलब्ध कराना प्रारम्भ किया। देश खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्म निर्भर हो गया। इसके बाद भी न तो पूर्णरूपेण कृषक का ही आर्थिक विकास हो सका और न ही ग्रामीण विकास का स्वप्न

पूरा हो सका जिसके परिणामस्वरूप भारत सरकार को चिन्ता हुई। अतः भारत सरकार ने भारतीय रिजर्व बैंक से यह जानकारी प्राप्त करनी चाही कि केन्द्रीय बैंक होने के नाते ग्रामीण विकास हेतु संस्थागत वित्त की क्या व्यवस्था है। रिजर्व बैंक ने कृषि और ग्रामीण विकास के लिये संस्थागत वित्त की समुचित व्यवस्था हेतु मार्च 1979 में "शिवारमण कमेटी" गठित की। इस कमेटी को " CRAFICARD "नाम से भी जाना जाता है। इस कमेटी ने सविस्तार अध्ययन के बाद नवम्बर 1979 में अपनी अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें इस बात की संस्तुति की गयी थी कि राष्ट्रीय स्तर पर एक ही बैंक बनाया जाय तो कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिये संस्थागत वित्त उपलब्ध कराये। अतः इस बैंक का नाम "राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक" रखा गया। दिसम्बर 1981 में एक विधेयक के द्वारा इस बैंक की स्थापना 12 जुलाई, 1982 को कर दी गई। इस बैंक का उद्घाटन 5 नवम्बर, 1982 को किया गया। राष्ट्रीय बैंक की स्थापना इस उद्देश्य से की गयी थी कि कृषि और ग्रामीण विकास के लिये साख की बढ़ती हुई माँग को पूरा किया जा सके। समन्वित विकास योजनाओं को सफल बनाया जा सके तथा ग्रामीण अंचलों के निर्धनों के विकास के लिए आर्थिक सहायता उपलब्ध करायी जा सके।

कार्य :-

यह बैंक कृषि साख को एक छाते के नीचे लायेगी और अल्पकालीन, मध्यकालीन व दीर्घकालीन ऋणों की व्यवस्था करेगी। जिस प्रकार औद्योगिक विकास के लिये औद्योगिक विकास बैंक है, इसी प्रकार कृषि विकास के लिये यह बैंक सर्वोच्च होगी जो सभी एजेन्सियों के कार्यों में समन्वय करते हुए कृषि साख का विस्तार करेगी। यह बैंक निम्न कार्य करता है:-

§1§ यह बैंक अपनी आवश्यकताओं के लिए बॉण्ड ऋण पत्र जारी कर सकती है जिस पर केन्द्रीय सरकार की मूलधन व ब्याज की वापसी

की गारन्टी होगी।

(2) यह बैंक कृषि के सम्बन्ध में सभी प्रकार की साख की व्यवस्था करेगी जैसे- उत्पादन व विपणन ऋण, राज्य सरकारों को ऐसी ही संस्थाओं में पूँजी लाभ के लिये ऋण ।

(3) अल्पकालीन ऋण जिनकी अवधि 18 मास तक की होती है, पुनर्वित्त के रूप में राज्य सरकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को दिये जाते हैं। इन ऋणों का सम्बन्ध कृषि कार्यों, फसलों की बिक्री, कृषि साधनों के विपणन तथा ग्रामीण उद्योगों के उत्पादन तथा विपणन आदि से होता है।

(4) राज्य सहकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को दिये गये अल्प-कालीन ऋण 7 वर्षों तक की अवधि के मध्यकालीन ऋणों में भी बदले जा सकते हैं, ऐसा तभी होगा जबकि सूखा, अकाल, अथवा अन्य प्राकृतिक प्रकोप की स्थिति उत्पन्न हो जाये।

(5) मध्यकालीन ऋण जिनकी अवधि 18 मास से 7 वर्ष तक की होती है राज्य सरकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को दिये जा सकते हैं। इनका उद्देश्य कृषि ग्रामीण विकास के अतिरिक्त स्वयं राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक द्वारा भी निर्देशित किया जा सकता है।

(6) दीर्घकालीन ऋण 25 वर्ष तक की अवधि के लिये भूमि विकास बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों, अनुसूचित बैंकों एवं सहकारी तथा अन्य संस्थाओं को दिये जा सकते हैं। इनका उद्देश्य कृषि एवं ग्रामीण विकास करना होगा।

(7) राज्य सरकारों को 20 वर्ष तक की अवधि के लिये ऋण दिये जा सकते हैं, जिससे वे सहकारी साख समितियों की अंश पूँजी में धन लगा सकें।

इस बैंक की पूँजी 100 करोड़ रुपये रखी गयी है, जिसे केन्द्रीय सरकार व भारतीय रिजर्व बैंक ने बराबर-बराबर मात्रा में दिया है।

"नाबार्ड" द्वारा एक शोध एवं विकास कोष स्थापित किया गया है। इससे कृषि तथा ग्रामीण विकास में शोध को प्रोत्साहन देने तथा विभिन्न क्षेत्रों के लिये उपयुक्त योजनायें तथा कार्यक्रम निर्धारित करने में सहायता मिलेगी।

व्यापारिक बैंक बनाम सहकारी बैंक

यद्यपि कृषि साख के क्षेत्र में व्यापारिक बैंकों तथा सहकारी बैंकों दोनों का ही अस्तित्व है लेकिन दोनों को ही कृषि साख प्रदत्त करने में अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। भारतीय रिजर्व बैंक ने 1971 में बैंकों को निर्देश देते समय इन कठिनाईयों पर भी ध्यान दिया था। सन् 1969 से कार्यशील एक विशेषज्ञ दल व्यापारिक बैंकों की समस्याओं का गहन अध्ययन कर रहा था, जिसकी नियुक्ति राष्ट्रीय साख परिषद के अध्ययन समूह की संस्तुतियों पर की गयी थी। इस अध्ययन दल ने पाया कि कृषि साख के बटवारे में बैंकों का सक्षम संचालन तथा नियमित क्रियाकलाप सुनिश्चित करने के लिए राजकीय अधिनियमों में महत्वपूर्ण परिवर्तन की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ- वर्तमान अधिनियमों के अनुसार उत्पादकों को अपनी भूमि अथवा उसके ब्याज के मामले में कोई अधिकार नहीं है अथवा सीमित अधिकार है। इसी प्रकार फसल में भागीदारों का जो एक विशेष समूह की संरचना करते हैं, को कोई लिखित अधिकार नहीं है। जब तक उत्पादकों को ऐसा अधिकार प्रदान नहीं किया जाता और उपज के भागीदारों के अधिकार रिकार्ड में नहीं आते, तब तक वे बैंक ऋणों को प्राप्त करने में समर्थ नहीं होंगे। विशेषज्ञ समूह ने यह भी पाया कि सामान्य सुरक्षा पर आधारित ऋणों से सम्बन्धित संस्थागत साख अभिकरणों के मध्य प्राथमिकता के सामान्य सिद्धान्त को सम्पत्ति के हस्तान्तरण (ट्रांसफर ऑफ प्रॉपर्टी एक्ट) में शामिल किया जाना चाहिए। इससे यह सुनिश्चित होगा कि सहकारी बैंकों के समर्थन की प्रथम आरोप की अवधारणा को व्यापारिक बैंकों को प्रभावित नहीं करती। दूसरे शब्दों में, संस्तुति का उद्देश्य प्रथमत: यह है कि ऋणदाता अभिकरणों के मध्य टकराव की स्थिति को टाला जावे तथा दूसरे सामान्य उद्देश्य के लिए दो विविध अभिकरणों द्वारा ऋण प्रदान करने की स्थिति को समुचित रूप से

उपयोग में लाया जावें।

विशेषज्ञ दल ने सुझाव दिया कि ये सभी राजकीय अधिनियम कम प्रतिबन्ध तथा अधिक सामान्य अवधारणा वाले होना चाहिए। विशेषज्ञ समूह इस तथ्य के प्रति भी सजग है कि राज्यों के द्वारा संशोधन न तो जटिल होना चाहिए और न ही अधिक समय लगाने वाला भी होना चाहिए। क्योंकि आज तत्कालिक एवं प्रभावशाली सक्रियता की आवश्यकता है। इस विशेषज्ञ दल ने विधान सभाओं द्वारा पारित कराने के लिए एक नमूने का बिल तैयार करके राज्यों के कार्य को सरल बनाया है, जिससे व्यापारिक बैंकों के सामने कृषि साख व्यापार के सम्बन्ध में एक स्पष्ट तथा सरल संवैधानिक ढाँचा उपलब्ध होगा।

कृषि क्षेत्र में साख अन्तरालों को भरने की सम्पूर्ण योजना में, सहकारी बैंकिंग प्रणाली का निःसन्देह एक व्यापक संगठन है लेकिन यह जमा खातों को गतिशीलता प्रदान करने में असमर्थ है, जबकि व्यापारिक बैंक इस ओर काफी समर्थ है। व्यापारिक बैंकें कृषि साख प्रदान करने में असमर्थ है क्योंकि वे ग्रामीण क्षेत्रों के प्रति उदासीन हैं तथा इस क्षेत्र में ऋण देने की समस्याओं से अनभिज्ञ है। अतएव ऐसे रास्ते निकालने होंगे जिनके द्वारा व्यापारिक बैंकों के सफल संचालन के अभाव को सहकारी क्षेत्रों के द्वारा साख के माध्यम से अधिक उपयोगी बनाया जाये। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु रिजर्व बैंक के पास आवश्यक अधिकार तथा विशेषज्ञों की सेवायें सुलभ हैं। विशेषज्ञों की राय में एक समन्वित वित्तीय तथा साख नीति को सुनिश्चित करने तथा उक्त अभिकरणों के प्रबन्ध तंत्र में उच्च गुणवत्ता को आश्वस्त को सुनिश्चित करने के लिए सहकारी साख को केन्द्रीय सूची तथा समवर्ती सूची की हस्तान्तरित कर देना चाहिए। प्रायः यह शिकायत सुनी जाती है कि व्यापारिक बैंकों की शाखायें पर्याप्त संख्या में नहीं है, जहाँ उत्पादकों को सरलता से साख प्राप्त हो सके और जहाँ पर

बैंकें पर्याप्त मात्रा में हैं तो वहाँ पर कर्मचारियों की संख्या अपर्याप्त है, जिससे कृषकों की साख योजना का कुशल संचालन एवं आवश्यक न्यूनतम क्रियाकलाप सम्भव नहीं है। इस संदर्भ में यह स्मरणीय है कि अग्रगण्य बैंकों ने अपनी सर्वेक्षण रिपोर्ट में उन निर्धारित जनपदों पर बहुमूल्य सूचनायें एकत्रित की हैं जो शाखा या जनपद स्तरों पर साख योजना के लिए उपयोगी आधार का निर्माण करते हैं। अतः बैंकों के मुख्यालयों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि किस दिशा में शाखा के प्रबन्धक को आवश्यक कर्मचारी प्रदान करें।

सार्वजनिक क्षेत्रों के व्यापारिक बैंकों तथा सहकारी क्षेत्र के बैंकों ने राज्यों के लिए एक नमूने के अधिनियम की संस्तुति की है जो निश्चित सुविधायें उपलब्ध करायेगा। जैसे- निर्धन कृषकों तथा कृषि श्रमिकों के छोटे ऋणों पर स्टाम्प ड्यूटी के ऋणों से मुक्ति। यह प्रस्तावित अधिनियम उन छोटे और सीमान्त कृषकों तथा कृषि मजदूरों की साख सुविधाओं के विस्तार हेतु उठाये गये कदमों में से है, जो चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाकाल में बनायी गयी थी, जब राज्य इस अधिनियम को ग्रहण करेगा तो बैंक कृषक जनसंख्या के गरीब को साख के प्रसार में सहायता देगा। व्यापारिक बैंकों तथा सरकारी क्षेत्रों केबैंकों को एक नीति निर्देश के तहत सुनिश्चित किया गया है कि कृषि क्षेत्र में कृषकों के कमजोर तपकों तथा कृषि मजदूरों को साख प्राप्त करने में प्राथमिकता प्राप्त होगी तथा एक अधिक उदारवादी और यथार्थवादी धारणा के अन्तर्गत खतरे को कम किया जायेगा। फलस्वरूप केन्द्रीय सरकारी बैंकों के द्वारा छोटे किसानों तथा भूमिहीन कृषकों को स्वीकृत साख 20 प्रतिशत तक सीमित होगी। शेष भाग में भी सहकारी बैंक छोटे किसानों की आवश्यकताओं को पूर्ण प्राथमिकता प्रदान करेंगे।

फसल ऋण प्रणाली के अन्तर्गत खड़ी हुई फसल के आंकलन के आधार पर अल्पकालीन ऋण प्रदत्त किये जाते हैं और इस प्रकार भूमि को बन्धक बनाना

समाप्त किया जायेगा। सहकारी संस्थाओं से आशा की जाती है कि उत्पादन लागत की आपूर्ति वस्तुओं के रूप में अवश्य करेंगी।

मध्यकालीन साख के अन्तर्गत सहकारी संस्थाओं को अभी हाल में बिना किसी जमानत के दुग्ध केन्द्रों, कुक्कुट शालाओं आदि के लिए दो हजार रूपये तक के वैकल्पिक व्यवसायों हेतु ऋण अग्रसारित करने की आज्ञा दी गई है बशर्ते कि उनकी समुचित विपणन व्यवस्था की जावे।

दीर्घकालीन साख के अन्तर्गत भूमि विकास बैंकों ने जमा की आंकलन की नीति को उदार बनाया है और छोटे तथा सीमान्त कृषकों तथा कृषि श्रमिकों को अपनी योजना के क्षेत्रों में साख के लिए उत्पादन क्षमता के आधार के रूप में ग्रहण किया गया है।

व्यापारिक बैंकों के द्वारा कृषि विकास हेतु वित्तीय सहायता के सम्बन्ध में भारतीय रिजर्व बैंक के द्वारा जारी किये गये निर्देशों के अनुसार ऋण देने का मुख्य उद्देश्य न केवल वर्तमान उत्पादकों को अपनी बचत में वृद्धि के लिए साख प्रदान करना था बल्कि उससे महत्वपूर्ण सीमान्त और अधिक क्षमतावान उत्पादकों को साख प्रदान करना था। निर्देशों में यह भी संकेत दिया गया है कि फसल ऋण के मामले में छोटे और मध्यम उत्पादकों से भूमि बन्धक बनाने की जमानत पर आग्रह न किया जावे और इसके अतिरिक्त अन्य नियमों को भी लचीला बनाया जाये।

फिर भी इस सबका यह अर्थ नहीं है कि छोटे किसान महाजनों के चंगुल से अपेक्षाकृत मुक्त है। वास्तव में वे महाजनों पर सम्पूर्ण ऋण के 17 प्रतिशत की सीमा तक निर्भर है जबकि बड़े किसान 12.3 प्रतिशत तक निर्भर रहते हैं।

व्यापारिक बैंकें :-

साख उत्पादन का एक आवश्यक कारण है। लागत की अन्य चीजें जैसे बीज, सिंचाई, खाद आदि से साख का महत्व कम नहीं है। देश के अनेक भागों में कृषि उत्पादन में कमी का प्रमुख कारण अपर्याप्त और असामयिक रूप से कृषि साख की आपूर्ति होना है। भारतीय कृषि की दशाओं के संदर्भ में यद्यपि सहकारिता साख का सबसे अधिक महत्वपूर्ण संस्थात्मक अभिकरण अब भी है, फिर भी अन्य संस्थागत अभिकरणों को भी सहकारिता के स्रोतों के पूरक के रूप में अवश्य विचार करना होगा। आधुनिक तकनीकी विकासों के संदर्भ में कृषि साख की आवश्यकता इतनी विशाल है कि यह आशा करना उचित नहीं होगा कि केवल एक साख अभिकरण अर्थात् सहकारिता मात्र ही सब लोगों की साख आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ होंगी। एक बहुउद्देश्यीय धारणा को समय की आवश्यकता मान लिया गया है। अस्तु कृषि वित्त के लिए व्यापारिक बैंकों की महती आवश्यकता अनुभव की गयी।

भारत में व्यापारिक बैंकों का आर्विभाव और विकास का एक अनिवार्य सम्बन्ध व्यापारी समुदाय से था। प्रारम्भकाल में व्यापारिक बैंकों की गतिविधियां केवल वाणिज्य और व्यापार तक सीमित थी, उनका कार्य पूर्णतः नगरीय क्षेत्रों तक सीमित था। ये बैंक कृषि वित्त को अपने सामान्य व्यापारिक अंश के रूप में नहीं देखते थे। फिर भी ये बैंक व्यापारियों को जो गाँव के छोटे लेन-देन करने वालों को धन देते थे, की वित्तीय सहायता करके कृषि वित्त में सहायता देते थे और कुछ बैंक उत्पाद, सम्पत्ति को बन्धक रखकर प्रत्यक्ष ऋण देते थे। तालिका नं० 1 में 1951 से 1969 तक व्यापारिक बैंकों द्वारा दिया गया कृषि वित्त में योगदान को दर्शाया गया है:-

तालिका नं० 1

LOANS DISBURSED BY COMMERCIAL BANKS

(Rs. in Crores)

Particular	As on June, 1951	As on June, 1969
1. Gross Bank Credit	627.6	3600.0
2. Advance for Agricultural Production	18.3	188.0
3. Percentage of 1 as 2	2.9	5.2

Source: R.B.I. Bulletin, October 1969.

व्यापारिक बैंकों द्वारा कृषि साख की सम्भावनायें तभी यथार्थ हुई, जब सन् 1969 में सामाजिक नियंत्रण के साथ ही 14 बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ। निःसन्देह राष्ट्रीयकरण का एक प्रमुख कारण व्यापारिक बैंकों द्वारा अर्थव्यवस्था के उपेक्षित क्षेत्रों को साख उपलब्ध कराना था। इस सम्बन्ध में तत्कालीन प्रधानमंत्री ने कहा था कि "बैंकिंग पद्धति जैसी एक संस्था जो लक्ष्य-लक्ष्य करोड़ों लोगों को स्पर्श करती है और जिसे ऐसा करना भी चाहिए, को विशालतम सामाजिक लक्ष्य के लिए आवश्यक रूप से प्रेरित करना है और उसे राष्ट्रीय प्राथमिकताओं और लक्ष्यों की सेवा करना है।"

भौगोलिक प्रसार एवं कार्यात्मक विविधता जैसी नये दायित्व बैंकों को सौंपे गये। राष्ट्रीयकरण के बाद से व्यापारिक बैंकों में प्रभावकारी और तीव्रगामी प्रगति विशेषतया कृषि क्षेत्र में देखने को मिली।

वर्तमान समय में ये बैंक कृषि के लिए प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष वित्त देते हैं। वे कृषकों को अल्पकालीन एवं मध्यकालीन साख प्रदान करते हैं। अप्रत्यक्ष वित्त के अन्तर्गत ये बैंक खाद एवं अन्य लागतों (इनपुट्स) के वितरण हेतु वित्तीय सहायता करते हैं तथा विद्युत परिषदों, कृषि साख समितियों को ऋण एवं भूमि विकास बैंकों के ऋण पत्रों में धन लगाते हैं। कृषि सहायता हेतु निम्नलिखित हेतु निम्नलिखित दिशाओं में इन बैंकों ने कृषि की यथासम्भव योगदान दिया है:-

(1) अप्रत्यक्ष वित्तीय सहायता के अतिरिक्त ये बैंक कृषकों को पम्पसेट्स ट्रैक्टर एवं कृषि यंत्रों को खरीदने, कुँओं को खोदने एवं गहरा करने के लिए, भूमि को समतल बनाने के लिए, दुग्धशाला, कुक्कुटशाला, फसल में वृद्धि हेतु, कृषि सम्बन्धी वस्तुओं के निर्माण के लिए सहायता देते हैं।

(2) ये बैंक उन छोटे/सीमान्त कृषकों को वित्तीय सहायता देते हैं जिनका निर्धारण जनपद ग्रामीण अभिकरणों के द्वारा कर दिया जाता है।

(3) इन बैंकों ने ग्रामीण तथा उपनगरीय क्षेत्रों में द्रुतगामी विकास किया है।

(4) कृषि ऋण का अलग से प्रसार करने के लिए इन्होंने विशिष्ट शाखाओं को स्थापित किया।

(5) ग्राम्य ग्रहण परियोजना (विलेज एडोप्सन स्कीम) के अन्तर्गत गहन क्षेत्र के विकास कार्यक्रम के माध्यम से इन्होंने अपने प्रयासों को विशेष क्षेत्रों में केन्द्रित किया है।

(6) पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत इन्होंने अपनी महाजनी (लेन्डिंग)

गतिविधियों को योजनाबद्ध कार्यक्रमों के साथ जोड़ दिया है।

§7§ इन्होंने अपने स्वयं को समर्पित प्राथमिक कृषि साख समितियों को वित्त दिया एवं 1973-74 से कृषक सेवा समितियों का गठन किया।

§8§ कमजोर वर्गों की साख आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इन्होंने चुने हुए क्षेत्रों में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की।

§9§ इन्होंने गाँव के गरीब वर्ग के नजदीक आने और उनकी बेहतर सेवा करने के प्रयास किये।

व्यापारिक बैंकों का कार्य सम्पादन :-

सन् 1969 तक प्रति व्यापारिक बैंक का क्षेत्र औसतन जनसंख्या 65000 थी परन्तु फरवरी 1985 तक यह कम होकर 14000 रह गई। सन् 1985 तक देश में व्यापारिक बैंकों के कार्यालयों की कुल संख्या 48932 थी जबकि जून 1969 तक इनकी संख्या मात्र 8262 थी। जून 1969 से फरवरी 1985 के बीच ग्रामीण शाखाओं की संख्या में भी वृद्धि हुई क्योंकि 1969 में इनकी संख्या मात्र 1832 थी, 1985 में बढ़कर यह 28116 हो गई। इन तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि ग्रामीण समुदाय तक इनकी पहुँच में तेजी से वृद्धि हुई।

तालिका नं० 2

Regional distribution of Bank Offices
1969-1985

Regions*	No.of Offices		Percentage share of the total	
	June 1969	Feb. 1985	June 1969	Feb. 1985
Rural	1832	28116	22.1	57.5
Semi Urban	3322	9529	40.2	19.5
Urban	1447	6132	17.6	12.5
Metropolitan Port town	1661	5155	20.1	10.5
TOTAL:	8262	48932	100.0	100.0

*Rural Centres- Places with population upto 10,000,
Semi Urban- Places with population over 10,000 and upto 1,00,000.
Urban Centres places with population over 1,00,000 and upto 10,00,000.
Metropolition Centres places with population over 10,00,000.

Source: Report on trend and progress of Banking in India, 1984-85, P.99.

विशेषीकृत शाखायें:-

व्यापारिक बैंकों ने विशेषीकृत शाखायें स्थापित की है, जिनके अन्तर्गत कृषि विकास शाखायें, स्टेट बैंक समूह द्वारा कृषि बैंकिंग विभाग तथा बैंक ऑफ बड़ौदा के द्वारा ग्राम विकास केन्द्र, देना बैंक के द्वारा ग्रामीण सेवा केन्द्र, सिन्डीकेट बैंक के फार्म क्लीनिक्स एवं इण्डियन ओवरसीज बैंक के द्वारा ग्रामीण साख एवं विकास विभाग की स्थापना की। ये शाखायें जनशक्ति कार्य की उच्च कीमत तथा कृषकों को [illegible] स्तरीय क्रियाकलाप से सम्बन्धित व्यवहारिक कठिनाईयों को दूर करने के लिए स्थापित की गई हैं।

STATE-WISE DISTRIBUTION OF BANK OFFICES AS AT THE END OF JUNE 1969, 1982 & 1983

State/Union Territary	No.of Office as at the end of			Opened during 1981-82*	Of which at un banked Centres	Opened during 1982-83*	Of which at un banked Centres	Population per bank office (in thousand) as at the end of		
	June 1969	June 1982	June 1983					June 1969	June 1972	June 1983
1. Andhra Pradesh	567	2998	3272	236	176	274	220	75	18	16
2. Assam	74	562	653	55	39	91	85	198	35	30
3. Bihar	273	2807	3048	413	381	241	217	207	25	23
4. Gujarat	752	2452	2604	89	40	152	110	34	14	13
5. Haryana	172	87	947	61	52	76	59	57	15	14
6. Himanchal Pradesh	42	412	461	43	39	49	47	80	10	9
7. Jammu Kashmir	35	546	582	87	67	36	27	114	11	10
8. Karnataka	756	2973	3150	181	136	177	143	38	12	12
9. Kerala	601	2428	2501	88	49	73	44	35	10	10
10. Madhya Pradesh	343	2510	2773	333	285	263	220	116	21	10
11. Maharashtra	118	3888	4115	257	173	227	154	44	16	15
12. Manipur	2	39	44	2	-	5	4	497	37	32
13. Meghalaya	7	67	79	8	3	12	9	147	20	17
14. Nagaland	2	45	50	5	2	5	5	205	17	15
15. Orrissa	100	1228	1302	260	232	74	57	212	21	20
16. Punjab	346	1672	1777	80	56	105	83	42	10	9
17. Rajasthan	364	1785	1899	147	91	114	17	70	19	19
18. Sikkim**	-	7	11	4	3	4	4	-	45	29
19. Tamilnadu	1060	3224	3395	208	153	171	111	37	15	14
20. Tripura	5	86	88	1	1	2	1	276	24	23
21. Uttar Pradesh	747	4747	5261	619	521	514	434	119	23	21
22. West Bengal	504	2465	2595	232	182	130	98	87	22	21
23. Undwan & Nikowar Island	1	12	12	-	-	-	-	82	16	16
24. Arunachal Pradesh	-	25	31	3	2	6	5	-	25	20
25. Chandigarh	20	89	93	9	4	4	2	7	5	5
26. Dadar & Nagar Haweli	-	6	6	-	-	-	-	-	17	17
27. Delhi	274	914	940	42	12	26	2	10	7	7
28. Goa, Daman & Diu	85	246	250	2	2	4	3	8	4	4
29. Lakshadweep	-	5	5	-	-	-	-	-	8	8
30. Mijoram	-	13	15	1	1	2	2	-	38	33
31. Pandicheri	12	55	57	4	3	2	2	31	11	11
TOTAL:	8262	39177	42016	3470	2705	2839	2225	65	17***	17

Source: Department of Banking operations and development, RBI

*After adjustment for offices closed.

**Sikkim became a full fledged State of the Indian Union from April 6, 1975.

***Actually works out to 17500.

NOTE: The average population per Bank office is based on 1961 census in col.9 & 1981 census in cols.10 & 11.

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त देश की कृषि साख व्यवस्था में समुचित सुधार करने के उद्देश्य से समय-समय पर नियुक्त आयोगों तथा समितियों ने अनेक सिफारिशें की, जिन्हें सरकार ने क्रियान्वित भी किया था। परन्तु देश में कृषि साख की स्थिति में सन्तोषजनक सुधार परिलक्षित नहीं हुए। सरकार द्वारा बैंकों के राष्ट्रीयकरण के समय यह आशा की गई थी कि वे ग्रामीण साख समस्या का निराकरण करने में सक्रिय भूमिका निभायेंगे। वैसे, राष्ट्रीयकृत बैंकों ने कृषि साख व्यवस्था के सुधार की दिशा में अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये, परन्तु उन्हें इस दिशा में सन्तोषजनक सफलता प्राप्त नहीं हुई तथा कृषक साहूकारों एवं महाजनों के चंगुल से पूर्णरूप से मुक्त नहीं हो सके हैं।

प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने देश की आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने के उद्देश्य से 01 जुलाई, 1975 को एक "बीस सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम" राष्ट्र के समक्ष प्रस्तुत किया। इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण ऋण ग्रस्तता को समाप्त करना तथा ग्रामीण विकास हेतु आर्थिक सहायता प्रदान करना था। इसके अन्तर्गत कृषकों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने के उद्देश्य से वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को स्थापित करने का निर्णय लिया गया था। ये बैंक प्रमुख रूप से छोटे कृषकों, कृषि श्रमिकों, ग्रामीण शिल्पकारों तथा ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग के लोगों के लिए ऋण प्रदान करने का कार्य करते हैं। इस प्रकार इन बैंकों के दो प्रमुख उद्देश्य हैः-

§1§ कृषि, व्यापार, वाणिज्य, उद्योगों तथा अन्य उत्पादक कार्यों के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध कराकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास करना, तथा

§2§ छोटे-छोटे कृषकों, कृषि श्रमिकों, ग्रामीण शिल्पकारों, साहसियों तथा अन्य सीमान्त कृषकों के लिए साख एवं अन्य सुविधायें प्रदान कर महाजनों एवं साहूकारों के शोषण से मुक्ति प्रदान करना है।

प्रादेशिक ग्रामीण बैंकों की स्थापना करने के लिए 26 सितम्बर, 1975 को एक अध्यादेश "दि रीजनल रूरल बैंक ओरडीनेंस, 1975" राष्ट्रपति द्वारा जारी किया गया था।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की प्रगति :-

भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की प्रगति तालिका नं० 3 में दर्शायी गयी है। छठीं पंचवर्षीय योजना में §1985§ तक 127 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकें थी, जो 270 जिलों को कवर किये हुए थी। जून, 1983 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की संख्या 142 थी, जिनकी शाखायें 6416 थी तथा इनकी जमा एवं अग्रिम धनराशि क्रमशः 48577 लाख एवं 55877 लाख थी।

तालिका नं० 3§अ§

Progress of RRBs

Year	No.of RRBs	No.of Branches	No.of District covered	Deposit Rs. in crores	Advanced Rs. in crores
1975	6	13	11	-	-
1976	40	489	84	7.7	-
1977	48	1187	99	33.0	-
1978	51	1754	102	74.1	-
1979	60	2420	114	123.2	-
1980	73	2678	130	164.0	-
1981	102	3598	172	253.0	181.0
1982	121	5393	207	382.0	463.0
1983*June	142	6413	247	517.9	623.7
March,84**	159	8213	281	698.0	809.0
***	183	10245	322	960.0	1081.0

Source: RBI quoted by CRAFICARD,P.514, From 1975 to 1979.
*Report on Trend & Progress of Banking in India,1982-83,P.53.
**Report on currency & Finance,1983-84,Vol.I,P.182.
***Report 8n Trend & Progress of Banking in India,1984-85,P.70

तालिका नं0 3(ब)

State-wise Offices of Regional Rural Banks
(as on June 30, 1983)

State	No.of RRBs	No.of Branches	No.of Districts
1. Andhra Pradesh	12	449	17
2. Assam	5	123	10
3. Bihar	17	1225	27
4. Gujrat	4	80	5
5. Haryana	2	135	5
6. Himachal Pradesh	1	64	3
7. Jammu & Kashmir	3	176	10
8. Karnataka	8	432	13
9. Kerala	2	225	4
10. Madhya Pradesh	18	650	31
11. Maharastra	3	117	8
12. Manipur	1	4	6
13. Meghalaya	1	5	3
14. Nagaland	1	-	7
15. Orissa	9	492	12
16. Punjab	3	-	6
17. Rajasthan	9	358	19
18. Tamil Nadu	1	108	2
19. Tripura	1	51	3
20. Uttar Pradesh	33	1310	40
21. West Bengal	8	412	16
	142	6416	247

* As at the end of March 1983, Data are provisional.

Source: Report on Trend and Progress of Banking in India 1982-83.

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक - एक विहंगम दृष्टि :-

प्रबन्ध :-

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को अनुसूचित बैंक प्रायोजित करते हैं। कुछ गैर सार्वजनिक क्षेत्रों के व्यापारिक बैंक तथा अनुसूचित राजकीय सहकारी बैंक भी क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के प्रायोजक होते हैं। प्रथम पाँच वर्षों के लिए प्रायोजक बैंक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक को प्रबन्धकीय सहायता देते हैं। इन बैंकों की अधिकृत पूँजी 01 करोड़ रूपये निर्धारित की गई है तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम में निर्गमित एवं 25 लाख प्रदत्त पूँजी निश्चित है। इन बैंकों ने अपनी अंशपूँजी इस प्रकार प्राप्त की थी- केन्द्र सरकार 50%, सम्बन्धित राज्य सरकार 15% तथा प्रायोजक व्यापारिक बैंक 35%

इनकी व्यवस्था संचालक मण्डल द्वारा की जाती है जिसमें 9 सदस्य होते हैं। संचालक मण्डल के अध्यक्ष की नियुक्ति सरकार के द्वारा की जाती है। इसके अतिरिक्त संचालक मण्डल के तीन सदस्यों की नियुक्ति सरकार द्वारा, तीन सदस्य सम्बन्धित प्रायोजक बैंक द्वारा तथा दो सदस्यों की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है।

ये बैंक सरकार द्वारा निश्चित की गई स्थानीय सीमाओं के अन्दर ही कार्य करते हैं। संचालक मण्डल प्रबन्ध चलाते समय व्यवसायिक सिद्धान्तों एवं सरकार द्वारा दिये गये आदेशों के अनुसार कार्य करता है। इन बैंकों को भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की द्वितीय सारिणी में शामिल कर लिया गया है। इस नियम में किये गये संशोधन के अनुसार रिजर्व बैंक इन बैंकों को राष्ट्रीय कृषि साख कोष से ऋण एवं अग्रिम प्रदान करता है। रिजर्व बैंक अन्य बैंकों की अपेक्षा इन बैंकों की एक रियायत भी प्रदान करता है। वह यह कि अनुसूचित बैंकों को अपनी जमाराशियों का 34% मात्र तरल सम्पत्तियों के रूप में रखना

पड़ता है जबकि प्रादेशिक ग्रामीण बैंकों के लिए यह मात्र 25% ही है। इसी तरह से अनुसूचित बैंकों को अपनी कुल माँग तथा समय देयताओं का 7% नगद में रखना पड़ता है, जबकि इन बैंकों को अपनी देयताओं का मात्र 3% भाग ही नगद रूप में रखना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, इन बैंकों द्वारा अर्जित ब्याज आयकर से मुक्त होते हैं। प्रादेशिक ग्रामीण बैंकों को रिजर्व बैंक पुनर्वित्त की भी सुविधायें प्रदान करता है। रिजर्व बैंक ने इन बैंकों का नियंत्रण 12 जुलाई, 1982 को नवस्थापित ग्रामीण विकास के राष्ट्रीय बैंक नाबार्ड को सुपुर्द कर दिया है।

क्रियाकलाप :-

प्रादेशिक ग्रामीण बैंकों की स्थापना उन चुने हुए क्षेत्रों में की गई थी, जहाँ व्यापारिक तथा सहकारी बैंकों की बैंकिंग सुविधायें अपर्याप्त थी। अप्रैल 1985 के अन्त तक 10245 शाखाओं के माध्यम से 21 प्रान्तों एवं 2 केन्द्र शासित प्रदेशों के 322 जिलों में 183 प्रादेशिक ग्रामीण बैंक कार्य कर रहे थे। एक अनुसूचित बैंक के रूप में ये जमा को गतिशील बनाते हैं और अपनी जमा पर बहुत हल्की उच्च ब्याज दर भी देने का अधिकार रखते हैं। दिसम्बर 1984 तक 173 प्रादेशिक ग्रामीण बैंकों की जमा पूँजी 960 करोड़ रूपये थी, जबकि अग्रिम धनराशि 1081 करोड़ रूपये थी। दिसम्बर 1984 के अन्त तक छोटे/सीमान्त किसानों, भूमिहीन मजदूरों, ग्रामीण शिल्पकारों और अन्य कमजोर वर्गों की प्रत्यक्ष अग्रिम धनराशि 968.6 करोड़ रूपये थी। कुल प्रत्यक्ष अग्रिम धनराशि का 92 प्रतिशत भाग कमजोर वर्गों का था। दिसम्बर 1984 के अन्त तक एकीकृत ग्राम्य विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत कुल उधार 211.1 करोड़ रूपये था, जो 976985 खातों में था।

प्रादेशिक ग्रामीण बैंकों की कार्यप्रणाली के पुनर्विचार हेतु जून 1970

में प्रो० एम०एल० दन्तवाला की अध्यक्षता में गठित समिति ने फरवरी 1978 में अपनी आख्या प्रस्तुत की। समिति की प्रमुख संस्तुतियां निम्न हैं:-

§1§ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का विस्तार ऐसे क्षेत्रों में किया जाना चाहिए जहाँ अपने न्यायिक क्षेत्र में जिला सहकारी बैंकें, प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों की सेवा करने में पर्याप्त समर्थ नहीं हैं।

§2§ जहाँ माध्यमिक स्तर पर सहकारी ढाँचा पर्याप्त मजबूत है, समिति ने महसूस किया कि साख अन्तराल इतना अधिक है कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकें एवं जिला सहकारी बैंकें आपसी समझबूझ के साथ बिना अपने हितों के टकराव के साथ-साथ काम कर सकते थे।

§3§ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के अधिकृत क्षेत्रों में काम करने वाले व्यापारिक बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों एवं उनकी शाखाओं को अपनी ग्रामीण साख के व्यापार को प्रोत्साहन देने का बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

भारत सरकार के परामर्श के अनुसार रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को अधिक वित्त देने का निश्चय किया ताकि अन्य किसानों जैसे अन्य छोटे एवं सीमान्त कृषकों को भी शामिल किया जाये। तथापित इसको सम्पूर्ण अग्रिम के निर्धारित प्रतिशत तक प्रतिबन्धित किया जाये। "अन्य किसानों" को वित्तीय सहायता में छूट केवल इस शर्त पर दी जानी थी, जैसे-

§अ§ नाबार्ड द्वारा पुनर्वित्त के लिए एकीकृत परियोजना में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकें भूमि विकास कार्यक्रमों में भाग लेते रहे हों।

§ब§ इस योजना के द्वारा बताये हुए विशिष्ट परियोजना क्षेत्रों के अन्तर्गत भूमि जोतने वाले वे लोग सम्मिलित है जिनको "अन्य

किसान" मानकर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकें वित्तीय सहायता देती हैं।

(स) परियोजना क्षेत्र के छोटे और सीमान्त किसानों को बढ़ावा देना चाहिए।

(द) छूट का सम्बन्ध कालिक ऋणों से हैं (ऋणों न कि फसल के रूप में अल्पकालीन ऋण) यदि ऐसे अल्पकालीन सम्पूर्ण ऋण के एक भाग नहीं है जिनको कि पुनर्वित्त के उद्देश्य से स्वीकृत किया गया है।

कृषि से सम्बन्धित प्रक्रिया एवं प्रार्थना पत्रों के सरलीकरण पर बल्देव सिंह कार्यकारी समूह की संस्तुतियों को क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा अपनाने की रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने भी सलाह दी। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक पर गठित स्टेयरिंग कमेटी ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की प्रगति पर निगरानी जारी रखी और उनके प्रमुख नीतिगत मुद्दों पर सरकार को उपयुक्त निर्देशन किया।

CRFICARD ने ग्रामीण साख में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की भूमिका परीक्षण किया और निम्नलिखित संस्तुतियाँ दी:-

(1) चूंकि ग्रामीण विकास कार्य के लिए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिक उपयुक्त है, अतः क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी शाखायें खोलने की अनुमति देने में प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

(2) व्यापारिक बैंकों को ग्रामीण शाखाओं को अपने लेन-देन क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को हस्तान्तरित करने के लिए रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया कदम उठा सकता है, जब इस प्रकार के प्रस्ताव प्रस्तुत किये जायें।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का संचालन :-

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को नवीन बीस सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत विविध

योजनाओं को अधिक शक्तिशाली ढंग से लागू करने की सलाह दी गई है। अन्य वित्तीय अभिकरणों के साथ-साथ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकें जनपद साख योजनाओं को बनाने और उनको लागू करने में भाग लेते हैं। नाबार्ड ने जुलाई 1983 से जून 1984 के मध्य 106 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को कुल 267 करोड़ रूपये की सीमायें स्वीकृत की थी। मार्च 1984 के अन्त तक इन सीमाओं तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त कुल धनराशि 231 करोड़ रूपये हुई। आगे की प्रगति के लिए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने नाबार्ड से दीर्घकालीन पुनर्वित्त का लाभ उठाया। नाबार्ड द्वारा दी जाने वाली दीर्घकालीन पुनर्वित्त सुविधा से क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकें लाभ उठाने के लिए व्यवहारिक योजनाओं को बनाने में असमर्थ है और इसका कारण बैंकों के पास तकनीकी कर्मचारियों की कमी। अतः नाबार्ड ने तकनीकी स्टाफ को सम्मिलित करने के लिए व अपने आर0 और डी0 निधि से इन बैंकों को सहायता देने का निश्चय किया है।

:: अध्याय षष्ठम् ::

सहकारिता के सम्बन्ध में सरकार की नीति

सहकारिता के विविध क्षेत्रों में सरकार की नीति

1. सहकारी साख
2. सहकारी विपणन
3. सहकारी खेती
4. सहकारी उपभोक्ता भण्डार
5. सहकारी आवास समितियाँ

सहकारी साख कृषकों को पूँजी प्रदान करने में ही केवल सहायता नहीं करता है, वरन् वह कृषि के अन्य क्षेत्रों में सहकारिता के माध्यम से आर्थिक दृष्टि से दुर्बल लोगों की आर्थिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करती है। अतएव सरकार की यह नीति रही है कि एकल सहकारी समितियों के स्थान पर बहुउद्देश्यीय समितियों के गठन एवं विकास पर महत्व दिया जाये तथा सहकारी साख को अन्य क्षेत्रों यथा उत्पादन कार्य, भण्डारण कार्य, विपणन कार्य तथा कृषि से सम्बन्धित अन्य कार्यों से सम्बन्धित किया जा रहा है।

अतएव केवल सहकारी ऋणों से ही सम्पूर्ण आर्थिक प्रक्रिया सम्पन्न नहीं हो जाती है, बल्कि आज उत्पादन के अतिरिक्त ऐसे संगठनों की भी आवश्यकता है जो कृषि से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सम्बन्ध रखते है। जैसे विधायन क्रियायें, श्रेणीकरण एवं प्रमापीकरण, पैकिंग, भण्डारण, उपभोक्ताओं की सुरक्षा, आवास व्यवस्था, मछली व्यवसाय, शिल्प और लघुस्तरीय उत्पादन के आधुनिकीकरण इत्यादि।

आज हमारे देश की कृषि अर्थव्यवस्था काफी पिछड़ी हुई दशा में है। अतएव इसकी उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि सहकारी साख के साथ ही साथ कृषि से सम्बन्धित अन्य क्रियाओं को प्रोत्साहित किया जाये। इस परिप्रेक्ष्य में सरकार भी काफी जागरूक हुई है, उसने सहकारी साख से अन्य सभी कृषि सम्बन्धित क्रियाओं को सम्बन्धित किया है, जिसके अन्तर्गत एकल समितियों के स्थान पर बहुउद्देश्यीय समितियों के गठन में विशेष बल दिया जा रहा है।

उपभोक्ता सहकारी समितियाँ :-

आर्थिक दृष्टि से एक अविकसित समाज में मानव जीवन सरल और सादा होता है। लोगों की आवश्यकतायें सीमित होती है। स्थानीय

उत्पादकों के निकट रहने के कारण उन्हें न तो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में कठिनाई होती है और न ही वस्तुओं के वितरण की कोई समस्या होती है। सभी वस्तुएं सरलता से उपलब्ध हो जाती है। परन्तु जब वहीं समाज आर्थिक विकास की दिशा में बढ़ने लगता है, तब सम्पूर्ण आर्थिक क्रियायें परोक्ष हो जाती है, उत्पादकों का उपभोक्ताओं से सम्पर्क समाप्त हो जाता है, उपभोक्ताओं को अपनी आवश्यक वस्तुएं प्राप्त करनेके लिए उन व्यक्तियों का सहारा लेना पड़ता है, जिन्हें मध्यस्थ कहते हैं। ऐसी स्थिति में एक नई अर्थ व्यवस्था जन्म लेती है, जिसे बाजार व्यवस्था कहते हैं।

बाजार व्यवस्था मध्यस्थों अथवा उन व्यापारियों के माध्यम से संचालित होती है, जो उत्पादकों की वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने का कार्य करते हैं। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में वे उत्पादकों या निर्माणकों से माल खरीदकर उनकी लागत में अपने व्यय तथा लाभ को जोड़कर उपभोक्ताओं से अधिक मूल्य वसूल करते हैं। इस मूल्यान्तर अथवा मूल्य विस्तार से न तो उत्पादकों को ही लाभ होता है और न उपभोक्ताओं को ही। उत्पादक को अतिरिक्त लाभ नहीं मिलता और उपभोक्ता का शोषण ही होता है। इसके अतिरिक्त मध्यस्थ व्यापारी अपने लाभ को बढ़ाने के उद्देश्य से मिलावट, निकृष्ट वस्तुओं की बिक्री, कालाबाजारी, अत्यधिक मूल्य प्राप्ति आदि विधियों द्वारा भी समाज का शोषण करने लगते हैं। इन सामाजिक बुराईयों से जनजीवन कष्टमय हो जाता है तथा उपभोक्ताओं की कठिनाईयाँ बढ़ जाती है।

यद्यपि उपभोक्ताओं की कठिनाईयाँ नियंत्रण तथा राशनिंग द्वारा की जा सकती है, तथापि ये उपाय न तो स्थायी रूप से अपनाये जा सकते हैं और न वे स्वयं में पर्याप्त ही हैं। वास्तव में वस्तुओं की वितरण व्यवस्था को समुचित रूप से संगठित किये बिना उपभोक्ताओं की कठिनाईयाँ दूर नहीं

की जा सकती है। वितरण व्यापार का समुचित संगठन एक ऐसे समाज में और भी अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण है, जहाँ सम्पूर्ण आर्थिक ढांचा लोकतांत्रिक समाजवादी सिद्धान्तों पर आधारित होता है। ऐसे समाज में उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए वितरण व्यापार पर समाज का नियन्त्रण आवश्यक है। यह नियन्त्रण उपभोक्ता सहकारी समितियों द्वारा ही सम्भव है। स्वयं उपभोक्ता अपना संगठन स्थापित कर सकते हैं और इसके माध्यम से उपभोग वस्तुओं का उचित ढंग से उचित मूल्य पर वितरण करते हुए सम्पूर्ण व्यापारिक क्षेत्र में स्वस्थ्य वातावरण का निर्माण कर सकते हैं।

भारत जैसे देश में जहाँ संविधान में एक कल्याणकारी राज्य स्थापित करने का आदर्श स्वीकार किया गया है तथा नियोजित अर्थव्यवस्था द्वारा समाजवादी समाज की रचना के लक्ष्यकी प्राप्ति के लिये आवश्यक प्रयत्न किये जा रहे हैं, उपभोक्ता सहकारी समितियों का विशेष महत्व है। नियोजित अर्थव्यवस्था का सर्वप्रथम लक्ष्य ही समाज का आर्थिक एवं सामाजिक हित एवं कल्याण है। इस लक्ष्य का आधार है। उपभोक्ताओं की संतुष्टि तथा उनके हितों की सुरक्षा, जो बिना उपभोक्ता सहकारिता समितियों के विकास एवं प्रसार के सम्भव नहीं है। यही कारण है कि राष्ट्रीय नियोजन में सहकारिता आन्दोलन के इस पक्ष पर विशेष ध्यान दिया गया है। वास्तव में मूल्य वृद्धि के कारण उपभोक्ताओं को होने वाली कठिनाईयों को दूर करने के लिए उपभोक्ता सहकारी भण्डारों तथा उपभोक्ता सहकारी समितियों के निर्माण को अधिक प्रोत्साहन दिया जाता है।

उपभोक्ता सहकारी भण्डार उपभोक्ताओं का एक ऐसा ऐच्छिक संगठन है, जो उपभोग वस्तुओं तथा सेवाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के उद्देश्य से स्थापित किया जाता है। इस प्रकार के भण्डार फुटकर तथा थोक व्यापार करने के साथ-साथ कभी-कभी उपभोग वस्तुओं का उत्पादन तथा

प्रोसेसिंग या विधिकरण भी करते हैं।

लेकिन किसी भी व्यावसायिक संस्था की रक्तमज्जा उसकी पूँजी है, उसके सफल संचालन के लिये उसके पास पर्याप्त मात्रा में पूँजी का होना आवश्यक है। पिछले अनुभवों में यह सिद्ध हो चुका है कि उपभोक्ता भण्डार के सम्बन्ध में भी यह सिद्धान्त लागू होता है। केवल उपभोक्ता भण्डार खोल देना ही काफी नहीं है। उसके जीवित रहने के लिये यह आवश्यक है कि उसका वित्तीय ढाँचा मजबूत हो, इसके अभाव में ही विगत कुछ वर्षों में बहुत से उपभोक्ता भण्डारों को बन्द करना पड़ता है।

उपभोक्ता भण्डारों की अतिरिक्त तथा बाहरी दोनों ही स्रोतों से वित्तीय साधन प्राप्त होते हैं। उनकी अंश पूँजी, रक्षित तथा अन्य कोष तथा सदस्यों की जमा राशियाँ आन्तरिक वित्तीय साधनों के स्रोत है। सरकार तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से प्राप्त ऋण उनके बाहरी तथा वित्तीय साधनों के स्रोत हैं।

सहकारी विपणन :-

कृषि की उन्नति का कृषि उत्पादन के विक्रय से गहरा सम्बन्ध है। यदि कृषक अपनी उपज को उचित लाभ के साथ बेच सकता है, तो निश्चित ही उसे फसल पैदा करने में बड़ा प्रोत्साहन मिलता है। दुर्भाग्य से हमारे देश में कृषि उपज की बिक्री की दशा अत्यन्त शोचनीय है, जिससे कृषक को अपार हानि उठानी पड़ती है। अधिकतर कृषि उपज व्यक्तिगत व्यापारियों के माध्यम से बेची जाती है, जो कृषक की कमजोरी का पूरा-पूरा लाभ उठाकर उसका पूरी तरह शोषण करते हैं। इसके अतिरिक्त कृषक वर्ग इतना बिखरा हुआ है कि वह संगठित होकर व्यापारी वर्ग का सामना करने में असमर्थ रहा है। साथ ही

सदियों तक किसान महाजनों के चंगुल में फँसे रहे हैं और ऋणग्रस्त होने के कारण वे अपनी उपज अपने ऋणदाता महाजनों को ही बेचते रहे हैं। यहाँ तक कि मूलधन तथा ब्याज का भुगतान करने के लिये वे फसल के कटते ही उसे बेचने के लिए बाध्य हो जाते हैं। यही कारण है कि उन्हें उपज का उचित मूल्य प्राप्त नहीं हो पाता है।

उपर्युक्त कठिनाईयों के अतिरिक्त कृषि विपणन में कई दोष भी रहे हैं, जो आज भी विद्यमान है। इन दोषों को दूर करने के लिये कृषि वस्तुओं की विक्रय व्यवस्था क्रमबद्ध, वैज्ञानिक तथा सुसंगठित होनी चाहिए। इसके लिए सहकारी विपणन पद्धति ही उपयुक्त है। किसानों द्वारा स्वयं अपनी उपज की बिक्री व्यवस्था संचालित किये जाने पर उनको मध्यस्थों से मुक्ति मिल सकेगी तथा वे संगठित होकर उनका सामना कर सकेंगे। सहकारिता के आधार पर सम्पूर्ण विपणन व्यवस्था संगठित करने पर ही कृषकों की आर्थिक स्थिति में सुधार सम्भव हो सकता है। शाही कृषि आयोग के अनुसार "हमारा आदर्श सहकारी बिक्री समितियाँ होना चाहिए, जोकि किसान की उपज पैदा करने और उसे तैयार करने के सम्बन्ध में शिक्षा प्रदान करेगी, बाजार के लिए भी उपज की एक पर्याप्त मात्रा एकत्र कर सकेगी। जिससे कि (वस्तुओं का) कुशल वर्गीकरण सम्भव हो जाये। इस प्रकार वे किसानों को निर्यात बाजार के सम्पर्क में आयेगी।"

प्रत्येक आर्थिक उद्यम अथवा उपक्रम के संचालन के लिये वित्त या धन आवश्यक है। विपणन समितियों को भी विपणन सम्बन्धी कार्य के लिये अंशकालीन तथा दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता पड़ती है। प्रत्येक समिति की वित्तीय आवश्यकतायें कई तत्वों द्वारा निर्धारित होती है। जैसे उनकी कुल बिक्री उस क्षेत्र में प्रचलित व्यवसायिक तथा अन्य परम्परागत रीतियाँ व्यापारिक साख या ऋण आदि। इसके अतिरिक्त वे शर्तें भी जिन पर किसी

समिति को वितरण के लिए कृषि उत्पादन के साधन तथा उपभोग वस्तुएं उपलब्ध हो सकती है। उसकी वित्तीय आवश्यकताओं को निर्धारित करती हैं। समितियों को निम्न कार्यों के लिये अल्पकालीन ऋण की आवश्यकता पड़ती है:-

1. सदस्यों को उनकी उपज की जमानत पर उस समय तक ऋण देने के लिए जब तक कि वह बिक नहीं जाती है।

2. उपज के क्रेताओं को प्रचलित व्यापारिक साख प्रदान करने के लिए अर्थात् कुछ समय तक के लिए उनको माल उधार खरीदने की सुविधा देने के लिए।

3. आवश्यकता पड़ने पर अपने सदस्यों से उनकी उपज को प्रत्यक्ष खरीद के लिए ।

4. सरकारी वसूली तथा मूल्य में स्वामित्व लाने की योजना के अन्तर्गत किसानों से उनकी उपज खरीदने के लिए।

5. कृषि उत्पादन के साधनों जैसे उर्वरकों, बीजों, कीटनाशक औषधियों, कृषि उपकरणों आदि को उस सीमा तक संग्रह करने के लिये जिस सीमा तक कि वे सरकार से चालान तथा ऋण पर प्राप्त नहीं किये जा सकते।

6. ग्रामीण क्षेत्र में ग्रामीण समितियों के द्वारा वितरित को जाने वाली सामान्य माँग की उपभोग वस्तुएं एकत्र करने के लिए ।

7. समिति के प्रशासन सम्बन्धी व्ययों जैसे कर्मचारियों के पारिश्रमिक, भवन तथा गोदाम के किराये, सम्भाव्य हानियों आदि की पूर्ति के लिये ।

दीर्घकालीन वित्त :-

विपणन समिति को निम्नलिखित कार्यों के लिये दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता पड़ती है:-

1. प्रारम्भिक उपकरण तथा फर्नीचर आदि क्रय करने के लिये।
2. सहकारी केन्द्रीय बैंकों, शीर्ष अथवा जिला विपणन समितियों, थोक उपभोक्ता स्टोर्स आदि के अंश खरीदने के लिये।
3. सरकार अथवा व्यापारियों से खरीदे जाने वाले माल के लिए जमानत जमा करने के लिये।
4. प्रोसेसिंग इकाईयाँ स्थापित करने के लिए पूँजीगत लागत की व्यवस्था के लिये।
5. कृषि उपज, उपभोग वस्तुओं तथा कृषि उत्पादन सम्बन्धी आवश्यक उपकरणों को संग्रह करने के लिये तथा गोदामों के निर्माण के लिये।

वित्त के स्रोत :-

विपणन समितियाँ निम्नलिखित स्रोतों से वित्त प्राप्त करती हैं:-

1. समिति की अंशपूँजी में सरकार तथा सदस्यों के अंशदान ।
2. समिति के पास सदस्यों के जमा धन ।
3. उपार्जित लाभों से निर्गत कोष ।
4. सहकारी वित्तीय संस्थाओं तथा स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया से प्राप्त ऋण ।
5. राज्य सरकार से प्राप्त ऋण तथा अनुदान ।

सहकारी आवास समितियाँ :-

आवास या मकान की समस्या सर्वव्यापी समस्या है। विश्व के करीब सभी देशों में मकानों की कमी पाई जाती है। जहाँ तक कि संयुक्त राज्य अमेरिका, स्वीडन तथा स्विटजरलैण्ड जैसे समृद्धशाली देश भी इस बात का दावा नहीं कर सकते कि उन्होंने इस समस्या को हल कर लिया है। सन् 1936 में संयुक्त राष्ट्र अमरीका के तत्कालीन प्रेसीडेंट रूजवेल्ट ने कहा था कि राष्ट्र का एक तिहाई भाग अच्छे मकानों में निवास नहीं करता है। 1964 में यह अनुमान लगाया गया था कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के 20 से 25 प्रतिशत लोग उस समय भी मध्य स्तरीय मकानों में निवास करते हैं। परन्तु विकास देशों जैसे एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका में जनसंख्या विस्फोट अर्थात् जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि के कारण आवास समस्या बहुत ही गम्भीर हो गई है। जनसंख्या में वृद्धि के साथ औद्योगिकीकरण का विकास होने के कारण आवास की कमी और भी महसूस की जाने लगी है।

भारत में आवास समस्या और भी गम्भीर हो गयी है। छठवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप के अनुसार देश में पाँचवीं योजना के अन्त में 1.56 करोड़ मकानों की कमी थी- 1.18 करोड़ ग्रामीण क्षेत्रों में व 38 लाख शहरी क्षेत्रों में यह अनुमान न्यूनतम स्वीकृत प्रमाण पर आधारित है।

पिछले दस वर्षों में स्थायी रियाहसी मकानों का निर्माण प्रति एक हजार व्यक्तियों पर एक मकान की दर से हुआ है। यह दर संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा निर्धारित दर से बहुत ही कम है, जोकि 10 मकान प्रति हजार व्यक्तियों की है। इस कार्य की पूर्ति के लिए निजी क्षेत्र पर विश्वास नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह केवल धनी तथा मध्यम वर्गीय लोगों के लिये ही मकानों का निर्माण कर सकता है। सामान्य वर्ग के लोगों के लिये

मकानों का निर्माण बड़े पैमाने पर शीघ्र करना होगा, जिसके लिये निजी क्षेत्र कभी भी तैयार न होगा। यहाँ तक कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में निजी ने यह स्वीकार किया है कि वह उन लोगों के लिये अच्छे मकानों की व्यवस्था नहीं कर सकता, जो निम्न स्तर के मकानों में रह रहे हैं। इससे यह स्पष्ट है कि राज्य को गृह निर्माण कार्य अपने हाथों में लेना होगा तथा उन संस्थाओं की सहायता करनी होगी जो इस समस्या को हल करने में उसकी सहायता कर सकती है।

इस संदर्भ में ही सहकारिता का विशेष महत्व हैं क्योंकि यह पारस्परिक सहयोग एवं आत्म सहायता की भावना का विकास करके इस समस्या को हल करने में सहायक सिद्ध हो सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय सहकारिता संघ ने अभी हाल में ही यह घोषित किया है कि जहाँ पर भी गृह निर्माण कार्य के लिये सहकारी सिद्धान्तों तथा विधियों का प्रयोग किया गया है, वहाँ ये सर्वथा उपयुक्त सिद्ध हुई है तथा उन्होंने न केवल उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को संतुष्ट किया है, बल्कि समाज की आवश्यकता की पूर्ति की है। इसी आधार पर संघ ने यह सुझाव दिया है कि सहकारी गृह निर्माण को उचित अवसर प्रदान किये जाने चाहिए तथा इस कार्य में आवश्यक सहायता भी दी जानी चाहिए।

भारत में गृह निर्माण सहकारी समितियों के संगठन पर निर्भर है जो बहुत ही कम है। मकानों का निर्माण इस धीमी गति से होने के कारण ही आवास की समस्या इतनी गम्भीर हो गयी है। यही कारण है कि गन्दी बस्तियों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। ये बस्तियाँ भंयकर बीमारियों तथा सामाजिक बुराईयों का घर बन गयी है। सामाजिक कल्याण पर विचार करने वाले कार्यकारी दल के अनुसार शहरी आबादी का बहुत बड़ा भाग ऐसे मकानों में रहता है, जो मनुष्यों के रहने के लिये सर्वथा अनुपयुक्त हैं।

वास्तव में यह एक आश्चर्यजनक एवं खेदपूर्ण स्थिति ही है कि देश में उपयुक्त आवास व्यवस्था न होने पर भी उस पर व्यय की जाने वाली धनराशि का प्रतिशत निरन्तर कम होता जा रहा है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में गृह निर्माण पर किये गये व्यय का प्रतिशत 34 था, जो घटकर तृतीय पंचवर्षीय योजनाकाल में 15 प्रतिशत के बराबर हो गया। यह अनुमान लगाया गया है कि चौथी पंचवर्षीय योजना में आवास व्यवस्था पर केवल 11 प्रतिशत विनियोग ही सम्भव हो सकेगा। राज्य सरकारों ने न केवल आवास व्यवस्था को कम महत्व प्रदान किया है बल्कि उनके लिये वित्तीय साधनों का प्रयोग अन्य कार्यों के लिये किया है। इस प्रकार की वस्तुस्थिति हास्यास्पद है, जबकि हम समाजवादी राज्य की स्थापना के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा कर चुके हैं तथा राज्य नीति के निर्देशों के अन्तर्गत भोजन, वस्त्र तथा आवास की व्यवस्था करना सरकार का प्रमुख कर्तव्य है। यह ठीक है कि भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ वित्तीय साधनों का अभाव है, आवास की उचित व्यवस्था करने पर अधिक धन व्यय नहीं किया जा सकता। परन्तु इस समस्या की उपेक्षा भी बहुत समय तक नहीं की जा सकती। एशिया तथा सुदूरपूर्व के लिये आर्थिक आयोग ने भी 1967 में ECAFE क्षेत्रों के विकासशील देशों को आवास व्यवस्था के कार्यक्रमों को प्राथमिकता प्रदान करने पर विशेष जोर दिया था।

आवास व्यवस्था के सम्बन्ध में धीरे-धीरे यह स्पष्ट होता जा रहा है कि मकानों के निर्माण के लिये वित्तीय साधनों की पूर्ति पर विचार करने के लिये संगठित कार्यकारी दल ने सन् 1964 में यह सुझाव दिया था कि सहकारी क्षेत्र में गृह निर्माण कार्य को विकसित करने के लिए सभी सम्भव उपाय किये जाने चाहिए। इस दल के विचार में सहकारिता ही एक ऐसी सर्वोत्तम व्यवस्था है, जिसके अन्तर्गत ऐसे निम्न तथा मध्यम आय के लोग जो अपनी

व्यक्तिगत चेष्टाओं से स्वयं अपना मकान बनवाने में असमर्थ है, उचित लागत पर अच्छे मकानों का निर्माण करने में समर्थ हो सकते हैं।

अतः सहकारी समितियों के विकास के लिये यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि इनके विकास के लिये साख की व्यवस्था करना होगा, तभी हम सहकारिता के असली उद्देश्य तक पहुँचने में समर्थ हो सकते हैं।

सहकारी खेती :-

भारत चिरकाल से एक कृषि प्रधान देश रहा है। यहाँ की अर्थ-व्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। अनुमान यह है कि समस्त जनसंख्या का लगभग 69 प्रतिशत भाग उदर पालने के लिये कृषि पर निर्भर है तथा देश के राष्ट्रीय उत्पादन का लगभग आधा भाग (45 प्रतिशत) कृषि तथा कृषि से सम्बन्ध रखने वाले कार्यों से ही उत्पन्न होता है। यहाँ तक कि निर्यात से प्राप्त होने वाली विदेशी मुद्रा का 40 प्रतिशत भाग कृषि सामग्रियों के निर्यात से मिलता है। वास्तव में भारत जैसे देश में लोगों का समृद्धि एवं खुशहाली कृषि की उन्नति पर ही निर्भर है। कृषि न केवल मानव के पेट भरने का साधन है, बल्कि कृषि से हमारे बढ़ते हुए उद्योगों के लिये कच्चा माल मिलता है तथा इससे कई अन्य प्रकार की ऐसी सामग्री भी प्राप्त होती है, जिसके बदले में हम विदेशी मुद्रा भी प्राप्त करते हैं।

भारतीय इतिहास इस तथ्य का प्रमाण है कि भारत की प्रत्येक राज्य सत्ता ने सदैव से कृषि की उन्नति की ओर अपना ध्यान दिया है। स्वतन्त्रता के बाद हमारी राष्ट्रीय सरकार ने कृषि उन्नति व भूमि सुधारों पर विशेष ध्यान दिया है, परन्तु इतना सब होते हुए भी आज हमारे ग्रामों की आर्थिक अवस्था सन्तोषप्रद नहीं है और हमारी कृषि व्यवस्था अभी तक पिछड़ी हुई है। इसका प्रमुख कारण यह है कि भारतीय कृषक वर्ग के लिये कृषि

न तो कोई उद्योग है और न ही कोई व्यवसाय है, वह अभी केवल उसकी उदर पूर्ति का एक मात्र साधन रहा है। यहाँ जोत की इकाईयाँ इतनी छोटी है तथा इस तरह बिखरी हुई है कि हमारा किसान उन पर किसी भी आधुनिक कृषि प्रणाली को लाभ से नहीं अपना सकता। इन छोटे-छोटे अनार्थिक भूमि खण्डों के कारण विदेशियों ने भारतीय कृषि प्रणाली को "ट्वाय फार्मिंग" अथवा "पॉकेट हैण्डकरचीफ फार्मिंगं" कहकर उसका उपहास किया है। वास्तविकता भी यही है। अनार्थिक जोत की इकाईयों के कारण ही भारतीय किसान समझदार एवं अनुभवी होते हुए भी उत्पादन शक्ति में पिछड़ा हुआ है। वह केवल उतना ही उत्पादन कर पाता है, जिससे वह कठिनता पूर्वक अपना व अपने कुटुम्ब का पालन कर सके।

कृषक वर्ग की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए कृषि का उत्पादन बढ़ाना तथा कृषि को आधुनिक रूप से उन्नत करना नितान्त आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए देश में बड़े पैमाने पर खेती ही एक उपयुक्त साधन है। कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के लिये भूमि, श्रम, खेती के उपकरणों, बैलों, सिंचाई के साधनों, बीज, खाद, वित्त संग्रह, यातायात तथा विपणन की सुविधाओं तथा प्राविधिक ज्ञान की समुचित व्यवस्था करना तथा उन्हें प्रयोग में लाना भी बहुत ही आवश्यक है। इन सभी साधनों के नियोजित संयोग से ही आर्थिक आधार पर बड़े पैमाने पर खेती की जा सकती है।

अतएव कृषि के समुचित विकास के लिये यह आवश्यक है कि कृषक की आवश्यक जरूरतों को पूरा किया जाये और यह पूर्ति केवल सहकारी साख से ही सम्भव हो सकती है। अतः सहकारी कृषि साख को कृषक की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पूर्ण रूप से प्रोत्साहित करना चाहिए, जिससे कृषि के साथ ही साथ देश का भी विकास सम्भव हो सके।

:: अध्याय सप्तम् ::

सहकारी साख का मूल्यांकन

1. सहकारी साख की सफलतायें

2. सहकारी साख की समस्यायें एवं कठिनाईयाँ

सहकारी साख की सफलतायें

बुन्देलखण्ड सम्भाग में सहकारी संस्थाओं ने कृषि वित्त के क्षेत्र में कृषकों एवं कृषि श्रमिकों को सस्ती ब्याज दर पर सहकारी साख उपलब्ध कराने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। सम्भाग की प्राथमिक कृषि सहकारी समितियाँ अपने सदस्यों को 12 प्रतिशत से लेकर 14 प्रतिशत तक ब्याज दर पर फसल ऋण एवं मध्यकालीन ऋण प्रदान कर रही हैं। भूमिहीन श्रमिकों को बिना ब्याज परसमितियों का सदस्य बनने के लिए मध्यकालीन ऋण भी दिया जा रहा है। भूमि विकास बैंकें सिंचाई के साधन जुटाने, भूमि पर स्थायी सुधार करने एवं अन्य कृषि से सम्बन्धित क्रियाओं के लिए सम्भाग में 7 वर्षीय ऋण सरल किस्तों में भुगतान की सुविधा प्रदान कर छोटे कृषकों को 10 प्रतिशत एवं अन्य कृषकों के लिए 12.5 प्रतिशत ब्याज दर पर दिया जा रहा है। जिससे अब सम्भाग के पाँचों जनपदों में कृषकों एवं कृषि श्रमिकों को महाजनों एवं साहूकारों से ऋण लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

सहकारी साख की प्रमुख एक विशेषता यह है कि समितियों द्वारा स्वीकृत साख की राशि का 40 प्रतिशत नगद एवं 60 प्रतिशत वस्तु के रूप में कृषकों को प्रदान की जाती है। जिससे कृषक कृषि में उन्नत बीज, रासायनिक खाद एवं कृषि यंत्रों का प्रयोग बड़ी आसानी से करने लगा है। फलतः सम्भाग के सभी जनपदों में प्रति हेक्टेयर उर्वरकों का प्रयोग जो वर्ष 1980 में 24.42 किग्रा० था, वर्ष 1988-89 में बढ़कर लगभग 38.48 किग्रा० हो गया। भूमि विकास बैंकों के दीर्घकालीन ऋणों ने सम्भाग में सिंचाई के साधनों को बढ़ाने में काफी सहायता की है। सस्ती सहकारी साख उपलब्ध होने, कृषि यंत्रों की आपूर्ति एवं सहकारी संस्थाओं द्वारा उन्नत बीज, उर्वरक तथा दवाओं आदि के प्रयोग से प्रति हेक्टेयर उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई है, जिससे सम्भाग की प्रति व्यक्ति आय व राष्ट्रीय आय में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

सहकारी साख संस्थाओं की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि ये संस्थायें सम्भाग में अनुसूचित जाति/जनजाति, निर्बल वर्ग एवं ग्रामीण गरीब दस्तकारों की सहायता कर रही हैं। जिला विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत अनुसूचित जाति एवं भूमिहीन मजदूरों तथा दस्तकारों को सहकारी साख समितियों के द्वारा ऋण प्रदान कर विशेष सहायता कृषि व्यवसाय करने एवं रोजगार दिलाने हेतु की जा रही है, जिसमें पशुपालन, बढ़ईगीरी, चमड़े का कार्य आदि शामिल है।

सम्भाग में सहकारी साख समितियों ने कृषि एवं सम्बन्धित अन्य व्यवसायों में लगे हुए लोगों को जीवन रक्षक आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की आपूर्ति करके एक ओर जहाँ गरीब लोगों को मुनाफाखोर शोषण से बचाया है, वहीं दूसरी ओर मुद्रा बाजार को संगठित करके मूल्य नियंत्रण करने में सहकारी नीतियों में सहयोग दिया है। जिला विकास के अनेक कार्यक्रमों यथा एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम, स्पेशल कम्पोनेन्ट कार्यक्रम तथा बीस सूत्रीय कार्यक्रम में सहकारी संस्थायें हाथ बटा रही हैं। यही कारण है कि सम्भाग में परिवार नियोजन, वृक्षारोपण एवं शैक्षिक प्रसार आदि राष्ट्रीय कार्यक्रमों का क्रियान्वयन भी सहकारी साख संस्थाओं को सौंपा गया है। सम्भाग के प्रत्येक जनपद की समस्त समितियों में केडर के वैतनिक सचिवों, पर्यवेक्षकों एवं प्रबन्ध निदेशकों की नियुक्ति की गई है, जिससे इन संस्थाओं के संचालन में सुधार हुआ है और सदस्यों में बचतों को प्रोत्साहन देकर जमाराशियों को बढ़ाकर पूँजी निर्माण में वृद्धि हुई है। सहकारी साख संस्थाओं ने एक ओर सम्भाग के प्रत्येक जनपद में एक ओर कुशल नेतृत्व, ईमानदारी, पारस्परिक सहयोग एवं चारित्रिक विकास जैसे मूल्यों का प्रोत्साहन दिया है, वहीं दूसरी ओर प्रजातान्त्रिक पद्धति को विकसित करने एवं सामुदायिक कल्याण की भावना को सुदृढ़ बनाने में सहयोग प्रदान किया है।

सहकारी साख की कठिनाईयाँ एवं समस्यायें:-

बुन्देलखण्ड सम्भाग के सभी जनपदों में सहकारी साख संस्थाओं की प्रगति एवं कृषि साख के क्षेत्र में प्राप्त उपलब्धियों के आंकड़ों के अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि इन संस्थाओं द्वारा सम्भाग के प्रत्येक जनपद में गरीब कृषकों, श्रमिकों तथा निर्बल वर्ग के लोगों की पर्याप्त मात्रा में सहायता की जा रही है, लेकिन इन क्रियाकलापों को केवल आंकड़ों के आधार पर सन्तोषजनक अंकित नहीं किया जा सकता है। जिन आशाओं एवं उम्मीदों के साथ सहकारी आन्दोलन को प्रारम्भ किया गया है, उन्हें अभी तक पूरा नहीं किया जा सका है। सहकारी समितियाँ एवं बैंक सम्भाग में कृषि वित्त की आवश्यकताओं को पूरा करने में सफल नहीं हो सकी हैं और अभी भी बहुत सी समितियाँ या तो निष्क्रिय पड़ी हुई हैं या पुरानी परपाटी को पीटती चली आ रही हैं। यही कारण है कि सहकारी साख की आवश्यकताओं को देखते हुए व्यवसायिक बैंकों को भी कृषि वित्त की आवश्यकताओं की पूर्ति करने एवं ग्रामीण आर्थिक विकास को गति देने के लिए अग्रणी बैंक योजना के माध्यम से सहकारी साख संस्थाओं का सहयोगी बनाया गया है।

देश के अन्य भागों की तरह बुन्देलखण्ड सम्भाग के सभी जनपदों में भी सहकारी समितियाँ प्रयोग के आधार पर चलाई जा रही है और अभी तक सहकारी साख संस्थाओं का कोई अन्तिम संगठित रूप नहीं आ सका है। सम्भाग में सहकारी साख संस्थाओं के विकास में प्रमुख बाधायें एवं कार्य प्रणाली में मुख्य कमियाँ निम्न हैं:-

(1) अपर्याप्त ऋण :-

सहकारी समितियों द्वारा जो ऋण दिया जाता है वह बहुत ही अपर्याप्त है। सम्भाग के जिलेवार आंकड़ों से पता चलता है कि प्रति हेक्टेयर

रू020/- से रू045/- तक अल्पकालीन ऋण दिये गये हैं, जबकि प्रदेश के अन्य भागों में यह ऋण की राशि अधिक है। उल्लेखनीय बात यह है कि बुन्देलखण्ड सम्भाग उत्तर प्रदेश का सबसे पिछड़ा हुआ सम्भाग है, फिर भी सहकारी ऋण की उपलब्धता न्यून है।

§2§ ऋण योजनाओं के क्रियान्वयन में कठिनाई:-

यद्यपि सहकारी साख संस्थाओं ने सम्भाग की साख योजनाओं को तैयार करने में कुछ विशेष उपलब्धियाँ अर्जित की है, फिर भी ऋण योजनाओं के क्रियान्वयन में अनेक कठिनाईयाँ एवं समस्यायें आई हैं, जोकि निम्न हैं:-

1. साख योजना के क्रियान्वयन की प्रमुख कठिनाई सम्भाग के सभी जनपदों में साख योजनाओं में विभिन्न सहकारी संस्थाओं के मध्य लक्ष्यों का वितरण असमान एवं अनुचित होना है। सहकारी अधिकारी बैंकों के उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप लक्ष्यों का निर्धारण नहीं करते, बल्कि अपनी स्वेच्छा व सुविधा की दृष्टि से करते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि ऋण योजनायें खण्डवार तैयार की जाती है, जबकि गाँवों के अनुसार शाखाओं का परिचालन क्षेत्र अस्पष्ट होता है। फलस्वरूप ये संस्थायें वार्षिक कार्य योजनाओं के अन्तर्गत उन्हें दिये गये समस्त लक्ष्यों को ध्यान में रखते हैं, परन्तु योजनावार ऋण आवंटन के लक्ष्यों की अवहेलना कर देते हैं।

2. जनपद साख योजनायें जनपद अथवा खण्ड स्तर में सामूहिक आंकड़ों को एकत्र करके तथा पिछली योजनाओं के समग्र रूप से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर तैयार की जाती है। इन योजनाओं में कमी यह रह जाती है कि ये जनपद स्तर अथवा खण्ड स्तर पर तो बहुत हो जाती है, परन्तु ऐसे गाँवों के लिए जहाँ पहले से इन

योजनाओं के कार्य क्षेत्र का लाभ उठा लिया गया है, अव्यवहारिक होती है। अतः ग्रामीण क्षेत्रों का सर्वेक्षण गाँवों की स्थिति के अनुसार ग्रामीण ऋण योजनायें तैयार की जानी चाहिए। परन्तु इस कार्य हेतु सभी सहकारी संस्थाओं के अधिकारियों के पास पर्याप्त समय एवं साधनों का अभाव है।

3. ऋण योजनाओं के क्रियान्वयन की तीसरी कठिनाई ग्रामीण क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा में कर्मचारियों की कमी है। इस कमी के कारण कृषि, कृषि सम्बन्धी क्रियाओं व लघु उद्योगों आदि के लिए पर्याप्त मात्रा में साख की आवश्यकताओं का अनुमान लगाना कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में नियुक्त अधिकारी कर्मचारी ग्रामों से सम्बन्धित न होने के कारण न तो रूचि से कार्य करते हैं और न ही ग्रामीण जनसमुदाय सौहार्दपूर्ण व्यवहार करते हैं। इससे उनकी कार्यकुशलता में कमी तो आ ही जाती है साथ ही ऋण का समुचित वितरण भी सम्भव नहीं हो पाता है।

ऋण वितरण सम्बन्धी कठिनाईयाँ :-

कृषकों को सहकारी संस्थाओं से ऋण प्राप्त करने के लियेअनेक प्रक्रियाओं को सम्पन्न करना होता है तथा ऋण लेने के लिये बैंक द्वारा निर्धारित प्रार्थना पत्रों को पूर्ण करना, क्षेत्र विशेष की अन्य बैंकों से अदेयता प्रमाण पत्र लाना, भू-अभिलेखों की अद्यतन नकलें प्रस्तुत करना, बैंक के विभिन्न दस्तावेजों का निष्पादन, एक या इससे अधिक जमानतगीर की व्यवस्था करना, भूमि को रहन करना, सरकार द्वारा निर्धारित उच्च दरों पर स्टाम्प ड्यूटी का भुगतान करना तथा नाबार्ड द्वारा निर्धारित अंशधन का प्रबन्ध करना आदि।

उक्त समस्त प्रक्रियाओं को सम्पन्न करने में बहुत समय लगता है, जिससे

ऋणियों को विलम्ब से ऋण प्राप्त हो जाता है। अतः समय से ऋण उपलब्ध न होने के कारण उनके अनेक आवश्यक कृषि कार्यों में गतिरोध उत्पन्न हो जाता है, जिससे कृषि उत्पादकता प्रभावित होती है। कभी-कभी यह विलम्ब ऋणियों की ओर से भी हो जाता है क्योंकि ऋण प्राप्ति के लिये अभ्यर्थियों को अनेक जटिल प्रक्रियाओं को पूर्ण करना होता है जिसे गाँव के भोले भाले तथा निरक्षर व्यक्ति निर्धारित अवधि में सम्पन्न नहीं कर पाते हैं। कुछ कृषक तो उक्त प्रक्रियाओं को सम्पन्न करने से ही घबराते हैं और प्रायः संस्थाओं की सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं। इसके अतिरिक्त वित्तीय संस्थाओं द्वारा ऋण वितरण की प्रक्रिया अधिक खर्चीली भी है। उदाहरणार्थ जालौन जनपद में जहाँ कुल कृषकों के लगभग 67 प्रतिशत लघु एवं सीमान्त कृषक है, उनके लिये निर्धारित अंशधन एवं स्टाम्प शुल्क हेतु वित्त की व्यवस्था निजी साधनों से करना कठिन होता है। अतः अधिकांश कृषकों को कृषि साख से वंचित होना पड़ता है। परिणामतः कृषि की आधुनिकतम तथा तकनीकी विधियों से कृषि करने के स्थान पर कृषकों को परम्परागत तरीकों से ही कृषि कार्यों को सम्पन्न करने के लिये विवश होना पड़ता है।

ऋणों के उपयोग सम्बन्धी कठिनाईयाँ :-

सहकारी संस्थाओं द्वारा वितरित ऋणों की शत-प्रतिशत वसूली सदुपयोगिता की कसौटी है अर्थात् शत-प्रतिशत वसूली उस तथ्य का प्रमाण है कि ऋणों का उपयोग उत्पादक कार्यों के लिए किया जा रहा है। ऋणों की वसूली का 75 प्रतिशत से कम होना इस बात का साक्ष्य है कि ऋण जिन कार्यों के लिए वितरित किया गया, उसका उपयोग उन अभीष्ट कार्यों हेतु नहीं हो रहा है। सम्भाग के जनपदों में यह प्रवृत्ति देखने को मिली कि बहुत से ऋणी बैंकिंग सिद्धान्तों से अनभिज्ञ होते हैं तथा वे बैंकिंग संस्थाओं द्वारा प्रदत्त ऋणों का उपयोग उसी प्रकार करते हैं जैसा कि वे महाजनों तथा

साहूकारों से ऋण लेकर करते थे अर्थात् इन ऋणों को वे अनुत्पादक कार्यों (यथा- विवाह, मृत्यु, जन्म, आभूषण बनवाने तथा उपभोग वस्तुओं आदि पर) के लिए प्रयुक्त करते हैं। फलस्वरूप उनके समक्ष ऋण अदायगी की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

ऋण अदायगी या बकाया ऋण की समस्या :-

ग्रामीण अंचलों में कार्यरत विभिन्न सहकारी समितियों की ज्वलन्त समस्या बकाया ऋणों की है। किसी भी ऋण योजना का आधारभूत सिद्धान्त ऋण भुगतान की स्वतः व्यवस्था में निहित होता है। प्रदत्त ऋणों का जमा कोष के रूप में वापिस आना, किसी भी ऋणदाता संस्था की आर्थिक सुदृढ़ता एवं लाभदायकता की कसौटी है। ऋणों की वसूली न होने अथवा कम होने से, न केवल ऋणदाता संस्थाओं की सामर्थ्य पर ही बुरा असर पड़ता है, बल्कि ऐसे व्यक्तियों को साख के लाभ से वंचित भी होना पड़ता है, जिन्हें साख की अत्यन्त आवश्यकता होती है। भारतीय रिजर्व बैंक के द्वारा मार्च 1980 में डा० के०एस० कृष्णा स्वामी की अध्यक्षता में प्राथमिक क्षेत्र को ऋण देने एवं बीस सूत्रीय कार्यक्रम पर गठित अध्ययन दल ने बैंकों की बकाया ऋण की समस्या पर गम्भीर चिन्ता व्यक्त की और कहा कि जब तक कि ऋणों को ठीक प्रकार से संचालित नहीं किया जाता है, इन क्षेत्रों को अतिरिक्त वित्त की सुविधा उपलब्ध कराने में बैंकों की योग्यता क्षीण हो जायेगी। ऋणों की अच्छी वसूली से साधारण व्यक्तियों में बैंकिंग व्यवस्था की सुदृढ़ता के प्रति विश्वास जाग्रत होता है तथा यह वित्तीय संस्थाओं की वैधानिक कार्यवाही से विरक्त रखते हुए साख की लागत को कम कर देता है। इसे बैंकों में कार्यरत कर्मचारियों व अधिकारियों की कार्य कुशलता में वृद्धि होती है, क्योंकि वे अपना अधिकांश समय वसूली में नष्ट न कर विकास के सृजनात्मक कार्यों में लगा सकते हैं।

प्राचीन काल में भारत का प्रत्येक व्यक्ति ऋण अदायगी के प्रति सजग रहता था। परन्तु आज स्थिति उसके बिल्कुल विपरीत है। सामान्यत: लोगों में समय पर ऋण लौटाने के प्रति अरूचि व उदासीनता की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। अखिल भारतीय स्तर पर कृषि क्षेत्र में ऋण वसूली का प्रतिशत आशा के अनुरूप नहीं रहा है, जैसाकि निम्न तथ्यों से स्पष्ट है:-

वर्ष	वसूली का प्रतिशत
1982	52.2
1983	53.2
1984	51.6
1985	54.2
1986	56.2
1987	57.3
1988	57.5
1989	58.4

यद्यपि ऋण अदायगी के प्रतिशत में बराबर वृद्धि हो रही है किन्तु इसे सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता है, यही प्रवृत्ति लगभग बुन्देलखण्ड सम्भाग के सभी जनपदों में देखने को मिलती है। बैंकों के ऋणों के कुछ भाग की क्षतिपूर्ति तो जमा बीमा साख गारन्टी योजना के अन्तर्गत हो जाती है किन्तु फिर भी कुछ बकाया ऋणों को बट्टेखाते में डालना पड़ता है। जहाँ तक बकाया ऋणों की समस्या का प्रश्न है, यह माँग एवं पूर्ति दोनों ही पक्षों की ओर से है।

जैसाकि विदित है कि सहकारी संस्थाओं का मुख्य ध्येय कृषि

व्यवसाय को समुन्नत बनाना है, अतः रिजर्व बैंक द्वारा विभिन्न वित्तीय संस्थाओं को निर्देश प्राप्त है कि निर्धारण ऋणों को अधिक से अधिक प्राथमिक क्षेत्रों को प्रदान किया जाये। बुन्देलखण्ड सम्भाग में इन संस्थाओं ने इस दिशा में उल्लेखनीय सफलता अर्जित की है। कृषि साख के वितरण में उतरोत्तर वृद्धि हो रही है, परन्तु इनके वसूली के प्रतिशत में गिरावट आई है। निःसन्देह इस प्रवृत्ति में वृद्धि का प्रमुख कारण कृषि व्यवसाय का अनिश्चितताओं व जोखिमों से पूर्ण होना है। प्रथम श्रेणी के बकायेदार अधिकांश ऐसे कृषक है जो केवल अपने भरणपोषण के लिये ही उत्पादन कर पाते हैं। अतः ऐसी स्थिति में ऋण अदा न करना उनकी मजबूरी होती है। द्वितीय श्रेणी के ऋणी कृषक ऐसे होते हैं, जिनके पास बिक्री योग्य आधिक्य है किन्तु तकनीकी खामियों के कारण वह ऋण नहीं लौटाते। तीसरे प्रकार के ऋणी कृषि सम्बन्धित क्रियाओं (पशुपालन, सुअर पालन, मुर्गी, कुक्कुट पालन आदि) से सम्बन्धित है, जो इनका लाभकारी उपयोग करने पर पूर्णतः ऋण लौटाने की स्थिति में होते हैं। किन्तु कभी-कभी ऋण की राशि का दुरूपयोग करने पर वह भी ऋण की अदायगी करने में असमर्थ रहते हैं। इस प्रकार एक ओर तो ऋणियों का ऐसा वर्ग है जो ऋण चुकाने की इच्छा रखते हैं परन्तु आर्थिक विवशताओं के कारण वे ऐसा करने में असमर्थ रहते हैं। दूसरी ओर ये लोग हैं जो ऋण चुकाने की क्षमता रखते हुए भी ऋण लौटाने के इच्छुक नहीं होते हैं। वास्तव में बकाया ऋण की सबसे गम्भीर समस्या उन ऋणियों के सम्बन्ध में हैं, जो ऋण चुकाने की सामर्थ्य रखते हुए भी ऋण की अदायगी समय पर नहीं करते।

समय-समय पर परिवर्तित सरकार की नीतियों ने भी साख संस्थाओं की ऋण अदायगी को प्रभावित किया है। जैसे- नयी सरकार ने कृषकों के 10 हजार रूपये तक के ऋणों को माफ करने की घोषणा की है। इससे ग्रामीण क्षेत्र में कार्यरत ऋण प्रदान करने वाले समस्त संस्थाओं के समक्ष

गम्भीर संकट उत्पन्न हो गया है। इस निर्णय का ग्रामीण विकास के कार्यों पर भी बुरा प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि जब कृषकों को ऋण अदा नहीं करना पड़ेगा तो वे उसकी अदायगी के प्रति चिन्तित नहीं होंगे तथा ऋणों का दुरूपयोग {अनुत्पादक कार्यों} करने लगेंगे, जिससे कृषि क्षेत्र की उत्पादकता प्रभावित होगी। यह प्रवृत्ति सम्भाग के जनपदों को ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को आर्थिक रूप से खोखला बना देगी। साथ ही बैंक ठप्प होने की आशंका भी बढ़ जायेगी क्योंकि यह नीति संस्थाओं के सुदृढ़ आर्थिक विकास के सिद्धान्तों के प्रतिकूल है।

इस सम्बन्ध में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि कृषकों की भूमि को नीलाम न करने का भूमि विकास बैंक को निर्देश दिया गया है और कृषकों से ऋण की वसूली में जबरदस्ती न करने की अपेक्षा की है। इससे ऋण वसूली पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि कृषकों को ऋण अदायगी के प्रति किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा। फलस्वरूप बकाया ऋणों की राशि में और अधिक वृद्धि होगी। संक्षेप में उक्त समस्त कारणों से आज ऋण अदायगी का प्रतिशत निरन्तर गिरता जा रहा है।

यह भी देखा गया है कि विभिन्न सहकारी संस्थाओं के ऋण लक्ष्यपरक होते हैं। अतः इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बैंक अधिकारी ऋणियों के उचित चयन को उपेक्षित कर देते हैं, इससे ऋणों की गुणवत्ता प्रभावित होती है। फलस्वरूप ऋणों की अदायगी की समस्या उत्पन्न हो जाती है। साथ ही ग्रामीण निर्धनों के साथ न तो पहिचान बनाते हैं और न ही इनकी समस्याओं और मनोवैज्ञानिक को समझने की कोशिश करते हैं। वे ग्रामीण लोगों के प्रति सद्भावना पूर्ण व्यवहार नहीं करते तथा ऋण सम्बन्धी कार्यवाहियों को पूर्ण करनेके लिए ग्रामीणों की सहायता नहीं करते, इससे ग्रामीणजन ऋणों की अदायगी के प्रति उदासीन हो जाते हैं।

सहकारी संस्थाओं की लाभप्रदता में गिरावट तथा जमाराशि में कमी:-

संस्थाओं के ऋण की वसूली शत-प्रतिशत न होने से तो बैंकों की लाभप्रदता में गिरावट आ ही जाती है, परन्तु जैसाकि विदित है कि वर्तमान समय में ये संस्थायें जनहित का उद्देश्य लेकर चलती है, इस कारण सरकार द्वारा चलाये गये कार्यक्रमों यथा आई०आर०डी०पी०, 20 सूत्रीय कार्यक्रम, डी०पी०ए०पी० तथा सी०यू० आदि में इन संस्थाओं द्वारा गैर आनुपातिक रूप से काफी राशि व्यय की जा रही है, जिससे लाभप्रदता में गिरावट आई है।

जमा और ऋण बैंकिंग रूपी रथ के दो पहिये हैं, यदि एक भी पहिया ध्वस्त हो गया तो रथ को गतिमान रखना कठिन हो जायेगा। परन्तु बैंकों में आज यही प्रवृत्ति जन्म ले रही है कि ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश संस्थायें ऋण वितरण का केन्द्र बनकर रह गई है किन्तु जन निक्षेपों को प्रोत्साहन देने में असफल रही हैं।

निष्क्रिय समितियाँ :-

सहकारी संस्थाओं की प्रगति में निष्क्रिय समितियाँ बाधक रही हैं। लगभग 25 प्रतिशत समितियाँ निष्क्रिय हैं। उत्तर प्रदेश में 45000 में से 30000 समितियाँ अनाधिक हैं। इन निष्क्रिय समितियों के कारण ही सहकारी आन्दोलन का दायरा सीमित हो गया है। ऐसी समितियाँ सहकारी विभाग के रजिस्टरों में अब भी दर्ज है। मिर्धा कमेटी के अनुसार ये समितियाँ वास्तव में जीवित अथवा सक्रिय नहीं है। आज तक न तो निकम्मी समितियों को समाप्त करने और न ही दुर्बल समितियों को संगठित एवं शक्तिशाली बनाने के लिए आवश्यक कदम उठाये गये हैं। इसी का यह परिणाम है कि उनसे

सम्बन्धित व्यक्ति निष्क्रिय है अथवा उनकी आड़ में कुछ लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति कर रहे हैं।

नियमित पर्यवेक्षण एवं जाँच व अंकेक्षण का अभाव :-

आजकल सहकारी साख संस्थाओं से सदस्यों को प्राप्त ऋणों के उचित प्रयोग पर कड़ी देखभाल के लिए कोई सन्तोषजनक व्यवस्था नहीं है। न तो प्रबन्ध समितियों के सदस्य जाँच पूर्ण दृष्टि रखते हैं और न निरीक्षण स्टाफ इस मामले में सजग रहता है। इस दोषपूर्ण निरीक्षण के कारण सहकारी संस्थाओं के कार्य चालन में अनेक दोष उत्पन्न हो गये हैं। इसी के कारण इन संस्थाओं द्वारा दिये गये ऋणों के अधिकांश भाग का दुरूपयोग होता है। रिजर्व बैंक के एक सर्वेक्षण के अनुसार 28 प्रतिशत ऋणों का प्रयोग निर्धारित कार्यों के अतिरिक्त मदों पर होता है।

ब्याज की दर का ऊँचा होना :-

कृषक को प्रदत्त ऋणों पर सामान्यतया ब्याज की दर ऊँची है। जनपद की अधिकांश जनसंख्या निर्धनता रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रही है, उनकी ऐसी आर्थिक स्थिति को देखते हुए ये भारपूर्ण होती हैं। विभिन्न ऋणराशियों के लिए ब्याज की दर 10 प्रतिशत से 15 प्रतिशत निश्चित की गई हैं। बुन्देलखण्ड सम्भाग जैसे आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए सम्भाग के संदर्भ में उक्त ब्याज की दरें भारपूर्ण तथा अनुचित हैं। कृषि व्यवसाय की जोखिम और अनिश्चितताओं के संदर्भ में ऊँची ब्याज की दर कृषकों के लिए कष्टप्रद होती हैं।

भ्रष्टाचार:-

भ्रष्टाचार स्वतन्त्र भारत की सामान्य समस्या है। यह भारत के लगभग प्रत्येक विभाग में व्याप्त है। उच्च स्तर से लेकर निम्न स्तर तक अधिकांश लोग भ्रष्टाचार में लिप्त हैं। सम्भाग की सहकारी संस्थायें भी इसका अपकार नहीं है। वित्तीय संस्थायें अधिकांश ऋण कृषकों को वितरित करती हैं, जो अधिकांश निरक्षर एवं इन संस्थाओं की प्रतिज्ञाओं से अनभिज्ञ होते हैं। इस कारण सहकारी संस्थाओं के कर्मी मध्यस्थों की सहायता से उनका शोषण करते हैं, जिससे कृषकों तक स्वीकृत ऋण की पूर्ण राशि नहीं पहुँच पाती तथा ऋण का एक बड़ा भाग मध्यस्थ लोग स्वयं हड़प कर जाते हैं। कभी-कभी इस बुराई का बीज एवं ऋणार्थियों द्वारा भी बोया जाता है। प्राय: यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है कि बैंकों द्वारा ऋण की राशि जिन मदों के लिए स्वीकृत की गयी है, वास्तव में कृषक उनका उपयोग उन मदों पर न करके, बैंकों के कर्मचारियों की साँठगाँठ (मिलीभगत) से अनुत्प्रेरक कार्यों पर व्यय कर देता है, जिसके बदले में वह स्वत: ही ऋण का एक निश्चित भाग बैंक कर्मियों को रिश्वत के तौर पर देने का प्रस्ताव करता है। इस प्रकार भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति को ऋणदाता तथा ऋणी दोनों की ओर से ही संरक्षण तथा प्रोत्साहन मिलता है।

:: अध्याय अष्ठम् ::

उपसंहार

– निष्कर्ष, सुझाव एवं भावी सम्भावनायें

निष्कर्ष एवं सुझाव

भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास कृषि एवं ग्रामीण विकास में निहित है। वर्तमान युग में कृषि कार्यों में उन्नतशील कृषि प्राविधियों के प्रयोग के कारण कृषि कार्यों में पर्याप्त मात्रा में पूँजी निवेश की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने हेतु भी निजी एवं सार्वजनिक निवेश की आवश्यकता पड़ती है। ग्रामीण समुदाय की अल्प आय होने के कारण उन्हें साख अथवा उधार की आवश्यकता पड़ती है। एक लम्बे अरसे तक ग्रामीण साख प्रदान करने में साहूकारों एवं महाजनों का वर्चस्व रहा है, किन्तु इनकी कार्य पद्धति में अनेक दोष होने के कारण विगत वर्षों में सरकार ने इनकी गतिविधियों पर अनेक प्रतिबन्ध लगा दिये हैं। व्यापारिक बैंकों के ग्रामीण साख के क्षेत्र में नगण्य योगदान को देखते हुए सन् 1969 में इनका राष्ट्रीयकरण किया गया। तत्पश्चात इन्होंने ग्रामीण साख व्यवस्था की ओर ध्यान देना शुरू किया, लेकिन आज भी इनका योगदान सन्तोषजनक नहीं है। इस पृष्ठभूमि में ग्रामीण साख की व्यवस्था में सहकारी साख की महती आवश्यकता महसूस की गई। सहकारी संस्थायें कृषकों को अल्पकालीन, मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन साख प्रदान करती हैं। यह साख उत्पादन एवं उपोग सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं एवं कृषकों की विविध रूपों में सेवाएं प्रदान करती हैं। सहकारी साख की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था होने के कारण सदस्य संस्था के प्रति अपनत्व की भावना रखते हैं एवं सहकारी संस्थायें आसान शर्तों तथा सस्ती ब्याज की दर पर साख सुलभ कराती हैं।

भारत जैसे विशाल देश में जहाँ भौगोलिक, भौतिक, आर्थिक एवं सामाजिक विविधतायें विद्यमान हैं। देश के विभिन्न राज्यों एवं सम्भागों में भी भिन्न-भिन्न दशायें पाई जाती हैं। सम्पूर्ण देश को आधार बनाकर वृहद स्तरीय अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों की उपादेयता अल्प ही होगी, क्योंकि

राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्ध आंकड़ें एवं उनसे प्राप्त निष्कर्ष सामान्यतया क्षेत्रीय स्तर पर उपयुक्त नहीं होंगे। यह बात सहकारी साख के संदर्भ में विशेष रूप से देखने को मिलती है क्योंकि देश के कुछ राज्यों एवं क्षेत्रों में सहकारी साख का विशेष योगदान है जबकि कुछ राज्यों में इसका योगदान नगण्य है। ऐसी स्थिति में क्षेत्रीय स्तर पर किया गया अध्ययन विशेष महत्व रखता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में सूक्ष्म स्तर पर बुन्देलखण्ड सम्भाग में सहकारी साख से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन कर गहन अध्ययन किया गया है और द्वितीयक संमकों के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये हैं, जोकि अधिक उपयोगी एवं व्यवहारिक हैं।

भारत में सहकारिता का शुभारम्भ सन् 1904 में सहकारी साख अधिनियम पारित किया गया। बाद में सन् 1912 में इसे संशोधित किया गया। स्वतन्त्रता के पूर्व तक इस क्षेत्र में कोई उपलब्धि नहीं हुई। स्वतन्त्रता प्राप्त के पश्चात मुख्यतया नियोजन काल में एक सुनियोजित ढंग से सहकारिता के क्षेत्र में ठोस प्रयास किये गये।

सहकारी साख के क्षेत्र में रिजर्व बैंक ने कृषि साख विभाग की स्थापना कर महत्वपूर्ण योगदान दिया। एक ओर अल्पकालीन एवं मध्यकालीन साख की पुनर्वित्त व्यवस्था हेतु राष्ट्रीय ग्रामीण साख स्थिरीकरण कोष की स्थापना की एवं दूसरी ओर दीर्घकालीन कृषि साख की उदारता पूर्वक सहायता करने के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण साख (दीर्घकालीन) कोष की स्थापना की गई। कृषि पुनर्वित्त निगम की स्थापना इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। हाल ही में कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिए पुनर्वित्त की सुविधा सुलभ कराने हेतु राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना में भी भारतीय रिजर्व बैंक ने महती भूमिका का निर्वाह किया है और कृषि एवं ग्रामीण विकास हेतु साख का एक विस्तृत ढांचा खड़ा किया है।

सहकारी क्षेत्र में अल्पकालीन एवं मध्यकालीन साख की व्यवस्था हेतु त्रिस्तरीय ढांचा है। गाँव स्तर पर प्राथमिक कृषि साख समितियां, जिला स्तर पर जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा राज्य स्तर पर राज्य सहकारी बैंक कृषकों को साख प्रदान करती हैं। दीर्घकालीन साख के लिए द्विस्तरीय ढांचा है- प्राथमिक कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक, जिला स्तर पर एवं राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक राज्य स्तर पर कृषकों को साख सुलभ कराती हैं।

प्राथमिक स्तर पर कृषकों को सस्ती साख सुलभ कराने हेतु प्राथमिक कृषि साख समितियां हैं, जो कृषकों को अल्पकालीन एवं मध्यकालीन ऋण सुलभ कराती हैं। ये इकाईयाँ साहूकारों एवं महाजनों के चंगुल से छुटकारा दिलाने के लिए स्थापित की गईं थी। इनका उद्देश्य न केवल साख उपलब्ध कराना था, बल्कि लोगों को सहकारिता के सिद्धान्तों एवं सहकारिता के बारे में अन्य जानकारी भी देना था जिससे कृषि साख समितियां शक्तिशाली बन सके और बिना किसी कठिनाई के अन्य बहुउद्देश्यीय व्यापारिक गतिविधियों में वृद्धि कर सकें। वस्तुतः प्राथमिक इकाईयाँ देश में सहकारिता आन्दोलन की जीवितत: तथा सेवा का प्रतीक हैं।

अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति (1951-54) की सिफारिशों के अनुपालन में वृहद स्तरीय बहुउद्देश्यीय समितियां जिन्हें हम सेवा सहकारिता के रूप में जानते हैं, संगठित की गईं। बहुउद्देश्यीय समितियां अपने सदस्यों को साख प्रदान करना, बचत को प्रोत्साहन देना, कृषि एवं घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति करना तथा कृषि उपजों के विपणन की व्यवस्था आदि करना है। योजनाकाल में एकल साख समितियों को बहुउद्देश्यीय साख समितियों में परिवर्तित करने, निष्क्रिय समितियों को सक्रिय समितियों में परिवर्तित करने पर अत्यधिक जोर दिया गया।

कोई भी दस व्यक्ति, जिनकी आयु 18 वर्ष से अधिक हो, मिलकर प्राथमिक कृषि साख समितियों के पंजीकरण के लिए प्रार्थना पत्र दे सकते हैं। किसी भी गाँव के सभी कृषक, शिल्पकार एवं छोटे व्यापारी इन समितियों के सदस्य बन सकते हैं। समिति का प्रबन्ध प्रजातान्त्रिक तरीके से होता है। प्राथमिक कृषि ऋण समितियां अपने सदस्यों को सामान्यतया अल्प मूल्य के अंश (10 तथा 50 रूपये के) निर्गमित करती हैं। इन समितियों के पूँजी के मुख्यत: अदायगी हिस्सा पूँजी धनराशि, रक्षित कोष, आधिक्य से उत्पन्न संरक्षित धनराशि जमा उधार आदि स्रोत हैं। प्राथमिक कृषि ऋण समितियां अपने सदस्यों को अल्पकालीन ऋण कर्ज लेने वाले को व्यक्तिगत जमानत पर तथा मध्यकालीन ऋण उनकी अचल सम्पत्ति को बन्धक रखकर कर्ज देती हैं। प्राथमिक कृषि सहकारी समितियां अपने सदस्यों की साख आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु राज्य सहकारी बैंक तथा केन्द्रीय सहकारी बैंकों से ऋण प्राप्त करती हैं।

जनपद स्तर पर जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक प्राथमिक समितियां एवं राज्य सहकारी बैंक के बीच एक मध्य कड़ी का कार्य करती हैं। यह बैंक सदस्य समितियों की साख एवं गैर साख आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। प्राथमिक कृषि साख समितियों से निकट तथा निरन्तर सम्पर्क बनाये रखती हैं एवं उन्हें मार्गदर्शन एवं निर्देशन प्रदान करती हैं। इनका कार्यक्षेत्र सामान्यतया एक जनपद होता है। यद्यपि इनकी सदस्यता केवल वैयक्तिक स्तर पर सीमित होती है परन्तु यह सभी प्रकार की सहकारी समितियों के लिए खुली होती है। ये बैंक अपनी निधि को अंशपूँजी, जनता की जमा पूँजी, सरकार अथवा भारतीय रिजर्व बैंक, व्यापारिक बैंक तथा राज्य सहकारी बैंकों से प्राप्त कर्जों से बनाती हैं। ये बैंक कृषि हेतु प्राथमिक कृषि साख समितियों को अल्पकालीन एवं मध्यकालीन ऋण देते हैं। ये ऋण समुचित जमानत, भू-सम्पत्ति, मकान बन्धक रखकर, पशु कृषि उत्पाद, स्वर्णाभूषण, फिक्स जमा रसीदें, जीवन बीमा निगम की पॉलिसी,

प्रोनोट को लेकर स्वीकृत किये जाते हैं।

राज्य स्तर पर केन्द्रीय बैंकों के संघ के रूप में एक राज्य सहकारी बैंक की स्थापना की गई है। राज्य सहकारी बैंक राज्य की सहकारी संस्थाओं की सर्वोच्च संस्था है। यह समस्त साख आन्दोलन पर नियंत्रण एवं प्रबन्ध करती है तथा विभिन्न संस्थाओं के कार्यों में समन्वय स्थापित करती है। इस संस्था द्वारा ही राज्य की अन्य सहकारी संस्थाओं को नेतृत्व प्रदान किया जाता है। यह बैंक विशाल पूँजी को आकर्षित करके तथा भारतीय रिजर्व बैंक एवं नाबार्ड से ऋण प्राप्त करके केन्द्रीय सहकारी बैंकों को ऋण प्रदान करती है और इन बैंकों के अतिरिक्त स्रोतों एवं रिजर्वों को संरक्षक के रूप में कार्य करती है। राज्य सहकारी बैंक कृषि कार्यों तथा उपज के विपणन के लिए अल्पकालीन ऋण तथा पशुओं एवं यंत्रों को खरीदने, कुँए खोदने आदि के लिए मध्यमकालीन ऋण शाखाओं के माध्यम से प्रदान करते हैं। विगत वर्षों से राज्य सहकारी बैंक ने ऋण वितरण में प्रशंसनीय योगदान देकर कृषि के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। वस्तुतः यह बैंक सहकारी आन्दोलन को सफल बनाने हेतु एक मित्र, प्रेरक तथा निर्देशक के रूप में कार्य करता है।

कृषि के लिए दीर्घकालीन साख प्रदान करने में भूमि विकास बैंकों की महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि सहकारी साख समितियां एवं जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक सामान्यतः अल्पकालीन एवं मध्यकालीन ऋणों को देते हैं। दीर्घकालीन सहकारी साख का संघात्मक ढांचा जैसाकि गत वर्षों में सामने आया है समस्त भारत में एक जैसा नहीं है। कुछ राज्यों में एक संघात्मक रूप में राज्य स्तरीय केन्द्रीय भूमि विकास बैंक तथा आधार स्तर पर प्राथमिक भूमि विकास बैंक संगठित हुए तथा अन्य कुछ राज्यों में सामान्य स्तर पर राज्य में सर्वोच्च केन्द्रीय भूमि विकास बैंक के रूप में अस्तित्व में आये हैं, जो अपनी शाखाओं एवं उपशाखाओं के माध्यम से निम्न स्तर पर कार्यकरण करते हैं।

उत्तर प्रदेश में भूमि विकास बैंक का ढांचा संघात्मक है। राज्य स्तर पर उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक तथा जनपद स्तर पर प्राथमिक कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक है। केन्द्रीय भूमि विकास बैंक का आधार उद्देश्य दीर्घकालीन निधियों को जुटाना है, जिससे सम्बद्ध प्राथमिक भूमि विकास बैंक के वित्त की पूर्ति की जा सके। यह बैंक प्राथमिक भूमि विकास बैंकों की देखरेख, निरीक्षण तथा निर्देशन का कार्य करती है तथा भारतीय रिजर्व बैंक, सरकार तथा दीर्घकालीन बैंकिंग के मध्य कड़ी का कार्य करती है। भूमि विकास बैंक भूमि में सुधार, विकास एवं कृषि योग्य बनाने, कृषि सम्बन्धी यंत्र खरीदने, नलकूप लगाने तथा कुँओं की मरम्मत आदि के लिए ऋण स्वीकृत करती है। सामान्यतया ऋण 10 वर्ष से 20 वर्ष की अवधि के लिए स्वीकृत किये जाते हैं। धनराशि की सीमा रू010,000/= से रू020,000/= तक की है। कृषक से 7 प्रतिशत से 13 प्रतिशत वार्षिक दर से ब्याज लिया जाता है, जो ब्याज की सामान्य दर से एक प्रतिशत अधिक है। उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक लिमिटेड ने "भूमि विकास बैंकिंग के इतिहास में" अनेक कीर्तिमान स्थापित किये हैं। उत्तर प्रदेश का यह बैंक भारत में अपनी बहुमुखी प्रगति के लिए वर्ष 1976-77 में राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित किया गया था। इस बैंक की प्रगति सामान्यतः उल्लेखनीय रही है।

सहकारी संस्थाओं द्वारा प्रदत्त ऋणों की तुलना जब हम अन्य वित्तीय संस्थाओं से करते हैं तो यह पाते हैं कि राष्ट्रीयकृत बैंकों एवं क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की तुलना में सहकारी साख अपेक्षाकृत सस्ती दर पर एवं आसान शर्तों पर सुलभ हो जाती है। साथ ही सदस्य उस संस्था में अपनापन महसूस करते हैं क्योंकि समितियों की प्रबन्ध व्यवस्था उन्हीं के हाथों निहित होती है तथापि सहकारी बैंक जमा खातों को गतिशीलता प्रदान करने में असमर्थ हैं जबकि व्यापारिक बैंकें इस दिशा में काफी समर्थ हैं। प्रायः यह देखा गया है कि

व्यापारिक बैंकों की शाखायें ग्रामीण क्षेत्रों में नगण्य मात्रा में हैं, जबकि सहकारी संस्थाओं का मूल उद्देश्य ग्रामीण अंचलों में रहने वाले कृषकों को साख प्रदान कर उनकी आर्थिक दशा में सुधार करना है।

विशेषज्ञों की राय में एक समन्वित वित्तीय तथा साख नीति को सुनिश्चित करने तथा उक्त अभिकरणों के प्रबन्धतंत्र में उच्च गुणवत्ता को आश्वस्त एवं सुनिश्चित करने के लिए सहकारी साख को केन्द्रीय सूची अथवा समवर्ती सूची को हस्तान्तरित कर देना चाहिए।

फसल ऋण प्रणाली के अन्तर्गत खड़ी हुई फसल के आंकलन के आधार पर अल्पकालीन ऋण प्रदान किये जाते हैं। मध्यकालीन साख के अन्तर्गत सहकारी संस्थाओं को अभी हाल में बिना किसी जमानत के रू02,000/= तक के वैकल्पिक व्यवसायों हेतु ऋण अग्रसारित करने की आज्ञा दी गई है। दीर्घकालीन साख के अन्तर्गत जमा के आंकलन की नीति को उदार बनाया है। व्यापारिक बैंकों के द्वारा कृषि विकास हेतु वित्तीय सहायता के सम्बन्ध में भारतीय रिजर्व बैंक के द्वारा जारी किये गये निर्देशों के अनुसार ऋण देने का मुख्य उद्देश्य न केवल वर्तमान उत्पादकों को अपनी बचत में वृद्धि के लिए साख प्रदान करना था। अतएव 1969 के राष्ट्रीयकरण के बाद से ग्रामीण अंचलों में अपनी शाखायें खोलकर ये बैंक भी ग्रामीण विकास की ओर आकर्षित हुए हैं।

सहकारी संस्थायें कृषकों, दस्तकारों एवं समाज के निर्बल वर्ग के लोगों को न केवल साख की सुविधा सुलभ कराते हैं बल्कि बहुमुखी सेवाएं भी प्रदान करते हैं जिन्हें अन्य वित्तीय संस्थायें देने में असमर्थ हैं। आज सेवा सहकारिताएं एवं बहुउद्देश्यीय सहकारी समितियों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है ताकि लोग सहकारिता से अधिक से अधिक लाभान्वित हो सकें। सहकारी साख के साथ साथ कृषकों को भण्डारण, विपणन, उपभोक्ता तथा

इसी प्रकार के अन्य उद्देश्यों की पूर्ति में सहकारी संस्थायें महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती हैं।

सहकारी संस्थायें उपभोक्ता सहकारी समितियों के माध्यम से कृषकों को विभिन्न प्रकार की वस्तुएं सस्ते मूल्य पर प्रदान करती हैं एवं बचतों को प्रोत्साहित करती हैं। सहकारी विपणन संस्थायें कृषकों के अनेक प्रकार की अनियमित कटौतियों से सुरक्षा प्रदान कर उन्हें उनकी उपज का उचित मूल्य प्रदान कराती हैं। इसी प्रकार सहकारी गृह निर्माण समितियां समाज के गरीब कृषकों एवं दस्तकारों की आवास समस्या का समाधान करने में सहायता करती हैं। सहकारी खेती के माध्यम से छोटे कृषक भी उन्नतिशील कृषि विधियों के उपयोग द्वारा अपनी छोटी जोतों का उत्पादन बढ़ाने में समर्थ हो सके हैं।

बुन्देलखण्ड सम्भाग के सभी जनपदों में सहकारी साख संस्थाओं की प्रगति एवं कृषि साख के क्षेत्र में प्रत्येक जनपद में गरीब कृषकों, श्रमिकों तथा निर्बल वर्ग के लोगों की पर्याप्त सहायता की जा रही है, लेकिन यह उपलब्धि सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती है क्योंकि जिन आशाओं एवं उम्मीदों के साथ सहकारी आन्दोलन को प्रारम्भ किया गया है उन्हें अभी तक पूरा नहीं किया जा सका है। सहकारी समितियां एवं सहकारी बैंकें सम्भाग की कृषि वित्त की आवश्यकताओं को पूरा करने में सफल नहीं हो सकी हैं। सहकारी संस्थाओं के विकास के मार्ग में अनेक बाधायें हैं जैसे- ⟨अ⟩ प्रदत्त ऋणों की अपर्याप्तता ⟨ब⟩ ऋण योजनाओं के क्रियान्वयन सम्बन्धी कठिनाईयां ⟨स⟩ ऋण प्राप्त करने में असुविधायें ⟨द⟩ ऋणों के उपयोग सम्बन्धी समस्यायें ⟨य⟩ ऋणों की अदायगी तथा बकाया ऋण की समस्या आदि वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। वर्तमान समय में ऋण की अदायगी की समस्या अपना एक विकराल रूप धारण किये हुए हैं क्योंकि कृषकों के द्वारा लिया गया ऋण या तो अनुउत्पादक कार्यों में [illegible] है अथवा सरकार की समय-समय

पर उदार नीति के कारण ऋण से मुक्त कर दिया जाता है। सरकार की ऋण राहत योजना का भी वसूली पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। फलस्वरूप सहकारी संस्थाओं की लाभदेयता एवं जमा पूँजी में निरन्तर कमी आ रही है।

समय-समय पर इनका निरीक्षण, अंकेक्षण एवं जांच न करना भी इनकी निष्क्रियता में सहयोग प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त आज हम देखते हैं कि इनमें भ्रष्टाचार व्याप्त है। सहकारी आन्दोलन व सहकारी संस्थायें भ्रष्टाचार का पर्याय बन गये हैं। उच्च स्तर से लेकर निम्न स्तर तक अधिकांश लोग इसमें लिप्त हैं। सम्भाग की सहकारी संस्थायें भी इसका अपवाद नहीं हैं। ये संस्थायें अधिकांश ऋण कृषकों को वितरित करती हैं जोकि अधिकांश निरक्षर एवं इन संस्थाओं के नियमों से अनभिज्ञ होते हैं फलस्वरूप संस्थाओं के कर्मी मध्यस्थों की सहायता से इनका शोषण करते हैं।

सहकारी कृषि साख के सम्बन्ध में सुझाव :-

बुन्देलखण्ड सम्भाग (जालौन, हमीरपुर, बाँदा, ललितपुर, झाँसी) की सहकारी कृषि साख संस्थाओं के अध्ययन करने के उपरान्त यह कहना अनुचित न होगा कि देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास इस समय बहुत हद तक सहकारी संस्थाओं के सुचारू संचालन पर निर्भर कर रहा है क्योंकि ग्रामीण जनसंख्या का 90 प्रतिशत से अधिक भाग प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सहकारिता से जुड़ चुका है। देश में सहकारी आन्दोलन की शुरूआत सरकार द्वारा की गई थी और आज भी यह आन्दोलन सरकार के हाथों में निहित है। यदि सहकारी संस्थाओं द्वारा कृषि वित्त एवं ग्रामीण विकास के लक्ष्य को पूरा करना है तो सहकारी संस्थाओं के गठन, कार्य पद्धति एवं भावी विकास के सम्बन्ध में पूर्णरूप से सहकारिता के सिद्धान्तों को अपनाने का संकल्प लेना ही होगा। यदि इसी प्रकार सरकार का नियंत्रण सहकारी संस्थाओं पर बना रहा तो यह संस्थायें

स्वावलम्बी एवं लाभप्रद नहीं हो सकती हैं। सम्भाग में सहकारी संस्थाओं की कमियों को दूर करने में निम्न सुझाव उपयोगी सिद्ध होंगे:-

सहकारी साख संस्थाओं को सुचारू रूप से संचालन के लिए संचालक मण्डल के गठन को अधिक लम्बे समय तक नहीं टाला जाना चाहिए। सभी प्रकार के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को कुछ विशेष क्षेत्र के अधिकारों को छोड़कर संचालक मण्डल के प्रति पूर्ण उत्तरदायी होना चाहिए। सहकारी समितियों एवं बैंकों के अधिकारियों तथा कर्मचारियों के लिए एक विशेष कैडर बनाया जाय और उन्हीं लोगों की नियुक्तियां की जाय जो सहकारिता के सिद्धान्तों में आस्था रखते हों। सरकारी अधिकारियों एवं लाल फीताशाही के प्रभाव को सहकारी संस्थाओं पर नियंत्रित किया जाना आवश्यक है। सम्भाग में क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने के लिए साधन सहकारी समितियों को क्षेत्रीय सहकारी समितियों तथा किसान सेवा सहकारी समितियों में पुनगर्ठित किया जाना उपयोगी होगा।

सभी प्रकार की समितियों एवं बैंकों के प्रतिनिधियों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों के लिए सहकारी शिक्षा का निर्धारित पाठ्यक्रम होना चाहिए एवं उन्हें समय-समय पर प्रशिक्षण दिलाने की व्यवस्था की जाय।

सम्भाग के सभी जनपदों में सहकारी साख संस्थाओं एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं में सामन्जस्य होना अति आवश्यक है। व्यापारिक बैंकों को कृषि क्षेत्र में स्वयं ऋण प्रदान करने के स्थान पर सहकारी साख संस्थाओं को पुनर्वित्त करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाना लाभप्रद हो सकता है। एवं सम्भाग के सभी जनपदों में भूमि विकास बैंकों के कार्यों को अधिक गतिशील बनाने के लिए जिला स्तर पर समन्वित केन्द्रीय बैंक की योजना को लागू किया जाना चाहिए। जनपद की आवश्यकताओं के अनुसार बैंकों के उद्देश्यों एवं ऋण वितरण प्रणाली में संशोधन की आवश्यकता है। केन्द्रीय बैंकों के रूप में

जिला सहकारी बैंकों की कार्य कुशलता बढ़ाने की आवश्यकता है। जिला सहकारी बैंकों के निक्षेपों में वृद्धि करने की दृष्टि से सस्ती ब्याज दर पर अमानतों एवं स्थायी निक्षेपों के लिए प्रयत्न किया जाना आवश्यक है। इसके लिए बैंक में अलग से अधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति का प्रावधान करना होगा।

सम्भाग में सहकारी साख समितियों एवं बैंक का लक्ष्य केवल सदस्यों को ऋण वितरित कर वसूल करना ही नहीं होना चाहिए, बल्कि सदस्यों में धन संचय करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जिससे समितियां स्वावलम्बी बन सके और सदस्यों में ऋण का बोझ कम हो सके। सम्भाग में गैर साख संस्थाओं का बहुत अभाव है, इसके लिए जिला स्तर पर एक सहकारिता सलाहकार परिषद का गठन किया जाना चाहिए, जिसमें सम्भाग के समाजसेवी सहकारी समितियों के प्रतिनिधियों को शामिल किया जाय। इस परिषद को जनपद में सहकारी साख एवं गैर साख समितियों के गठन, कार्यप्रणाली, विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी साख की आवश्यकताओं एवं पूर्ति के सम्बन्ध में सलाह, प्रचार, प्रसार आदि दायित्वों को निर्वाह करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाना चाहिए।

कमजोर वर्गों, श्रमिकों, अनुसूचित/जनजाति के लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अलग से समितियों का गठन किया जाना चाहिए। इस वर्ग के लिए निर्धारित जिला विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व इन समितियों को सौंपा जाना चाहिए।

ऋण वितरण की जटिल प्रक्रिया जिला स्तर या बैंक स्तर के अधिकारियों के कार्यक्षेत्र की बात नहीं है, कि इसका सरलीकरण करें। किन्तु यदि भारतीय रिजर्व बैंक बुन्देलखण्ड जैसे पिछड़े क्षेत्र का विकास करना चाहती है और उसका ध्येय ग्रामवासियों को आवश्यकतानुसार बैंक सुविधायें उपलब्ध

कराना है तो ऋण की जटिल प्रक्रियाओं पर अवश्य विचार करना होगा। और इसके सरलीकरण के ढंग निकालने होंगे। साथ ही राज्य सरकार को भी उच्च दरों के स्टाम्प शुल्क जो बैंक दस्तावेज भरने में लगते हैं, उनको या तो कम अथवा बिल्कुल समाप्त करना होगा। कम से कम बुन्देलखण्ड जैसे पिछड़े सम्भाग को स्टाम्प शुल्क से मुक्त करना ही होगा क्योंकि यह निर्धन कृषकों के लिए अत्यन्त खर्चीली व्यवस्था है। ऋण वितरण प्रक्रिया में निहित जटिलताओं से ऋण वितरण में काफी विलम्ब होता है।

एक अध्ययन दल ने इस बात की पर्याप्त जानकारी एकत्रित की है कि ऋणियों को बैंक में स्वयं चक्कर लगाने पड़ते हैं, जबकि क्षेत्रीय स्टाफ एवं शाखा प्रबन्धकों के पास ऐसे पर्याप्त निर्देश हैं कि वे स्वयं गाँव-गाँव जाकर ऋणियों की समस्याओं का समाधान करें और ग्रामवार साख कैम्प लगाकर ऋण वितरित करें, जिससे ऋणियों को अनावश्यक समय एवं दौड़धूप के खर्चे से बचाया जा सके, अतएव निर्देशों का पालन प्रभावी ढंग से किया जाना चाहिए।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र जैसे पिछड़े क्षेत्र में सहकारी संस्थाओं द्वारा प्रदत्त ऋणों की पुनर्वित्त व्यवस्था के लिए नाबार्ड व रिजर्व बैंक को उदार नीति का पालन करना चाहिए। कुल प्रदत्त ऋणों की सम्पूर्ण राशि अथवा 80 प्रतिशत तक के ऋणों की पुनर्वित्त व्यवस्था करके वित्तीय संस्थाओं को प्रोत्साहित करना चाहिए।

यद्यपि सरकारी एवं अन्य विभागों की तुलना में सहकारी संस्थाओं में कम भ्रष्टाचार है किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इनमें भ्रष्टाचार बिल्कुल नहीं है। संस्थाओं में भ्रष्टाचार के विरूद्ध शिकायत मिलने पर त्वरित दण्डात्मक कार्यवाही की जाती है किन्तु कभी-कभी भ्रष्टाचार की मिथ्या शिकायतों के कारण ईमानदार एवं कर्मठ कर्मचारियों पर बुरा असर भी पड़ता है, अतः ऋणियों से इस बात की अपेक्षा की जाती है कि

वे निराधार आरोप लगाकर शिकायत न करें तथा प्रबन्धतंत्र से यह आशा की जाती है कि ऐसे मामलों में हुए दोषी बैंककर्मियों के विरुद्ध कठोर कार्यवाही करने में संकोच न करें।

कुछ ऋणी बैंक ऋणों का दुरूपयोग सामाजिक रीतिरिवाज, कुरीतियों व अनुत्पादक कार्यों पर व्यय करते हैं। जिससे वे अपने ऊपर कर्ज का बोझ बढ़ाने के साथ ही अन्य लोगों को इस बैंक धन के उपयोग से वंचित कर देते हैं, क्योंकि ऋण की वसूली न होने से धन का चक्का नहीं घूम पाता। इसके साथ ही बैंकों के पास ऋण वितरण के साधन सीमित होते हैं। अतः बैंक कर्मचारी एवं अधिकारियों को इस बात के लिए पूर्ण सचेत होना चाहिए कि उनके धन का दुरूपयोग न हो और समय-समय पर बैंक ऋण से खरीदी गयी वस्तुओं, यंत्रों आदि का निरीक्षण करना चाहिए और ग्रामवासियों को ऋण के दुरूपयोग जैसी बुराई से बचने के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए। इसके लिए बैंक अधिकारियों को पूर्ण निष्ठा और ईमानदारी से कार्य करना होगा।

प्रायः यह देखा गया है कि ग्रामवासी बैंकिंग सुविधाओं के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक एवं सचेत नहीं है क्योंकि लोग अभी नोटों को जमीनों में गाड़ देते हैं अथवा अन्यत्र कहीं अपने घरों में रख देते हैं। यदि संस्थाओं के कर्मी ऐसे व्यक्तियों को अपने पूर्ण विश्वास में लें कि उनके द्वारा बैंक जमा राशि की गोपनीयता व सुरक्षा प्रदान की जायेगी, तो बुन्देलखण्ड जैसे पिछड़े सम्भाग में भी जमाराशियों में काफी वृद्धि की सम्भावना है। साथ ही बैंकों को अपने अनावश्यक खर्चों पर भी आवश्यक नियंत्रण रखना होगा, अन्यथा लाभदायकता पर ऐसे खर्चे एक रिसाव है। बैंकों में बैंक कर्मियों की यूनियन अधिक शक्तिशाली है, जोकि प्रायः ऊँचे वेतन एवं भत्तों की मांग तो करती है, परन्तु कार्यक्षमता, ग्राहक सेवा, लाभदायकता एवं उत्पादकता जैसे प्रमुख मुद्दों पर पूर्ण उदासीन रहती है, जबकि यह मुद्दे बैंक प्रणाली का अस्तित्व

बनाये रखने में मूलभूत आधार हैं। अतः बैंक प्रबन्धकों को वेतनमानों एवं भत्तों के सौदे करते समय उपरोक्त मुद्दों को पूर्णरूप से स्पष्ट कर देना चाहिए और वेतनमानों और भत्तों में बढ़ोत्तरी को लाभदायकता से जोड़ना चाहिए, जिससे बैंक कर्मियों की कार्यक्षमता एवं कार्य कुशलता में सुधार हो और वे उत्पादकता एवं लाभदायकता के लिए पूर्ण सचेत रहें।

हाल ही में केन्द्र सरकार व कुछ राज्य सरकारों द्वारा 10 हजार रूपये तक के ऋण कृषि ऋणों एवं दस्तकारी ऋणों को माफ करने के सम्बन्ध में की गयी घोषणायें बैंकिंग व्यवसाय पर दूरगामी प्रभाव डालेंगी, क्योंकि इससे एक ओर तो नियमित ऋणों की किस्तों का भुगतान करने वालों को क्षोभ रहेगा, जबकि दूसरी ओर अपनी शक्ति होते हुए भी ऋणों का भुगतान न करने वाले लोग अपनी फिजूल खर्ची व लापरवाही के लिए पुरूस्कृत होंगे। साथ ही ऋणों की अदायगी न होने से बैंकों की वित्तीय स्थिति पर भी बहुत बड़ा बोझ पड़ेगा, जिससे उनकी आर्थिक सुदृढ़ता की नींव कमजोर होगी। इस ओर हाल ही में रिजर्व बैंक के गर्वनर, बैंक के उच्चाधिकारियों एवं प्रमुख अर्थवित्ताओं ने भी सरकार को सावधान किया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत वित्तीय संस्थाओं को लाभ की संस्थायें न मानकर आर्थिक विकास का मुख्य तंत्र मानना चाहिए, क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक कोषों के अभाव रूपी रेगिस्तान में ये संस्थायें ही हरीतिमा का स्रोत हैं, जिसके विकास ऋणों के सहारे गाँवों में कृषि, कृषि सम्बन्धी क्रियाओं, लघु एवं कुटीर उद्योगों व आर्थिक विकास की अनेक क्रियाओं में गति आई है। वास्तव में इनकी सफलता का सही मापदण्ड गाँव में हुए आर्थिक विकास के कार्यों के आंकलन और उनमें बैंकों के योगदान को आधार मानकर किया जाना चाहिए न कि उनके द्वारा कमाये गये लाभ के आधार पर।

भावी सम्भावनायें

कृषि साख की समस्या तथा कृषक वर्ग की अन्य समस्याओं को हल करने का एक मात्र रास्ता यही प्रतीत होता है कि सहकारिता का व्यापक विस्तार एवं विकास किया जाय। यदि सहकारी आन्दोलन उसके प्रवर्तकों की आशा के अनुरूप विकसित नहीं हो सका है तो यह उस आन्दोलन का दोष नहीं है, परन्तु उन व्यक्तियों का दोष है जो इसके संगठन एवं संचालन के लिए नीति निर्धारित करते हैं।

इस समय आवश्यकता तो इस बात की है कि ऐसा व्यवहारिक एवं सशक्त कदम उठाया जाय कि वह सामान्य वर्गों के विचारों में इसके पक्ष में क्रान्ति उत्पन्न कर दें। परन्तु इस सम्बन्ध में यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि केवल नारेबाजी या अपने उच्चादर्शों द्वारा लोगों की मनोकामनाओं को अपनी ओर आकर्षित कर लेने से उस आन्दोलन का विकास नहीं होगा। इसका विकास तो सहकारी संस्थाओं के कुशल संचालन से ही होगा। इसके लिए आवश्यक है कि इस आन्दोलन को बिना विलम्ब किये पुर्नसंगठित किया जाय तथा उसके सम्बन्ध में सर्वप्रथम नीति में नवीनतम परिवर्तनों का समावेश किया जाय। यदि निष्क्रिय एवं दुर्बल इकाईयों का समापन कर दिया जाय, तो आर्थिक एवं स्वस्थ सहकारी समितियां शोषित वर्ग का आर्थिक कल्याण करने में समर्थ हो सकेंगी।

सहकारी संस्थाओं का भविष्य उज्जवल उसी समय हो सकता है यदि निस्वार्थ व्यक्ति इस आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेना प्रारम्भ कर दें। स्वीडन में जोकि "सहकारी समाज" का "मक्का" (पवित्र स्थल) बन गया है, सहकारी आन्दोलन ने योग्य एवं कुशल नेतृत्व के अन्तर्गत विश्व में सबसे अधिक विकास किया है। इसके अतिरिक्त इन वित्तीय संस्थाओं के विकास

के लिए अकलुषित आचरण, ईमानदारी, सामाजिक सेवा, बचत की भावना तथा व्यापारिक प्रबन्ध के ठोस ज्ञान की आवश्यकता है। सहकारी प्रशासन समिति के शब्दों में एक बार पुनः यह कहना अनुचित न होगा कि इस सहकारी वित्तीय संस्थाओं की सफलता वास्तव में इस बात पर निर्भर करती है कि सहकारी समितियों के कार्य संचालन में बाहरी राजनीतिक अथवा अन्य किसी प्रकार की शक्तियों को किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने का अवसर न दिया जाये।

सहकारी समितियों की कार्य पधति में जो त्रुटियाँ हैं एवं जो इनको दूर करने के लिए सुझाव दिये गये हैं, उनको कार्यान्वित करके साख संस्थाओं की कार्य पधति में सुधार कर उन्हें अधिक कार्य कुशल बनाया जा सकता है और बुन्देलखण्ड जैसे पिछड़े क्षेत्र में ग्रामीण एवं कृषि विकास को प्रोत्साहित किया जा सकता है। चूँकि कृषि एवं ग्रामीण विकास एवं सहकारी साख संस्थायें एक दूसरे पर निर्भर करती हैं। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि सहकारी साख की प्रगति की पर्याप्त सम्भावनायें विधमान हैं।

BIBLIOGRAPHY

1. A.S. Kahlon & Karam Singh, Managing Agricultural Finance, Allied Publisheres Pvt.Ltd., New Delhi, 13/14, Ali Road, New Delhi.

2. A.N. Agrawal, Indian Economy, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.

3. Ashok Rudra, Indian Agricultural Economics, Allied,New Delhi, 1982.

4. Ali Mohommad, Dynamics of Agricultural Development in India (Ed.1977) Concept Pub., New Delhi.

5. Agrawal, G.D.& Bansal, D.C., Economic Problems of Indian Agriculture , Vikas Publication (1969).

6. Arora, R.C., Integrated Rural Development, S. Chand, Delhi, 1979.

7. Ajit Das Gupta, Agriculture and Economic Development, Associated Publishers, New Delhi, 1973.

8. Aaron G. Nelson & William G. Murray, Agricultural Finance, USA, IOWA University Press, 1975.

9. Baum, Diesslin and Heady, Capital and Credit Needs in a Changing Agriculture, IOWA State University Press, U.S.A., 1961.

10. Banarjee,P.K.(1983), Indian Agricultural Economy: Financing Small Farmers, Chetana Publications, New Delhi.

11. Basu,S.K.(1980), Commercial Banks and Agricultural Credit: A Study in Regional Disparity, Allied Publication(P) Ltd., Bombay.

12. Bans l,P.C., Agricultural Problems of India, Vikas Publications, Bombay.

13. Bauer,Elizabeth K.(Ed), Proceedings of International Conference on Agricultural and Co-operative Credit, University of California Press, Berkeley, 1952.

14. Bedi,R.D., Co-operative Land Development Banking in India, National Co-operative Union, New Delhi,1971.

15. Bakkeh Henry, H., Basic Concepts Principles and Praçtices of Co-operation, Winsconsin, 1963.

16. Belshaw,H., The Provision of Credit with Special reference to Agriculture, Rome, Food and Agriculture Organisation, 1931.

17. Belshaw,H., Agricultural Credit in Economically under Developed Countries, Rome, Food and Agriculture Organisation, 1959.

18. Channa,C.J., Agricultural Finance in India, Marketing and Economic Reasearch, Bureau, New Delhi, 1969.

19. Chaubey,B.N., Institutional Finance for Agricultural Development, Subhada Sarswat, Pune, 1977.

20. Calvert,H., Co-operation in the Colonies, London, 1945.

21. Chawadhri,T.P.S. and Sharma,T.N., Crop Loan System: A Study in Andhra Pradesh and Punjab, National Institute of Rural Development, Hyderabad, 1970.

22. Dadhich,C.L., Overdues in Co-operative Credit, Popular Prakashan, Bombay, 1977.

23. Datey,C.D., Co-operative Bank and Agricultural Credit, Vora & Co., Bombay.

24. Desai,B.M. and Desai D.K. (1979), Farm Production Credit in Changing Agriculture, Indian Institute of Management, Ahmedabad.

25. Desai,S.S.M. (1979), Rural Banking in India, Himalaya Publishing House, Bombay

26. Desh Pandey,V.D., Crop Loan System: A case Study, Poona, Gokhale Institute of Politics and Economics,1971.

27. Dinesh,C., Agricultural Finance by a Commercial Bank,

A Pilot Study, Poona, Vaikunth Mehta National Institute of Co-operative Management, 1970.

28. Gandhi, Indira (1969), Bank Nationalisation and Indian Economy (Speeches), Kalmukar Prakashan, New Delhi.

29. Ghosal, S.N. (1966), Agricultural Financing in India, Asia Publishing House, Bombay.

30. Ghosal, S.N. (1968), Agricultural Finance in India with Special Reference to Land Mortgage Banks, Asia Publishing House, Bombay.

31. Gunnar Myrdal, Asian Drama: An Enquiry into the Poverty of Nations, Vol.II, London.

32. International Co-operative Alliance (ed), State and Co-operative Development, Bangalore, Allied Publishers, 1971.

33. International Co-operative Alliance, Agriculture Co-operative Credit in South East Asia, Bombay, Asia Publishing House, 1967.

34. Jain, S.C. (1970), Management in Agricultural Finance, S. Chand & Co., Bombay.

35. Jagannath Mishra, Co-operative Banking in India, Patha, Lalit Narayana Mishra Institute of Economic Development and Social Change, 1971.

36. Jha, D.N., Planning and Agricultural Development, Delhi, Vikas Publications, 1974.

37. Kishore,C. Pandey, (1980), Commercial Banks and Rural Development, Allied Publishers Pvt.Ltd., Delhi.

38. Khusro,A.M.(1968), Readings in Agricultural Development, Allied Publishers, New Delhi.

39. Kurulkar,R.P. (1984), Agricultural Finance in Backward Region, Himalaya Publishing House, New Delhi.

40. Kahlon,A.S. and Karan Singh, Economics of Farm Management in India: Theory and Practice, New Delhi, Allied Publications, 1980.

41. Krishna Rao, B., Six Agricultural Credit Societies: A Case Study in Madurai and Salem District, Madras, University of Madras, 1968.

42. Kadam,D.B., Utilisation of Long Term Finance for New Wells Poona, Gokhale Institute of Politics and Economics 1968.

43. Khanna,P.N., Sinha,S.L.N. and Raman,A.(Eds), Credit Planning and Policy, Bombay, Vora & Co., 1974.

44. Krishna, Swami,O.R., Co-operative Democracy in Action, Delhi, 1978.

45. Kulkarni, B.N., Crop Loan Operations of Organised Credit Institutions with references to Potato Cultivation (Doctoral Thesis) Poona, University of Poona, 1978.

46. Kurulkar,R.P., Agricultural Finance in a Backward Region, Bombay, Himalaya Publishing House, 1983.

47. Land,G.M., Rural Credit: An Aspect of Its Problems, Bombay, State Co-operative Banks Association,1957.

48. Mehta,N.C. and Pannaddikar,P.A.(1970), Rural Banking, National Institute of Management, Bombay.

49. Memoria,C.B.(1983), Rural Credit and Agricultural Co-operation in India, Kitab Mahal, Allahabad.

50. Mathur,C.B. and Saksena,R.C., Co-operation in India, Allahabad, Kitab Mahal, 1967.

51. Memoria,C.B., Agricultural Co-operative Structure in India, Allahabad, Kitab Mahal,1982.

52. Mohauan,N., Financing Small Farmers by Co-operatives Coimbalore, Raibow Publications,1982.

53. Nakkiran,S.(1980), Agricultural Financing and Rural Banking in India- An Evaluation, Rainbow Publications, Coimbatore.

54. Nakkiran,S.(1980), Co-operative Banking in India, Rainbow Publications, Coimbatore.

55. Narula,R.K.(1982), Agricultural and Rural Advances by Commercial Banks, UDH Publishers,4078, Nai Sarak, Delhi.

56. National Council of Applied Economic Research (1974), Credit Requirements For Agriculture, New Delhi.

57. National Institute of Bank Management (1975), A Framework for Banking Development- Programme for a State, NIBM, Bombay.

58. Naidu,V.T., Farm Credit and Co-operatives in India, Bombay, Vora & Co., 1969.

59. Nigam, B.M.L., Banking and Economic Growth, Bombay, Vora & Co., 1967.

60. Nural Islam, Agricultural Policy in Developing Countries London, Mc Graw Hill Book Co.Ltd., 1974.

61. Pal,B.K. (1973), Agricultural Finance in West Bengal, Firma K.L. Mukhopadhyay, Calcutta.

62. Parthasarathy,G., Green Revolution and Weaker Section, Bombay, Thacker & Co.Ltd., 1971.

63. Prasad,R.D., Co-operative and Rural Development, Hyderabad, Osmania University, 1978.

64. Rao, V.G. & Malya, Paramjit (1980), Agricultural Financing by Commercial Banks, Ashish Publishing House, New Delhi.

65. Rao, L.R., Rural Co-operatives, Delhi, Sultan Chand and Sons, 1974.

66. Rehman, M., Genesis of Agriculture Co-operative Credit Society, Sultan Chand and Sons, 1976.

67. Reserve Bank of India, Studies in Agriculture Credit, Bombay, 1970.

68. Saxena,R.M.(1972), Regional Development Banking, Somaya Publications, Delhi.

69. Sharma, B.P. (1974), The Role of Commercial Banks in Indian Developing Economy, S. Chand & Co., New Delhi.

70. Sharma, R.D. (1980), Agricultural Finance in India, Bharat Book Depot, Bhagalpur.

71. Tokhi, M.R. and Sharma, D.D. (Eds), Rural Banking in India, Oxford and IBH, 1975.

72. Victor, M.A., Co-operative Credit and Banking Madras, Blackie and Sons Publishers Pvt.Ltd., 1982.

73. Wadhwa, C.D. (1980), Rural Banks for Rural Development, The Mackmillan Co.of India Ltd., New Delhi.

74. Weeroman, P.E., The Concept and Functioning of Co-operative Democracy, New Delhi, International Co-operative Alliance Regional Office and Education Centre for South East Asia, 1972.

REPORT

1. Report of the All India Rural Credit Survey (1954), Reserve Bank of India, Vols. I & II (Bombay).

2. Report of the Seminar on Financing of Agriculture by Commercial Banks, (1968), Reserve Bank of India, Bombay.

3. Report of the Seminar on Financing of Agriculture by Commercial Banks,(1968), Ways and Means of Increasing the Flow of Credit of Agriculture Indirectly, R.B.I., Bombay.

4. Report of the All India Rural Debt and Investment Survey (1968), Reserve Bank of India, Bombay.

5. Report of the All India Rural Credit Review Committee (AIRCRC), (1969), Reserve Bank of India, Bombay.

6. Government of India, Report of the Committee on Co-operation, New Delhi.

7. Government of India, Report of Royal Commission on Agriculture, Calcutta, Central Publication Bureau, 1928.

8. Government of India, Report of Agricultural Finance Sub-committee, Bombay, 1945(Reprint 1965).

9. Government of India, Report of the Co-operative Planning Committee, New Delhi, 1951.

10. Government of India, Report of the Rural Banking Enquiry Committee, New Delhi, 1949.

11. Government of India, Planning Commission, First Five Year Plan, 1952.

12. Government of India, Report of the Expert Committee on Co-operation Credit, New Delhi, 1976.

13. Government of India, Report of the Banking Commission, New Delhi, 1972.

14. Government of India, Fourth Five Year Plan, 1969-74, New Delhi, Planning Commission, 1969.

15. Reserve Bank of India, Report of the Committee on Co-operation Bombay, 1915 (Reprinted 1957).

16. Reserve Bank of India, Report of the Rural Banking Enquiry Committee, Bombay, 1854.

17. Reserve Bank of India, All India Rural Credit Survey Committee, Vol.II, The General Report, Bombay,1954.

18. Reserve Bank of India, Co-operative Planning Committee (Saraaya Committee), Bombay, 1951.

19. Reserve Bank of India, Report of the Rural Credit Follow Up Survey, District Report Cuddapah, 1958-59, Bombay.

20. Reserve Bank of India, Report of the All India Credit Surveys, Bombay, 1960,1961,1962,1963.

21. Reserve Bank of India, Report of the Informal Group on Institutional Arrangement for Agricultural Credit, Bombay, 1972.

22. Reserve Bank of India, Report of the Study Team overdues in Co-operatives Credit Structure, Bombay, 1974.

23. Reserve Bank of India, All India Rural Credit Review Committee, Bombay, 1972.

24. Reserve Bank of India, Report of the Co-operative Credit in Farm Production- 4 Survey, Bombay, 1974.

25. Reserve Bank of India, Report of the Committee on Co-operative Land Development Banks, Bombay, 1975.

26. Reserve Bank of India, Review of the Co-operative Movement in India, 1970-72, Bombay, 1975.

27. Reserve Bank of India, Report of the Review Committee of Regional Rural Banks, Bombay, 1978.

28. Reserve Bank of India, Review of the Co-operative Movement in India, 1974-76, Bombay, 1978.

29. Reserve Bank of India, Report of the Expert Committee on Co-operation, Bombay, 1979.

30. Saha, B.G., Report of on Co-operative Credit Movement Baroda, M.S. University of Baroda, 1961.

ARTICLES

1. Gopalan,V., Specialists for Bank Management, Financial Express, July 13, 1977.

2. Chaplot,G.L., Agricultural Lending by Commercial Banks, Eastern Economist, 15th September, 1978.

3. Krishna Swami,O.P., The Principles of Co-operation: A Historical Survey and Review, Anuals of Public and Co-operative Economy, Vol.XXXIX, No.4, October-December,1968.

4. Mehta, V.L. and Batra, M.L., The Registrar Vis-a-Vis, The Co-operative Movement, Indian Co-operative Review, Vol.I, No.2, Jan.,1964.

5. Mishra, R.S., Agricultural Finance and Prospects, Background Papers(Workshop on Sionplication and Nationalisation of loaning policy and Procedures in Land Development Banks held at Jabalpur on 5-7 February,1979).

6. Reddy, T.S. and Reddy, C.R., Finance Function in the Management of Banks, Indian Management, Vol.18, No.4, April 1979.

7. Reddy, C.R., Analysis of overdues: An aid to the Management Urban Credit, Special Issue, 1984.

8. Rajendra Singh,H.N., A Study of Overdues in Co-operatives, Indian Co-operative Review, Vol.XXII, No.1, 1979.

9. Patel, A.R., Recovery of Farm Loan: Some Basic Issues, Eastern Economist, Vol.76, No.3, 1981.

10. Singh, L.R.,et al, The Supply utilisation and Economic Rationale of Credit use in Progressive and Less Progressive Farms, Indian Journal of Agricultural Economics, Vol.XXX, No.3, 1971.

11. Sivamaggi, H.B., Provision of Credit for Small Cultivators Reconsideration of Problem, Indian Journal of Agricultural Economics, Vol.XXXII, No.3, 1973.

12. उत्तर प्रदेश की सहकारी समितियों के कार्यकलापों से सम्बन्धित वर्ष 1960-61 से 1987-88 की सांख्यिकीय सारिणियाँ- सहकारी समिति निबन्धक, उत्तर प्रदेश, लखनऊ ।

13. उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक लिमिटेड के परिपत्र तथा उसकी वार्षिक रिपोर्ट वर्ष 1960-61 से 1987-88.